इकाई 1

मानव संसाधन प्रबंधन

Human Resource Management

इकाई के रूपरेखा

1.1 परिचय
1.2 उद्देश्य
1.3 मानव संसाधन प्रबन्धन की अवधारणा
1.4 मानव संसाधन की प्रमुख विशेषताएँ
1.5 मानव संसाधन प्रबंधन के कार्य
1.6 मानव संसाधन प्रबंधन के उद्देश्य
1.7 मानव संसाधन प्रबंधक के गुण
1.8 सार संक्षेप
1.9 अभ्यास प्रश्न
1.10 परिभाषिक शब्दावली
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1 परिचय

मानव संसाधन प्रबंधन की अवधारणा प्रबंधन के क्षेत्र की एक नूतन अवधारणा है और यह आज सर्वाधिक प्रचलित अवधारणा के रूप में देखी जाती है। आरम्भ में यह अवधारणा रोजगार प्रबंधन, कार्मिक प्रबंधन, औद्योगिक सम्बन्ध, श्रम कल्याण प्रबंधन, श्रम अधिकारी, श्रम प्रबंधक के रूप में थी और 1960 और उसके बाद में मुख्य शब्द कार्मिक प्रबंधक ही था। जिसमें कर्मचारियों के सामान्य कार्यक्रमों के प्रति उत्तरदायित्व सम्मिलित है। शब्दों के विकास का यह स्वरूप इस बात का संकेत है कि 'कार्मिक प्रबंध' प्रबंध की एक शाखा के रूप में विकसित हो रहा है और अभी तक इसका स्वरूप सर्वमान्य एक रूप में नहीं बन सका है। अब तो कतिपय विद्धानों ने इसे जन एवं समुदाय सम्बन्ध के रूप में देखने का प्रयास कर रहे है। यह विचारणीय है कि इसके स्वरूप को भले विभिन्न नामों से जाने, किन्तु उनके कार्य क्षेत्र पर विचार करें तो सभी का बल संगठन में लगे मानव संसाधन के विकास तथा अधिकतम उत्पादन एवं लाभ पर केन्द्रित है। किसी भी प्रतिष्ठान के निर्माण एवं विकास में पूंजी, श्रम, संगठन और साहस ही प्रमुख है और इनमें भी श्रम या मानव

शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह मानव शक्ति से ही पूंजी,संगठन और उद्यमी को उर्जा मिलती है।

मनुष्य चेतन प्राणी है। यह अलग–अलग सोच रखता है, इसमें नया कुछ करने का साहस होता है और ये संगठित होकर सामूहिक नैतिकता बोध से दलीय भावना से कार्य करता है तो संगठन अपने लक्ष्यों को सहजता से प्राप्त करता है अन्यथा संगठन अपने उद्देश्य प्राप्ति में विफल हो जाता है। यही कारण है कि मानव संसाधन प्रबंधन आज प्रबंधन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है।

1.2 इकाई का उद्देश्य :

इस इकाई का अध्ययन करने से पाठकों को निम्नलिखित बातों की जानकारी प्राप्त होगी–

- मानव संसाधन प्रबंधन की अवधारणा, अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेगें।
- मानव संसाधन के भागीदार को समझ सकेगें।
- मानव संसाधन प्रबंधन के उद्देश्य की व्याख्या कर सकेगें।
- मानव संसाधन प्रबंधन के निर्धारक कारक को जान सकेगें।
- मानव संसाधन प्रबंधन का विषय क्षेत्र की व्याख्या कर सकेगें।

1.3 मानव संसाधन प्रबन्धन की अवधारणा

औद्योगिकीकरण की प्रारम्भिक अवस्था में इसका महत्व गौण था। यह समझा जाता था कि सामान्य प्रबंधक ही मानव संसाधन प्रबंधन के लिये भी समर्थ है। प्रबंधन कौशल दैवीय शक्ति है जो सामान्य प्रबंध का उत्तरदायी है, वह मानव संसाधन प्रबंधन के लिये भी उत्तरदायी है किन्तु जब उद्योगीकरण तीव्र गति से होने लगा तो श्रमिकों की अनेक समस्याएँ उभरने लगी और सामान्य प्रबंधक भी उन चुनौतियों का सामना करने में अपने को असहाय पाने लगा और इसी बीच सामाजिक विज्ञानों का भी महत्व बढ़ने लगा और यह पाया गया कि औद्योगिक समाजों की अनेक समस्याओं के निराकरण एवं उनके निर्मूलन में मनोविज्ञान, नृशस्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र की अच्छी बिधायी भूमिका है। अतः यह सिद्ध हो गया कि मानव संसाधन प्रबंधन एक विशिष्ट व्यवसायिक विषय है। अतएव इसके प्रबंधन का उत्तरदायित्व एक प्रशिक्षित सामाजिक अभियंता का ही है और यही कारण है कि मानव संसाधन के प्रबंधन में सामाजिक विज्ञानवेत्ता तथा प्रशिक्षित व्यक्ति ही नियुक्त हो रहे हैं। प्रबंधन के विभिन्न आयामों से जो परिचित है और मानव व्यवहार की गत्यात्मकता तथा प्रबंधन–कौशल में पूर्ण निपुण हैं। ऐसे ही व्यक्ति को मानव संसाधन प्रबंधन का उत्तरदायित्व दिया जाना चाहिये।

मानव संसाधन प्रबंधन के अन्तर्गत प्रमुख कार्य अधोलिखित तीन भागों में विभक्त किये गये हैं :

(1) **श्रम पक्ष** – जिसमें चयन, नियुक्तियाँ, स्थापना, स्थानान्तरण, पदोन्नति, छुट्टी प्रशिक्षण तथा विकास एवं अभिप्रेरणा मजदूरी, वेतन प्रशासन आदि विषय हैं।

(2) **कल्याणकारी पक्ष** – इसमें कार्य की दशायें सुविधाएँ, सुरक्षा स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें सम्मिलित की जाती हैं।

(3) **औद्योगिक सम्बन्ध पक्ष** – इसमें श्रम संघों द्वारा विचारों का आदान–प्रदान, सामूहिक सौदेबाजी, विवादों का निपटारा, संयुक्त प्रबंध समितियाँ तथा सामाजिक सुरक्षा, वेतन, भत्ते आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त चिकित्सा लाभ, बीमारी की छुट्टी, परिवार नियोजन तथा मनोरंजनात्मक तथा शिक्षात्मक कार्यक्रम की बातें भी समाहित हैं।

➢ कार्मिक प्रबंधन या मानव संसाधन प्रबंधन का अर्थ एवं परिभाषा :

विभिन्न विद्धानों ने इसे अधोलिखित रूपों में परिभाषित किया है यथाः–

(1) डेल योडर ने इसे प्रबंधन का वह भाग माना हैं जो जनशक्ति के उपयोग तथा उस पर प्रभावी नियंत्रण बनाये रखने का दिशा में कार्य करता हैं और जो यांत्रिक शक्ति से भिन्न है। इस दिशा में प्रयुक्त विधियाँ, उपकरण तथा तकनीक कार्मिक प्रबंधन की विषय सामग्री है, जिसमें श्रमिक उत्साह से उत्पादन में सहयोग करते हैं।

(2) पीगर्स एण्ड मायर्स : इनके अनुसार मानव संसाधन प्रबंधन, प्रबंध का वह विशिष्ट क्षेत्र है जो श्रम शक्ति के चयन, विकास, उपयोग तथा श्रमिकों को कार्यरत रहने सम्बन्धी योजनाएँ बनाने, संगठित करने तथा नियंत्रित करने के कार्यो से सम्बन्धित हैं, जिससे कि संगठन अपने उद्देश्यों की पूर्ति प्रभावी रूप में तथा मितव्यतता से कर सकें।

(3) ई0 वी0 फ्लिप्पो : इसके अनुसार नियोजित व्यक्ति का सम्बन्ध संगठन के लिये व्यक्तियों की भर्ती, विकास क्षतिपूर्ति, आपसी मेलजोल बनाये रखने आदि कार्यो से हैं, जिसके फलस्वरूप संगठन के आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। इस प्रकार श्रमिक प्रबंध कार्य का आयोजन, संगठन, निर्देशन तथा नियंत्रण में कार्य करता है।

(4) थामस जी0 स्पेट्स :कार्मिक प्रबंधन या मानव संसाधन प्रबंधन या कार्मिक प्रशासन मूलतः स्पेट्स के अनुसार कार्यरत व्यक्तियों को संगठित करने तथा उन्हें इस प्रकार कार्यरत रहने की संहिता है जिससे व्यक्तिगत कार्यक्षमता का अधिकतम उपयोग हो सके और श्रमिक भी व्यक्तिगत एवं सामूहिक संतुष्टि प्राप्त कर सके और साथ ही संगठन को तुलनात्मक लाभ हो जिसका कि एक अंग ही है।

(5) डर्क्स : इनके अनुसार गतिशील कार्य से सम्बन्धित विचार है जो मानव संसाधनों का विकास एवं उपयोग व्यवसाय के अधिकतम प्राप्ति के लिये सम्भव करता है।

(6) **ब्रीच** : इनके मतानुसार कार्मिक प्रबंधन, प्रबंधकीय प्रगति का वह भाग है जो किसी संगठन के मानवीय घटकों से सम्बन्धित हैं।

(7) **अमरीकी कार्मिक प्रशासन संस्थान** : उपरोक्त संस्थान में कार्मिक प्रबंधन को परिभाषित करते हुये कहा गया है कि यह सक्षम कार्य दल को प्राप्त करने, विकसित करने तथा संचारण करने की वह कला है जिससे संगठन के उद्देश्यों को न्यूनतम लागत पर मानव साधन का पूर्ण उपयोग करके प्राप्त किया जा सके।

(8) **भारतीय कार्मिक प्रबंधन संस्थान** : इसके अनुसार प्रबंधकीय कार्य का वह भाग है जो संगठन में मानवीय सम्बन्धों से सम्बन्धित है, कार्मिक प्रबंधन कहलाता है। इसका उद्देश्य उन सम्बन्धों का संधारण है जिससे संगठन में प्रभावी कार्य के माध्यम से उत्पादन को अधिकतम सहयोग प्राप्त हो सके।

(9) **ब्रिटिश इन्स्टीट्यूट ऑफ परसोनल मैनेजमेंट** : इनके अनुसार कार्मिक प्रबंधन इन तत्वों से सम्बन्धित है :–

(अ) श्रमिक भर्ती प्रणाली, उनके चयन, प्रशिक्षण, शिक्षा, उपयुक्त स्थानों पर नियुक्ति।

(ब) रोजगार की शर्तें, भुगतान प्रणालियाँ, इनके प्रभावी कार्य की दशायें, सुविधायें, तथा अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराना।

(स) नियोक्ता और सेवीवर्ग के मध्य सामूहिक विचार विमर्श को प्रभावी बनाना तथा विवाद निपटाने में निर्धारित प्रणाली स्वीकार करना।

1.4 मानव संसाधन की प्रमुख विशेषताएँ

(1) यह मानव संसाधन का प्रबंध है।
(2) यह एक विभागीय उत्तरदायित्व है जो कार्मिक प्रबंध के अधीन कार्य करता है।
(3) यह मानव शक्ति का चयन, नियोजन संगठन व नियंत्रण करता है।
(4) इसका उद्देश्य कर्मियों में सर्वोत्तम फल प्राप्त करना है।
(5) इससे कर्मचारियों में अधिकतम कार्यक्षमता बढ़ाने का कार्य होता है।
(6) कर्मचारियों की योग्यता विकास में सहायक है।
(7) कर्मचारियों में सहकारी विकास भाव पैदा करता है।
(8) यह मानवीय सम्बन्ध सत्यापित कर उन्हें बनाये रखने का प्रयास करता है।
(9) यह उच्च प्रबंध को महत्त्वपूर्ण सुझाव देता है।
(10) कार्मिक प्रबंध निश्चित सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का पालन करता है।
(11) यह एक प्रबंध दर्शन है।

1.5 मानव संसाधन प्रबंधन के कार्य

मानव संसाधन प्रबंधन की विभिन्न परिभाषाओं पर विचार करते है तो प्रबंधन के अधोलिखित कार्यो को इसके अन्तर्गत समझा जा सकता है :–

(1) कर्मचारियों में मधुर सम्बन्ध बनाये रखने की दृष्टि से अनुकूल नीतियों का निर्माण करना।

(2) नेतृत्व विकास के लिये समुचित कार्य करना।

(3) सामूहिक सौदेबाजी, समझौता, संविदा प्रशासन तथा परिवाद निवारण करना।

(4) श्रम श्रोतों की जानकारी रखना तथा कार्य के अनुरूप उपयुक्त व्यक्ति का चयन करना।

(5) विकास हेतु उपयुक्त अवसरों को श्रमिकों हेतु सुलभ कराना तथा उनकी योग्यता प्रदर्शन के लिये अवसर प्रदान करना।

(6) कर्मचारियों में कार्य के प्रति उत्साह बनाये रखना तथा प्रोत्साहन देते रहना।

(7) संगठन में मानव संसाधन का मूल्यांकन करते रहना।

(8) मानव संसाधन के क्षेत्र में शोध की व्यवस्था बनाये रखना तथा शोध के निष्कर्षों का नीति निर्माण में उपयोग करना।

इस प्रकार योडर ने आठ प्रमुख कार्यों को माना है जबकि नार्थ कोट ने मानव संसाधन प्रबंधक के कार्यो को तीन दृष्टियों से देखने का प्रयास किया है :–

(अ) जन कल्याण दृष्टिकोण।

(ब) वैज्ञानिक प्रबंध दृष्टिकोण।

(स) औद्योगिक सम्बन्ध दृष्टिकोण।

इस प्रकार मानव संसाधन प्रबंधन के द्वारा ही उपरोक्त दृष्टिकोण रखते हुये श्रमिक के शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं सुरक्षा के क्षेत्र में विधि सम्मत तथा अन्य जनहितकारी कार्यों को करना चाहिये तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही कर्मियों का चयन, प्रशिक्षण, उचित पारिश्रमिक/मजदूरी, बोनस, वेतन वृद्धि तथा अन्य धार्मिक लाभ जिनसे उनमें कार्य मे ंलगे रहने की इच्छा, अधिकतम उत्पादन हेतु श्रम करने तथा भूमिका का निर्वाह करना तथा औद्योगिक सम्बन्ध दृष्टिकोण से उद्योग में शांति बनाये रखना तथा किसी असंतोष या विवाद की स्थिति में शीघ्रता से समाधान कराना तथा श्रम संघों से विचार विमर्श करते रहना और उनकी सहमति से निपटारा कराना। यदि औद्योगिक अशांति परस्पर सहमति से न बन पा रही हो तो संसाधन मशीनरी एवं ट्रिव्यूनल कोर्ट के माध्यम से समाधान निकालना।

ए0 एफ0 किंडाल के मानव संसाधन प्रबंधन के अन्तर्गत अधोलिखित कार्यो को माना है :–

(1) उपक्रम के उद्देश्य के अनुरूप नीतियों का निर्माण एवं कार्य प्रणालियों का विकास करना, नियंत्रण करना तथा संचार प्रणाली को विकसित करना।
(2) संगठन के सभी स्तर पर पर्यवेक्षण, नेतृत्व तथा प्रोत्साहन प्रदान करना।
(3) प्रशासन के समस्त आयामों में सहयोग तथा आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।
(4) नीतियों को सुनियोजित ढंग से क्रियान्वित करना।
(5) कार्यान्वयन हेतु निरंतर सचेष्ट रहना।
(6) श्रम आंदोलनों पर ध्यान देना और उनके समाधान में सक्रिय रहना।
(7) नीतियों का श्रमिकों में व्यापक प्रचार और समझ पैदा करना तथा श्रमिकों या उनके संगठनों के सुझावों को उच्च स्तरीय प्रशासकों तक पहँचाना कार्य हैं।

इसी प्रकार एच0 एच0 कैरी ने मानव संसाधन प्रबंधन के ये कार्य बताये हैं :–

(अ) **कार्मिक प्रशासन का गठन** – जिसके अन्तर्गत प्रशासकों एवं कर्मचारियों के दायित्व का निर्धारण करना, नीति निर्माण के लिये समितियों का गठन प्रशासकों एवं कर्मचारियों में सद्भावना स्थापित करना, तथा व्यक्तियों का मूल्यांकन करना।

(ब) **प्रशासन तथा पर्यवेक्षण** – प्रशासनिक अधिकारियों तथा पर्यवेक्षकों के कर्त्तव्य एवं दायित्व का निर्धारण करना, परिवाद निवारण हेतु उपयुक्त श्रृंखला का निर्माण करना, बहुउद्देश्यीय प्रबंध योजनाएँ बनाना, पर्यवेक्षणीय योजनायें निर्धारित करना। दिशा–निर्देशन कार्य हैं।

(स) **श्रम नियोजन** – कर्मचारियों की आवश्यकताओं को प्रतिष्ठान के अनुरूप पूर्वानुमान, श्रमिक भर्ती की नीति निर्धारण, कार्य विवरण निर्धानित करना, मजदूरी दर निर्धारित करना, भर्ती–चयन का निर्धारण, श्रमिकों के बारे में जानकारी रखना तथा कार्य के प्रति उन्हें जागरूक करना, श्रमिकों की योग्यतानुरूप कार्य सौंपना, उनसे सम्बन्धित अभिलेख तैयार करना तथा श्रम बाजार की जानकारी रखना।

(द) **प्रशिक्षण तथा श्रम विकास** – इसके अन्तर्गत अन्तर्विभागीय कार्य विवरण तथा कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करना, कर्मचारियों का प्रशिक्षण, अधिकारियों एवं पर्यवेक्षकों के हेतु विकास कार्यक्रम तैयार करना, श्रमिकों के पठन–पाठन की सुविधा उपलब्ध कराना, शिक्षा एवं व्यवसायिक मार्ग दर्शन की व्यवस्था करना तथा कर्मचारियों मूल्यांकन करना कार्य हैं।

(य) **मजदूरी तथा वेतन प्रशासन** – कर्मचारी कुशलता मूल्यांकन तथा वेतन/मजदूरी निर्धारित करना, कार्य हेतु प्रोत्साहन–मौद्रिक या अन्य विधियों का उपयोग करना, श्रमिकों को प्रेरणा प्रदान करना, कार्य निष्पादन एवं मूल्यांकन सम्बन्धी कार्य करना, श्रमिकों को सहयोगी एवं नियमित करने की चेष्टा में लगे रहना, छुट्टी, अनुपस्थिति सम्बन्धी नीतियों का नियमों का निर्माण करना कार्य हैं।

(र) **शक्ति संतुलन** –कार्यभार निर्धारित करना, पदोन्नति, पदच्युति, स्थानान्तरण, कार्य मुक्ति से उत्पन्न समस्याओं का प्रबंध करना, श्रमिकों सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र करना तथा मूल्यांकन योजनाएँ बनाना, वरिष्ठता तथा अनुशासन सम्बन्धी विवरण रखना तथा चयन विधियों का निर्धारण करना।

(ल) **कर्मचारियों तथा प्रबंधन के बीच सम्बन्ध–** कर्मचारियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध रखना, श्रमसंघों से तालमेल बनाये रखना, सामूहिक सौदेबाजी, परिवाद निवारण प्रणाली, पंचनिर्णय तथा नियोगी–नियोक्ता समितियाँ बनाना।

(व) कार्य के घंटे एवं दशाओं के निर्धारण तथा विश्रामकाल एवं मनोरंजन की व्यवस्था करना।

(श) **स्वास्थ्य एवं सुरक्षा–** श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की दृष्टि से प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना, मशीनरी की जाँच व्यवस्था करना एवं दुर्घटनाएँ क्षतिपूर्ति योजनाएँ सुलभ कराना।

(स) कर्मचारियों के साथ संप्रेषण और उनसे सम्बन्धित शोध की व्यवस्था बनाना ताकि शोध के निष्कर्षो से संप्रेषण तथा मानव संसाधन–प्रबंधन में नये ज्ञान का लाभ प्राप्त किया जा सके।

उपरोक्त मानव संसाधन प्रबंधन कार्यो को समेटते हुये इसे अधोलिखित प्रमुख दो रूपों में देख सकते हैं :–

(1) **प्रबंधकीय कार्य**

(क) **नियोजन** :जिसके अन्तर्गत संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मानव संसाधन का नियोजन, उसकी आवश्यकता, उसकी भर्ती, चयन और प्रशिक्षण है और इसकी ओर मानव संसाधन की आवश्यकता, उसके मूल्य, मनोवृत्ति तथा उसका व्यवहार जो संगठन पर प्रभावी हैं, कार्य किया जाता है।

(ख) **संगठन** : दूसरे उसका प्रबंधकीय कार्य संगठन को सक्षम बनाना किसी भी उद्योग के लिये अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सबल और सक्षम संगठन का आवश्यकता होती है। संगठन ही लक्ष्य का साधन है। संगठन में अनेक लोग होते है। विशिष्ट कुशल प्रशासक से लेकर सामान्य कर्मचारी तक की सहभागिता सफलता की सिद्धि के लिये आवश्यक है। लक्ष्य प्राप्ति हेतु सभी की भूमिका महत्वपूर्ण है। अतः इन सभी के मध्य सहकारिता, सहयोग और समंजन का होना जरूरी है। प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की सफलता संगठन के कर्मियों तथा अधिकारियों के समन्वय एवं दलीय अभिगम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

(ग) **दिशा निर्देशन** –मानव संसाधन (कार्मिक प्रबंधन) में दिशा निर्देशन का कार्य बहुत ही प्रभावी होता है। लक्ष्य प्राप्ति के लिये यदि समुचित दिशा निर्देशन नहीं मिलता है

तो अच्छे नियोजन और संगठन के बावजूद भी कठिनाई होती है। दिशा निर्देशन से ही कार्यान्वयन होता है। इसी की सहायता से अभिकर्मियों को प्रेरणा दी जाती है जिससे उसकी क्षमता का अधिकतम उपयोग प्राप्त किया जाता है और प्रतिष्ठान लक्ष्यों को सहजता से प्राप्त करता है।

(घ) **नियंत्रण करना :** मानव संसाधन प्रबंधन कें नियंत्रण बनाये रखने का कार्य अति महत्वपूर्ण होता है। संगठन का नियोजन, उसका प्रारूप और दिशा निर्देशन में समरूपता होनी चाहिये। यह समरूपता उन्हें नियंत्रित करके ही प्राप्त किया जा सकता है। यह नियंत्रण लेखा परीक्षण, प्रशिक्षण आयोजन, मानव संसाधन में नैतिक बल वृद्धि तथा अन्य विधायी उपायों से संगठन में नियंत्रण बनाये रखने का कार्य हो सकता है।

(2) **क्रियात्मक कार्य** –मानव संसाधन के प्रबंधन कार्य का दूसरा भाग उसका क्रियात्मक प्रबंध कार्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यह क्रियात्मक प्रबंधकीय भी अधोलिखित रूप में देखा जा सकता हैः–

(च) **रोजगार :** मानव संसाधन के प्रबंधन कार्य के क्रियात्मक रूप में रोजगार के अनुरूप मानव संसाधन को प्राप्त करना जिसे कार्य विश्लेषण, मानव संसाधन का नियोजन, भर्ती, चुनाव एवं उनकी गतिशीलता का ध्यान रखते हुये प्रतिष्ठान में मानव संसाधन की सहभागिता स्थिर करना। इस प्रकार कार्य की चुनौतियों के अनुरूप मानव संसाधन को कार्य उत्तरदायित्व सौंपना।

(छ) **मानव संसाधन विकास** – वर्तमान कार्य एवं भविष्य में कार्यो के लिये मानव संसाधन को विकसित करने हेतु उसके कौशल विकास, ज्ञान, रचनात्मक प्रतिभा, अभिवृत्ति, मूल्य और समर्पण भाव में निरंतर विधायी परिवर्तन लाना आवश्यक है और यह कार्य मानव संसाधन प्रबंधन का ही है। इसी के अन्तर्गत मानव उपलब्धि मूल्यांकन, उसका प्रशिक्षण, प्रबंधकीय विकास, अभिकर्मी के निजी विकास का आयोजन, संगठन के उर्ध्वगामी एवं क्षैतिज आयाम में भविष्य देखना, उसका स्थानान्तरण, प्रोन्नति तथा पदावनति की स्थिति देखना है। इसी की तहत नियोक्ता प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति प्राप्त करने हेतु अक्षम व्यक्ति की छॅटनी भी करता है और संगठन में असंतुलन की स्थिति में संगठनात्मक विकास भी करता है और संगठन में व्यवहारवादी विज्ञानों का प्रयोग करते हुये मानव संसाधन का विकास करता हैं।

(ज) **क्षतिपूर्ति** –मानव संसाधन के प्रबंधकीय उत्तरदायित्व में क्षतिपूर्ति लाभ देना है। यह वह प्रक्रिया है जिससे पर्याप्त एवं उचित पुरस्कार मानव संसाधन को सुलभ कराया जाता है। इसी के तहत कार्य मूल्यांकन मजदूरी एवं वेतन प्रशासन, प्रेरक धनराशि, बोनस, कैंटीन, आवागमन सुविधा, मनोरंजन सुविधा, मातृत्व कल्याणकारी सुविधायें, प्राविडेंड फंड, पेंशन और सामाजिक सुरक्षा एवं अनुग्रह धनराशि की सुविधा दी जाती है।

(झ) **मानव सम्बन्ध** – मानव संसाधन प्रबंधकीय कार्य के अंतर्गत ही संगठन के विभिन्न इकाईयों तथा ईकाई विशेष में कार्यरत व्यक्तियों में विधायी अन्तःसम्बन्धों का निर्माण करना भी प्रबंधक का ही उत्तरदायित्व है। इस प्रकार एक अभिकर्मी में तथा प्रबंधन में अच्छा सम्बन्ध बनाने की दृष्टि से ही तथा श्रम संगठनों एवं प्रबंधकों में परस्पर विश्वास पैदा करने का प्रयास किया जाता है। मानव संसाधन की नीतियाँ, कार्यक्रम, रोजगार, प्रशिक्षण, क्षतिपूर्ति की सुविधा आदि कार्यक्रमों से मानव संसाधन में और प्रबंधन में एक विधायी सम्बन्ध बनाने की ही दिशा में कार्य किया जाता है और इस प्रकार उनके व्यक्तित्व विकास, सीखने का कौशल, अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापन और अन्तःसमूह सम्बन्ध स्थापन से मानवीय सम्बन्ध स्थापन की दिशा में कार्य किया जाता है। इसके अतिरिक्त सम्बन्ध स्थापन के लिये ही अभिकर्मियों को प्रेरक सेवाएँ तथा उनके नैतिक बल निर्माण की दिशा में कार्य किया जाता है। संप्रेषण कौशल विकास, नेतृत्व विकास शीघ्रता से परिवेदना निवारण, परिवदेना मशीनरी का उपयोग, अनुशासन की कार्यवाही, परामर्श सेवाएँ, आरामदायक कार्य परिस्थितियाँ, कार्य संस्कृति का विकास तथा अन्य सुविधायें दी जाती हैं।

(ञ) **औद्योगिक सम्बन्ध** – इसके अन्तर्गत नियुक्त और नियोक्ता के मध्य, सरकार एवं श्रम संघों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध को ही औद्योगिक सम्बन्ध माना जाता है। इसी के तहत भारतीय श्रम बाजार, श्रम संगठनों की भूमिका, सामूहिक सौदेबाजी, औद्योगिक द्वंद, प्रबंधन में श्रमिक की सहभागिता तथा वृत्त की गुणात्मकता का अध्ययन किया जाता है।

(ट) **मानव संसाधन प्रबंधन की आधुनिक प्रवृत्ति** – आज मानव संसाधन एक वृत्तिक अनुशासन के रूप में द्रुत गति से अपने स्वरूप में परिवर्तनकरता हुआ प्रगति के पथ पर है। आज इसके अन्तर्गत कार्य जीवन के गुण, मानव संसाधन की समग्र गुणवत्ता, उसका लेखा, परीक्षण, शोध एवं मानव संसाधन प्रबंधन की आधुनिक तकनीकों का अध्ययन किया जाता है।

1.6 मानव संसाधन प्रबंधन के उद्देश्य

मानव संसाधन का उद्देश्य संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। ये लक्ष्य समय काल एव परिवेश से बदलता रहता है। यद्यपि अधिकांश संगठनों का लक्ष्य अभिकर्मियों में विकास एवं प्रतिष्ठान में अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है तथापि आज इसका संगठन, सरकारी नीतियों एवं सामाजिक न्याय तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था बनाने में भी भूमिका का निर्वाह लक्ष्य के तहत स्वीकार किया गया है। कतिपय विद्वानों में मानव संसाधन प्रबंधन को सामाजिक संगठनात्मक, क्रियात्मक उद्देश्यों तथा वैयक्तिक उद्देश्यों के संदर्भ में भी स्वीकार किया है।

'बिप्रो' में उद्देश्य अधोलिखित रूपों में माना गया है :–

(1) मनुष्य को संगठन के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण सम्पत्ति के रूप में माना है।
(2) उच्च मानक एवं समन्वय के साथ व्यक्ति एवं प्रतिष्ठान में सम्बन्ध बनाये रखना।
(3) अभिकर्मियों के माध्यम से ग्राहक या उपभोक्ता के साथ गहरा सम्बन्ध स्थापित करना।
(4) मानव संसाधन प्रबंधन में नेतृत्व प्रदान करना तथा उसे बनाये रखना।

आर0 सी0 डेविस ने प्रबंधन के उद्देश्यों को अधोलिखित दो रूपों में माना हैः–

(1) मूल उद्देश्य
(2) गौण उद्देश्य

(1) मूल उद्देश्यों के तहत मानव संसाधन विभाग उत्पादन, विक्रय एवं वित्त विभाग के लिये उपयुक्त कर्मचारियों के चयन एवं उनकी नियुक्ति में सहयोग प्रदान करता है। संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ऐसे कार्य संगठन का निर्माण करता है जिसमें कार्य की चुनौतियों का मुकाबला करते हुये अपनी संतुष्टि के साथ अधिकतम उत्पादन से सहभागी बनता है। यह अभिकर्मी की प्रेरणा का प्रतिफल है। अतः अभिकर्मियों में विधायी अभिप्रेरणा बनाये रखने के लिये ही उसे मौद्रिक प्रेरणा तथा अमौद्रिक प्रेरणा दी जाती है। यही कारण है कि अभिकर्मियों की मजदूरी, वेतन, भत्ते तथा अंशधारियों के लाभ में वृद्धि की जाती है और साथ ही साथ उनके अच्छें कार्यो के लिये, संगठन की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहभागिता, सेवाभाव रखने तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के लिये उन्हें सम्मानित किया जाता है।

(2) गौण उद्देश्य का लक्ष्य मूल्य उद्देश्यों की प्राप्ति कम लागत पर कुशलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से करना है। किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि अभिकर्मियों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जाय, कार्य ही पूजा है, का भाव विकसित किया जाय। साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाय तथा समस्त कर्मचारियों में कार्य में दलीय भावना पैदा की जाय। कर्मचारियों में भाई–चारा का भाव विकसित किया जाय। उनके नैतिक बल पर ध्यान दिया जाय तथा प्रतिष्ठान में मानवीय सम्बन्ध और अच्छे अनुशासन का वातावरण बनाया जाय तथा मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने के लिये उचित अभिप्रेरणा प्रणाली तथा उचित संदेश वाहन प्रक्रिया का प्रतिष्ठान में उपयोग किया जाय।

1.7 मानव संसाधन प्रबंधक के गुण

प्रबंधकीय कौशल से अभिप्राय होता है वह गुण, समझ एवं कार्यदक्षता जिससे प्रबंधक अपने उत्तरदायित्व का सहजता से निर्वाह करता है और संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहता है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत प्रबंधक की अधोलिखित योग्यताएँ मानी जाती है यथा :–

1. पर्याप्त शैक्षिक योग्यता।

2. श्रम सम्बन्धों की जानकारी।
3. व्यवसाय की नीतियों एवं प्रबंध की समस्याओं का ज्ञान।
4. समाज विज्ञानों का ज्ञान
5. कर्मचारियों के प्रति विश्वसनीय व्यवहार।
6. सृजनात्मक सम्बन्ध
7. स्वस्थ व्यक्तित्व
8. सद्चरित्र
9. वाक् चातुर्य
10. सेवाभाव
11. उदार विचार वाला
12. आशावादी होना।

मानव संसाधन प्रबंधक उपरोक्त गुणों के कारण ही अपने प्रबंध कौशल से अपनी इस भूमिकाओं के निर्वाह में सफल होता है :–

(2) **परामर्शदाता के रूप में** – समस्याग्रस्त अभिकर्मियों को प्रसन्न और संतुष्ट रखने के लिये मानव संसाधन प्रबंधक बतौर परामर्शदाता उसे सलाह देता है और अनुकूल परामर्श से उसे समस्यामुक्त होने की युक्ति में सहायक होता है।

(3) **मध्यस्थ के रूप में** – मानव संसाधन प्रबंधक अभिकर्मियों – सेवायोजक तथा उच्च प्रबंधकों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में भी भूमिका का निर्वाह करता है। अभिकर्मियों की माँगों, आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के प्रति ऊपर के अधिकारियों तक पहुँचाकर उसके संदर्भ में नीति निर्माण एवं निर्णय लेने में उच्च पदस्थ अधिकारियों का जहाँ सहयोग करता है वहीं दूसरी ओर प्रशासन की अपेक्षाओं और माँगों के प्रति कर्मचारियों को जानकारी देकर संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उन्हें भी प्रेरणा प्रदान करता है। इस प्रकार वह इन दोनों के बीच सेतु का काम करता है।

(4) **विशेषज्ञ के रूप में** – मानव संसाधन प्रबंधक किसी भी प्रतिष्ठान में एक विशेषज्ञ के रूप में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। यह वह प्रबंधक है जो अपने विशिष्ट ज्ञान के ही बदौलत समग्र संगठन के लिये सर्वाधिक महत्व रखता है। समग्र संगठन की विभिन्न इकाइयों में समन्वय सहयोग एवं भ्रातृत्व भाव पैदा करने और नैतिक बल बनाये रखने में प्रेरणा प्रदान करता है। इतना ही नहीं वह सहायता स्त्रोत, परिवर्तन कारक तथा एक नियंत्रक के रूप में विशेषज्ञ जैसी सेवाएँ देता है।

(1) As a Source of Help
(2) As a Charge Agent

(3) As a Controller

मानव संसाधन प्रबंधक के उत्तरदायित्व के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अपने भिन्न मत व्यक्त किये है किन्तु प्रसिद्ध दो विद्वानों के विचार सर्वाधिक मान्य स्वीकार किये गये है जिनके विचार अधोलिखित रूप में है :–

(1) **रिचाई पी0 ब्राउन के अनुसार –**

(क) कार्मिक नीतियों, पद्धतियों और कार्यक्रमों को निर्धारित करने और उनके कार्यान्वयन में सहायता प्रदान करना।

(ख) प्रबंधकीय क्षेत्र में मानवशक्ति की आवश्यकता को ज्ञात करना तथा उनका नियोजन करना।

(ग) मानव संसाधन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं के समाधान एवं निवारण में अधिकारियों एवं पर्यवेक्षकों को सलाह देना।

(घ) प्रशासन सम्बन्धी कार्यक्रमों का मूल्यांकन तथा सत्यापन करते रहना।

(ङ) श्रमिकों की मजदूरी/वेतन के औचित्य पर विचार करना तथा आवश्यक परामर्श सेवायोजक एवं उच्च पदाधिकारी को देना।

(च) रोजगार की स्थितियों का भी आकलन करना तथा ऐच्छिक सेवानिवृत्ति पर भी ध्यान देना।

(छ) संगठन की पूर्ण जानकारी रखना और आवश्यकतानुसार सहायता करना।

(ज) विभाग के विकास हेतु शोध कार्य भी करते रहना चाहिये ताकि प्राप्त नये ज्ञान के आलोक में संगठन को सुदृढ़ किया जा सके।

(2) **जार्ज डब्ल्यू हेनन के अनुसार** –मानव संसाधन विकास प्रबंधक के उत्तरदायित्व अधोलिखित रूप में माना है :–

(i) कार्य के अनुरूप कुशल अभिकर्मियों को संगठन हेतु नियुक्त करना।

(ii) नियुक्ति में कार्य की चुनौतियों के अनुरूपं सक्षम यक्तियों को प्राप्त करना।

(iii) अभिकर्मियों हेतु प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करना।

(iv) वेतन प्रशासन पर ध्यान देना।

(v) भौतिक एवं वित्तीय साधनों के प्रति ध्यान देना।

(vi) सलाहकार के रूप में दायित्व।

(vii) सुरक्षा सम्बन्धी दायित्व मानना।

(viii) लागत–व्यय नियंत्रण पर दृष्टि रखना।

(ix) विभागीय आलेखन ताकि सभी मानव संसाधन सम्बन्धी सूचना दी जा सके और उसके आलोक में नये कार्यक्रमों का आयोजन हो सके।

1.8 सार संक्षेप

मानव संसाधन प्रबंधन मूलतः प्रबंधन की एक विशेषीकृत उपशाखा है जो जन शक्ति के उपयोग तथा उस पर प्रभावी नियंत्रण बनाये रखने दिशा में कार्य करता है। इसके अन्तर्गत प्रमुख तीन कार्य माने जाते है यथा :–

(1) **श्रमिक के संदर्भ में** जिसमें उसका चयन, नियुक्ति स्थापना,स्थानान्तरण, पदोन्नति, निष्कासन, प्रशिक्षण, अभिप्रेरणा, संचार तथा वेतन प्रशासन के कार्य है।

(2) **कल्याणकारी कार्य** – जिसमें श्रमिकों के विकास हेतु कल्याणकारी कार्यो का उत्तरदायित्व है। इसी के तहत, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सुखद कार्य की दशाओं की सुविधा दी जाती है।

(3) **औद्योगिक सम्बन्ध** – इसके तहत श्रमिकों, नियोक्ता तथा श्रम संगठनों में परस्पर अच्छे सम्बन्धों पर बल दिया जाता है ताकि औद्योगिक शांति बनी रहे और श्रमिक मनोयोग से काम में लगा रहे। अधिक उत्पादन करके नियोक्ता और राष्ट्र को भी लाभान्वित करे। विवाद होते ही तत्काल समाधान किया जाय तथा आवश्यक होने पर संसाधन मशीनरी का भी उपयोग किया जाय।

➢ मानव संसाधन प्रबंधन का उद्देश्य – ये मानव संसाधन को सर्वश्रेष्ठ माना है इसे वह पूँजी के रूप में मानता है।

➢ इसका प्रमुख उद्देश्य संगठन के लक्ष्यों के अनुरूप अभिकर्मियों को प्रेरित करना संतुष्टि के साथ उत्तरदायित्व निर्वहन तथा अपनी पूर्ण क्षमता के साथ अधिकतम उत्पादन एवं लाभ अर्जित करने में सहयोग देना है।

➢ मानव संसाधन के प्रमुख निर्धारक कारक प्रतिष्ठान का निजी आकार, स्वरूप तथा श्रम संगठनों की भूमिका है और प्रतिष्ठान के अतिरिक्त वाह्य कारकों में सामाजिक तकनीकी, आर्थिक राजनैतिक एवं वैधानिक कारक है। आज मानव संसाधन प्रबंधन इनके प्रकाश में ही हो रहा है। आज इसके लिये नये ज्ञान–कौशल एवं समाज विज्ञान तथा मानव व्यवहार विज्ञान की आवश्यकता है।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. मानव संसाधन प्रबंधन की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।
2. मानव संसाधन प्रबंधन की परिभाषा लिखिये।
3. मानव संसाधन प्रबंधन का उद्देश्य स्पष्ट कीजिये।
4. मानव संसाधन प्रबंधन के निर्धारक कारकों का वर्णन कीजिये।
5. मानव संसाधन प्रबंधन की प्रकृति एवं क्षेत्र का वर्णन कीजिये।
6. मानव संसाधन प्रबंधन के कार्यो का वर्णन कीजिये।

7. मानव संसाधन प्रबंधक के गुणों का वर्णन कीजिये।

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

दलीय भावना	Team approach	वृत्तिक अनुशासन	Professional decipline
दिशा निर्देशन	Directing	सामूहिक सौदेबाजी	Collective Bargaining
छुट्टी	Lay off	पदोन्नति,	
चयन	Selection	वेतन प्रशासन	Salary Administrationj
नियुक्ति	Appointment	संचार	Communication
स्थानान्तरण	Transfer	अभिप्रेरणा	Motivation

1.11 संदर्भ ग्रंथ की सूची

1. योडर डेल (1960) 'पर्सनल मैनेजमेंट एण्ड इण्डस्ट्रीयल रिलेशन्स'।
2. मामोरिया, चतुर्भुज, सतीश मायोरिया (2007) सेविवर्ग प्रबंध एवं औद्योगिक सम्बन्धः आगरा, साहित्य भवन।
3. सेवि के0सी0 (1978), 'वर्कर्स पार्टीसिपेशन एण्ड इण्डस्ट्रीयल रिलेशन्स इन इंडिया', वाल्यूम 5 नं. 3 (जुलाई)
4. सी0वी0 मामोरिया ''ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट'', दिल्ली : हिमालय पब्लिशिंग हाउस।
5. पी0 सुब्बाराव ''परसोनेल एण्ड ह्यूमन रिर्सोस मैनेजमेन्ट''।

इकाई–2

मानव संसाधन आयोजन एवं कार्य मूल्यांकन

Human Resource Planning (HRP) & Job Evaluation

इकाई की रूपरेखा

2.1 परिचय
2.2 उद्देश्य
2.3 मानव संसाधन आयोजन विधियाँ एवं तकनीके
2.4 मानव संसाधन आयोजन की मांग एवं पूर्ति के संदर्भ में पूर्वानुमान
2.5 मानव संसाधन आयोजन में सूचना व्यवस्था
2.6 मानव संसाधन आयोजन में गणना तथा लागत एवं अंकेक्षण
2.7 उत्पादकता एवं प्रोत्साहन लाभ की अवधारणा
2.8 प्रोत्साहन लाभ की कसौटी और बाधाएं
2.9 कार्य मूल्यांकन की अवधारणा, क्षेत्र सीमाएं एवं उद्देश्य
2.10 कार्य मूल्यांकन पद्धतियाँ
2.11 कार्य विश्लेषण एवं वर्णन
2.12 सार संक्षेप
2.13 अभ्यास प्रश्न
2.14 पारिभाषिक शब्दावली
2.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 परिचय

मानव संसाधन आयोजन से अभिप्राय प्रतिष्ठान के संगठित व असंगठित श्रमिक नियोक्ता और पर्यवेक्षक, प्रबंधक एवं कर्मचारी से है, जिनके श्रम का सदुपयोग करना ही मानव संसाधन का आयोजन है। मूलतः ये सभी व्यक्ति जो कार्य में लगे हुये है और जो कार्यरत नहीं भी हैं, वे ही मानव संसाधन या जनशक्ति कहलाते है।

आज जनशक्ति आयोजन का अर्थ व्यापक होता जा रहा है, इसे आज एक ऐसी पद्धति के रूप में स्वीकार किया जा रहा है, जिसमें सभी वर्ग के तथा सभी स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के लिए कार्य उपलब्धि एवं उनकी शक्ति का पूर्ण उपयोग करने की दृष्टि से योजनाबद्ध कार्यवाही की जाती है। आज उचित जनशक्ति आयोजन के माध्यम से ही कम प्रयास से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जनशक्ति आयोजन में प्रमुख तीन बातों पर ध्यान दिया जाता हैः–

1. वर्तमान एवं अपेक्षित रिक्त स्थानों का विश्लेषण जो सेवानिवृत्ति, स्थानान्तरण पदोन्नति, बीमारी, अवकाश, दुर्घटना, पदुत्याग अनुपस्थिति, अनुशासन हीनता आदि के कारण रिक्त रहते हैं।

2. विभागीय विस्तार या कटौती का विश्लेषण।
3. उत्पादकीय क्षेत्र में होने वाले तकनीकी परिवर्तनों के साथ सामंजस्य।

2.2 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने से आप निम्नलिखित बातों की जानकारी प्राप्त कर सकेगें:

(1) मानव संसाधन आयोजन की अवधारणा और उसके उद्देश्य।
(2) मानव संसाधन के आयोजन की विधियां एवं तकनीकी।
(3) मानव संसाधन की आवश्यकता एवं आपूर्ति का पूर्वानुमान।
(4) मानव संसाधन की सूचना व्यवस्था तथा उसका लेखन एवं लागत और मानव संसाधन की गणना।
(5) प्रोत्साहन लाभ की अवधारणा ज्ञात करना तथा उसकी बाधायें।
(6) कार्य मूल्यांकन की अवधारणा और विधियों की जानकारी तथा कार्य विश्लेषण को समझना।

2.3 मानव संसाधन आयोजन की प्रक्रिया

मानव संसाधान आयोजन के उद्देश्यः– मानव संसाधन आयोजन उत्पादन आयोजन के समान ही महत्वपूर्ण है। इसका उद्देश्य व्यक्तियों के लिए अवसर की सुलभता तथा मानव संसाधन के सदुपयोग हेतु उनके कार्यों का वर्गीकरण करना और उनके लिए अनुकूल प्रशिक्षण आदि की सुविधायें उपलब्ध कराना तथा मानव शक्ति की आवश्यकताओं को अनुमानित करना ही उद्देश्य है। जनशक्ति आयोजन की दृष्टि से पदों का सृजन, पद समापन, कार्य आवंटन कार्य अवलोकन और कार्य भार का अनुमान आवश्यक कार्य है। इनके आधार पर ही उपयुक्त कार्य पर उपयुक्त व्यक्ति का चयन करना भी मानव संसाधन का आयोजन है, इस आयोजन के अभाव में संगठन का रूप बिखर जाता है और यही कारण है कि उत्पादन के साधनों और वित्तीय साधनों के सदुपयोग के लिए भी मानव संसाधन का आयोजन किया जाना आवश्यक हो गया है।

इस आयोजन की आवश्यकता निम्न कारणों से और स्पष्ट होती हैः–

1. मानव संसाधन की आवश्यकताओं का सही पूर्वानुमान करना। मानव संसाधन का पूर्वानुमान उत्पादन से प्रभावित होता है, अधिक उत्पादन के लिए अधिक मानव संसाधन की आवश्यकता होती है। यह अवश्य है कि उसकी आवश्यकता को प्रभावित करने वाले कारकों में स्वचालित यंत्रों का प्रयोग कर्मचारी की दक्षता और कार्य के प्रति उसकी रूचि भी उत्तरदायी है।
2. भर्ती एवं चयन नीति को ठोस आधार प्रदान करने हेतु मानव संसाधन का आयोजन की आवश्यकता होती है।
3. व्यवसाय के आकार वृद्धि के अनुकूल जनशक्ति प्रबंधन हेतु ही मानव संसाधन

आयोजन की आवश्यकता होती है।

4. जनाभाव एवं जनाधिक्य दोनों स्थितियाँ संगठन हेतु हानिकारक है, अतः इनसे बचने हेतु ही मानव संसाधन आयोजन की जरूरत होती है।
5. कर्मचारी विकास कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने की दृष्टि से ही मानव संसाधन विकास आयोजन की जरूरत होती है।
6. मानव संसाधन के आयोजन के माध्यम से प्रति इकाई श्रम लागत कम की जा सकती है और उत्पादन को विवेकपूर्ण ढंग से बढ़ाया जा सकता है।
7. किसी भी संगठन में मानव संसाधन के आयोजन से राष्ट्रीय जनशक्ति आयोजन का एक आधार पर कड़ी के रूप में कार्य करता है।
8. औद्योगिक अशांति को भी उपयुक्त आयोजन से कम किया जा सकता है।

मानव संसाधन आयोजन एक जटिल प्रक्रिया है, जो संगठन को जटिलतम समस्याओं के निराकरण में सहायक होती है, अच्छे मानव संसाधन के आयोजन से ही मानवीय संबंधों में सुधार होता है तथा औद्योगिक शांति बनी रहती है और उनके अभाव में अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है। मूलतः यह मानव संसाधन का आयोजन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जो प्रत्येक विभाग में की जाती है और सभी विभागों के लिए केन्द्रीय मानव संसाधन का आयोजन कार्मिक विभाग में होता है। इस मानव संसाधन के आयोजन की प्रक्रिया को नीचे लिखी तालिका के रूप में देखा जा सकता है:–

आर्थिक पूर्वानुमान	विश्लेषण सामग्री रोजगार उत्पादकता संगठन		भर्ती एवं चयन स्थापन	
संगठनके उद्देश्य	विभागीय जनशक्ति	तालिका शीर्ष प्रबंध	स्थान्तरण नीति सेवानिवृत्ति	नियंतण व मूल्यांकन तथा
योजना एवं व्यूह रचना	मांग का अनुमान संगठन स्तर पर अनुमान संगठन की वित्तीय स्थिति ↓ प्रबंधकीय स्तर पर पूर्वानुमान चरण	स्वीकृति ↓ जनशक्ति संबंधी नीतियां एवं उद्देश्य	वेतन/मजदूरी प्रशिक्षण व विकास संगठन स्तर पर कार्यक्रम मूल्यांकन सूचनायें अनुसंधान	गुणात्मक

तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम चरण में भिन्न–भिन्न प्रकार के विश्लेषण के उपरांत विभागीय स्तर पर तथा संगठन की संपूर्ण मानव संसाधन की मांग का अनुमान किया जाता है। तदनुरूप बजट पर भी ध्यान दिया जाता है। दूसरे चरण में प्रबंधकीय स्तर पर नीतियों के अनुरूप मानव संसाधन का आयोजन किया जाता है, जिसकी स्वीकृति भी शीर्ष प्रबंध से प्राप्त की जाती है। तीसरे चरण में स्वीकृति के पश्चात् भर्ती प्रक्रिया, चयन, स्थापन, स्थान्तरण, पदोन्नति, निष्कासन, सेवानिवृत्ति, प्रशिक्षण, मूल्यांकन तथा सम्प्रेषण की क्रियायें कार्मिक विभाग, द्वारा की जाती है। चौथें चरण में समस्त अनुमानों, क्रियाओं वातावरण जनित परिवर्तनों आदि, पर नियंत्रण रखते हुए संगठन में मानव संसाधन के आयोजन की प्रक्रिया को निरंतरता देता है। कतिपय विद्वानों ने कहा है कि मानव संसाधन आयोजन की प्रक्रिया बहुत ही दुरूह और जटिल तथा गतिमान प्रबंधकीय कार्य है, जिसके माध्यम से संगठन, प्रबंधन का विकास तथा व्यक्ति के स्वयं विकास का आयोजन है। भारत वर्ष में इसकी उपादेयता आज और भी महत्वपूर्ण है। यह अनेक बिन्दुओं पर विचार करते हुए बहुस्तरीय प्रक्रिया है, यथा–

1. उद्देश्य निर्णयन
2. संरचनात्मक प्रारूप का आंकलन करना तथा उसके लिए मानव संसोधन की आवश्यकता ज्ञात करना।
3. मानव संसाधन का अंकेक्षण करना।
4. कार्य आवश्यकता का आयोजन एवं कार्य का विवरण।
5. मानव संसाधन आयोजना को विकसित करना।

मानव संसाधन आयोजन के उद्देश्य

1. मानव संसाधान के आयोजन से न केवल वैयक्तिक व संरचनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति बल्कि राष्ट्रीय उद्देश्यों की भी पूर्ति होती है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रतिष्ठान के अनुरूप सक्षम व्यक्तियों को प्राप्त करना होता है। इससे हमारे अल्पकालिक व दीर्घकालिक उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।
2. संरचनात्मक प्रारूप का आवश्यकतानुरूप मानव संसोधन का अनुमान करना। इसके तहत पर्यावरण जनित कारकों, संगठन के विकास, प्रबंधकीय दर्शन, सरकारी नीतियां तथा मानव कौशल एवं प्रतिस्पर्धा के आलोक में विचार किया जाता है।
3. मानव संसाधन अंकेक्षण ज्ञातव्य है, कि मानव संसाधन कीआवश्यकता का जब आंकलन कर लिया जाता है, तब दूसरे चरण पर विचार करना होता है कि मानव संसाधन के उद्गम कौन है, यह एक कौशल प्रश्नावली से प्राप्त किया जाता है। जिसमें मानव संसाधन के वैयक्तिक कार्यो का तथा उसकी शिक्षा व प्रशिक्षण कार्यों

का तथा उसकी शिक्षा व प्रशिक्षण का और अनुभव व कौशल के अतिरिक्त अन्य सूचनायें प्राप्त की जाती है। जिसके आलोक में ही मानव संसाधन का आयोजन किया जाता है।

4. कार्य विश्लेषण :– एक कार्य विशेष के लिए कितने लोगों की जरूरत है इसके लिए कार्य–विश्लेषण की आवश्यकता होती है जिसमें एक कार्य विशेष के लिए प्रशिक्षण, कौशल, योग्यता, क्षमता तथा उत्तरदायित्व का लेखन रहता है और उसके आधार पर मानव संसाधन के आयोजन में सहूलियत होती हैं।

5. मानव संसाधन आयोजन का विकास करना– इसके तहत मानव संसाधन के आयोजन में संगठन के लिए ऊंचे पदों के रिक्त पदों के नियुक्ति के लिए प्रोन्नति पद्वति से नियुक्त करना और निचले स्तर के कर्मियों के लिए खुली भर्ती पद्वति से नियुक्त करना ही मानव संसाधन के आयोजन में विकासकारी कार्य माना जाता है।

2.4 मानव संसाधन आयोजन की विधियाँ एवं तकनीक

मानव संसाधन आयोजन की प्रमुख विधियॉ अधोलिखित रूपों में हैः–

1.अल्पकालीन आयोजन :– इस विधि के अन्तर्गत प्रशिक्षित कर्मचारी उपलब्ध होने की अवधि तक व्यवस्था की जाती है। इस आयोजन में कर्मचारियों के पदस्थापन के लिए अथवा नवसृजित पदों को भरने के लिए उपयोग किया जाता है। इस आयोजन में यह ध्यान रखा जाता है कि इस अवधि का विस्तार एक या दो वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए।

2.मध्यकालीन आयोजन :–इसका आयोजन प्रायः पर्यवेक्षकीय पदों के लिए किया जाता है। पर्यवेक्षकीय तथा प्रबंधक स्तर के पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारी या तो सीधी भर्ती द्वारा लिये जाते है। या पदोननति द्वारा। कर्मचारी की नियंत्रण क्षमता अनुकूलनतम समूह के बारे में अध्ययन करने के लिए अल्प अवधि पर्याप्त नहीं होती और न तो दीर्घकालीन आयोजन ही अनुकूल होता है। अतः इसके लिए मध्यकालीन आयोजन का किया जाना ही उपयुक्त होता है।

3.दीर्घ कालीन आयोजन :– दीर्घकालीन मानव संसाधन के आयोजन से ही संगठन को दृढ़ आधार मिलता है इससे ही दीर्घकालीन लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। इस आयोजन के द्वारा ही व्यवसाय में स्थिरता प्राप्त की जा सकती है तथा प्रत्येक पद के लिए योग्यतम व्यक्ति को प्राप्त किया जाता है। ज्ञातव्य है कि दीर्घकालीन आयोजन की दृष्टि से प्रत्येक पद पर योग्य व्यक्ति ही होना चाहिए।

ज्ञातव्य है कार्मिक विभाग का प्रधान अथवा निदेशक आयोजन की अवधि पर ध्यान देता है और यह जाना जाता है किइसकी अवधि तीन वर्ष से कम अथवा पॉच वर्ष से अधिक रखने

पर उपयोगी नहीं होती है देखा जाता है कि प्रायः अभिकर्मी की भर्ती तथा उसका स्थापन 3 वर्ष से अधिक में ही सम्पन्न होता है। इसीलिए मानव संसाधन का आयोजन पाँच वर्ष की अवधि तक का अच्छा जाना जाता है। इस दिशा में कार्मिक प्रबंधक को सर्तकता की दृष्टि रखनी पड़ती है और यह भी ध्यान देना होता है कि मानव संसाधन आयोजन की पूर्व आवश्यकता उसका नीति निर्माण ही है। जो कोई भी आयोजक हो वह यर्थाथता के करीब होना चाहिए। अर्थव्यवस्था से परे का आयोजन कोई अर्थ नहीं रखता है आयोजन में मानक की अपेक्षाओं से तथा निर्धारित अवधि के मध्य संतुलन बनाये रखना होता है और इस प्रकार से पूर्णता के प्रति प्रयोग शीलता होनी चाहिए और अन्तिम रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि मानव संसाधन का आयोजन प्रतिष्ठान के आयोजन से समन्वित होना चाहिए। इसकी योजनाएँ प्रतिष्ठान के अन्य इकाईयों से मेल खाती होनी चाहिए।

2.5 मानव संसाधन आयोजन का पूर्वानुमानः मांग पूर्ति के संदर्भ में

मानव संसाधन का पूर्वानुमान करना श्रमिक की माँग एवं उसकी आपूर्ति पर किया जाता है। अल्पकालीन आयोजन में श्रम की माँग के संदर्भ में तकनीकी परिवर्तनों नये अध्यादेश तथा श्रमिक का काम से दूर होना या ठीकेदारी प्रतिबंधों के आलोक में अनुमान किया जाता है और मध्यकालीन आयोजन में प्रतिष्ठान की आवश्यकता उसके विस्तार तथा उसके समायोजन पर विचार किया जाता है। दीर्घकालीन आयोजन से श्रमिक के माँम सम्बंधी पूर्वानुमान प्रतिष्ठान के भौगोलिक क्षमता उसके आधार तथा उसकी व्यवस्था, उत्पादन, प्रदत्त सेवाऐं, अपेक्षित कार्यभार पर विचार करना होता है। और साथ ही साथ पर्यावरण परिवर्तन, तकनीकी विकास, श्रम बचत उपकरण, क्षमता तथा उत्पादकता के आलोक में ही श्रम की मांग का पूर्वानुमान किया जाता है और श्रम की आपूर्ति का पूर्वानुमान आन्तरिक एवं वाहय आपूर्ति की दृष्टि से भी किया जाता है। आन्तरिक दृष्टि से श्रम की आपूर्ति का पूर्वानुमान

अल्पकालीन आयोजन के तहत विभागीय, क्रमवार, प्रोन्नति तथा पद त्याग एवं मृत्युजनित कारणों के सन्दर्भ में किया जाता है। मध्यकालीन आयोजन के तहत श्रम आपूर्ति का पूर्वानुमान विलीनीकरण, प्रबन्धकीय एवं पर्यवेक्षकीय विकासात्मक कार्यक्रमों के आलोक में किया जाता है और दीर्घकालीन आयोजन में श्रम आपूर्ति का पूर्वानुमान अभिकर्मी की परिवर्तित विशेषताओं के प्रति प्रबन्धक की अपेक्षाएँ और भविष्य में श्रमिक की सुलभता के संदर्भ में श्रमआपूर्ति का पूर्वानुमान किया जाता है। श्रमआपूर्ति की वाहय परिवेश पर विचार करते समय अल्पकालीन योजना के तहत रोजगार के प्रस्तर और रोजगार के लिए श्रमिकों की आवश्यकता पर विचार करते हुए श्रमआपूर्ति का पूर्वानुमान किया जाता है। मध्यकालीन आयोजन में श्रम बाजार, व्यापार विकास की योजना तथा अन्य सामान्य संस्थागत योजनाओं के आलोक में श्रम आपूर्ति का पूर्वानुमान किया जाता है और दीर्घकालीन

आयोजन में प्रबन्धकीय भविष्यगत अपेक्षाओं जो तत्कालिक निर्णय के लिए आवश्यक हैं, उसके संदर्भ में ही श्रम आपूर्ति का पूर्वानुमान किया जाता है।

पूर्वानुमान की प्रमुख दो तकनीके हैः–

1. अप्रत्यक्ष तकनीक
2. प्रत्यक्ष तकनीक

अप्रत्यक्ष तकनीकः–अप्रत्यक्ष तकनीक के तहत सामान्य नियमों का पूर्वानुमान है यथा उत्पादन की गणना एवं उसकी माप।

प्रत्यक्ष तकनीकः–जिसके तहत श्रम यंत्रों, पर्यवेक्षकीय संख्या और ईकाई विशेष की व्यवसायिक आवश्यकता की विधियां सम्मिलित है।

प्रत्येक संगठन की अपनी विशेषताऐं एवं समस्याएं होती है और आयोजन कर्ता उसके लिए ही एक औसत माडल का प्रयोग करता है। यह भौगोलिक क्षेत्रों को देखते हुए समग्र व्यवस्था के लिए उपयोगी होता है।

टेकनिकल माडल का उपयोग वहाँ किया जाता है, जहाँ कि गणितीय एवं सांख्यकीय विधि का प्रयोग करना कठिन होता है। यहाँ पर विशेषज्ञ की राय एवं उसके अनुभव का उपयोग किया जाता है। इस तरह से यह सभी संगठनों के लिए आवश्यक माना जाता है कि संगठन की आवश्यकताओं को और हो रहे परिवर्तनों के फलस्वरूप समायोजन तथा समय–2 पर उनका पूर्व मूल्यांकन मान संसाधन के आयोजन में पूर्वानुमान किया जाना चाहिए।

2.6 मानव संसाधन आयोजन में सूचना व्यवस्था

सूचना या सम्प्रेषण की समस्या अतिप्राचीन है आज तो संप्रेषण इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि मानव सभ्यता का विकास ही इस पर आश्रित हो गया है। प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति चाहे उपक्रम में हो, समाज में हो अथवा परिवार में हो अपने सभी कार्यो का संम्पादन सम्प्रेषण के माध्यम से ही करता है। उपक्रम का गठन लक्ष्यप्राप्ति के लिए होता है और लक्ष्यों की प्राप्ति मानव संसाधन के आयोजन से ही संभव होता है। प्रबन्धक संप्रेषण के माध्यम से ही उचित समन्वय स्थापित करके लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अग्रसर होता है। संप्रेषण से ही कर्मचारी दिशा निर्देश प्राप्त करता है और प्रतिष्ठान के उद्देश्यों को भी प्राप्त करता हैं। संप्रेषण विचारों के आदान–प्रदान की ही प्रणाली है जिसके द्वारा एक दूसरे के विचारों के करीब पहुँचता है। इसका उद्देश्य सूचना पाने वाले व्यक्ति में समक्ष जागृत करना है। प्रभावी सम्प्रेषण एकतरफा नहीं वरन एक दोहरी प्रक्रिया है। सूचना प्राप्त के उपरान्त उसे समझना, स्वीकार करना तथा कार्यरूप में परिवर्तित करना भी संप्रेषण के अर्न्तगत आता है। जहाँ सम्प्रेषण प्रणाली या सूचना व्यवस्था उचित नहीं होती है। वहाँ विभागीय प्रबन्धकों में

आपसी समन्वय नहीं रह जाता है। परिणाम स्वरूप वे लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल रहते हैं। इस प्रकार से सम्प्रेषण में उसके उद्देश्य एवं उसकी भूमिका तथा उसके प्रकार पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सम्प्रेषण के उद्देश्य :–

1. **आदेशों तथा निर्देशों का सही एवं स्पष्ट स्थान्तरण करनाः–** जिसके आधार पर प्रतिष्ठान में कार्यरत सभी व्यक्ति अपनी भूमिका का लक्ष्य उन्मुख भूमिका का निर्वाह करते है।
2. **विचारों तथा सूचना का स्वतंत्र आदान प्रदान करनाः–** प्रबंधक कर्मचारियों को उनके हितों सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों को जानकारी देकर अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकता है तथा उद्योग में शान्तिपूर्ण वातावरण स्थापित करने में भी सहयोग कर सकता है।
3. **कर्मचारी विकास सम्बन्धी जानकारी प्रेषित करनाः–** प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारी प्रशिक्षण सम्बन्धी जानकारी भी व्यक्तियों को सम्प्रेषण द्वारा ही दी जाती है और इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी अपने विकास के बारे में सूचना एवं तथ्यों के आधार पर निर्णय ले सकता है।
4. **विचार को कार्यक्रम देनेका माध्यमः–** किसी व्यक्तिके विचार भले ही सर्वोत्कृष्ट हों किन्तु वे सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्प्रेषित न किये गये हो तो वे विचार व्यर्थ ही है क्योंकि उनसे लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिए चार्ल्स ई0रैड फील्ड ने ठीक ही कहा है कि ''सम्प्रेषण किसी संगठन को सुदृढ़ कर सकता है या उसे समूल नष्ट कर सकता है।'' और इस प्रकार औद्योगिक सम्बन्ध में प्रभावी सम्प्रेषण की प्रमुख भूमिका होती हैं।

2.7 मानव संसाधन आयोजन में अभिलेख, लेखा तथा लागत एवं अंकेक्षण

मानव संसाधन आयोजन में संसाधन का अभिलेख उनकी गणना तथा उनका लेखा–जोखा रखना और अंकेक्षण बहुत ही महत्वपूर्ण होता है, उनके अभिलेख में श्रमिक के व्यक्तिक सूचना दीर्घकालीन प्रयोग के लिए अंकित की जाती है। इसके आधार पर श्रमिक के संपूर्ण सूचना रहती है जिसमें उसका व उसके पिता का नाम उसकी जन्मतिथि आयु, राष्ट्रीयता, वैवाहिक स्थिति, भाषा ज्ञान, स्थायी पता तथा पद, नियुक्ति की तिथि, सेवा में स्थायी होने की तिथि, देय वेतन वृद्धि का विवरण तथा विभाग जिसमें सेवारत हो, संपूर्ण पारिवारिक विवरण, शिक्षण प्रशिक्षण का विवरण, उपलब्धि का विवरण तथा अन्य विवरण अंकित रहते है।

अभिलेख का महत्व :– वैयक्तिक अभिलेख की महत्ता अधोलिखित कारणों से हैः–

1. श्रमिक नीतियों के विकास व परिमार्जन के लिए इन अभिलेखों से सूचनायें प्राप्त होती है।
2. श्रमिकों की आवश्यकता, उनके प्रशिक्षण तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता मिलती है।
3. मानव संसाधन के कौशल प्रश्नावली से इनके आगामी योजनाओं के निर्माण में भी सहायता मिलती है।
4. रोजगार प्रशिक्षण तथा साक्षात्कार की क्षमता भी इससे आंकी जाती है।
5. स्थान्तरण, प्रोन्नति, निलंबन तथा श्रमिक के निष्कासन में भी अभिलेख से सहायता प्राप्त होती है।
6. संगठन के प्रति कर्मियों की सेवाओं के संदर्भ में क्षतिपूर्ति देने में भी सहायता मिलती है।
7. अधतन विवरण, श्रमिक की हुट्टी, प्रशिक्षण, स्थानान्तरण, सेवानिवृत्ति, हड़ताल व तालाबंदी, संबंधी, सूचनाये सुलभ हो जाती है।

मानव संसाधन लेखाः– सामान्य अर्थो में मानव संसाधन से अभिप्रायः मनुष्य के ऊर्जा कौशल और उस ज्ञान से है, जो उत्पादन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए उपयोग की जाती है। इसे विशिष्ठ रूप में हम कह सकते है कि मानव संसाधन किसी भी संगठन के उत्पादक क्षमता का मूल्य है, दूसरे शब्दों में हम कहें कि औसत अभिकर्मियों जो ज्ञान कौशल, अच्छे स्वास्थ्य के साथ किसी संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में लगे है। इनकी संगणना एक प्रक्रिया है, जिसकेतहत मानव संसाधन संबंधी सूचना मापन और उसकी समझ इस आशय से प्राप्त की जा सकती है कि संबंधित व्यकितयों को संप्रेषित किया जा सके। यह एक प्रकार से संगठन के व्यक्तियों का आर्थिक मूल्यांकन की प्रक्रिया है, जो समय के साथ मूल्यांकित किया जाता है। यह देखता है व्यक्तियों का विनियोजन और उनका आर्थिक उपलब्धि में परिणाम, इससे दो प्रमुख बातों पर बल है–

1. मानव संसाधन की मांप व मूल्यांकन।
2. आवश्यक सूचनायें प्रबंधन एवं बाहय प्रयोग के लिए सम्प्रेषित करना। 'स्टेफेन नॉफ ने मानव संसाधन संगणना को परिभाषित करते हुए कहा है, कि यह मानव संसाधन का मापन एवं संख्यात्मक उपलब्धि है, जैसे– भर्ती, प्रशिक्षण, अनुभव एवं समर्पण।' एरिक फ्लैम कोर्ट ने कहा है कि ''मानव संसाधन की गणना संगठन के संसाधनों में मनुष्य की संगणना है जो किसी संगठन के व्यक्तियों का लागत एवं मूल्य है,मानव संसाधन इस रूप में भी परिभाषित किया गया है, कि संगठन के संसाधनों में मनुष्य के लागत एवं मूल्य का

अभिलेख है। इस प्रकार से यह किसी भी संगठन के व्यक्तियों का आर्थिक मूल्य की संगणना है।

मानव संसाधन का अंकेक्षण : यह अंकेक्षण पुनर्मूल्यांकन किसी व्यवसाय के वास्तविक स्थिति को समझने के अर्थ में किया जाता है। इस प्रकार से यह अंकेक्षण आय, व्यय विवरण तथा अभिलेखों का प्रशिक्षण हैं। इस प्रकार से मानव संसाधन का अंकेक्षण अद्योलिखित दो बिन्दुओं पर केन्द्रित हैः–

1. मानव संसाधन प्रबंधकीय मिशन, उद्देश्य राजनीति, नीतियों तथा कार्यक्रमों एवंक्रियाओं का मापन है।
2. इन मापन के फलस्वरूप यह तय करना कि भविष्य में क्या किया और क्या न किया जाय।

अंकेक्षण की आवश्यकताः–मानव संसाधन कार्यक्रमों का अंकेक्षण की आवश्यता अद्योलिखित कारणों से दिखती हैः–

1. कर्मियों की संख्या के आधार पर यदि प्रतिष्ठान की इकाई बहुत छोटी है, और उसमें लगे मानव संसाधन की संख्या बहुत कम है, तो इसकी औपचारिक आवश्यकता बहुत कम होती है।
2. प्रतिष्ठान के इस प्रश्न का कि कैसे हुआ और क्या हुआ ? इसका उत्तर अंकेक्षण के माध्यम से ही दिया जा सकता है।
3. इसकी आवश्यकता लाइन प्रबंधक के कार्य के तथा नीतियों के कार्यान्वन के संबंध में मूल्यांकन हेतु किया जाना आवश्यक है।
4. कार्मिक स्टाफ व कर्मियों के मूल्यांकन हेतु आवश्यक है।

2.8 उत्पादकता एवं प्रोत्साहन लाभ की अवधारणा

किसी भी प्रतिष्ठान के उत्पादकता से अभिप्राय उत्पादकता में श्रम लागत कम करके अधिकतम प्राप्त किया जाय, ज्ञातव्य है कि उत्पादकता की योजना तकनीकी परिवर्तनों तथा प्रगति विधियों से प्राप्त की जाती है, और इस उत्पादकता वृद्धि में आर्थिक प्रोत्साहन, धनराशि प्रमुख है, यो तो इस उत्पादकता को श्रमिकों की अभिप्रेरणा तथा उनके समर्पण भाव तथा संगठन के विकासात्मक कार्यक्रमों एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि लाकर प्राप्त किया जा सकता है।

प्रोत्साहन लाभ से अभिप्राय होता है कि श्रमिक की निर्धारित मजदूरी/वेतन के अतिरिक्त जो आर्थिक लाभ उसे दिया जाता है वही प्रोत्साहन लाभ है। इसके माध्यम से श्रमिक को संगठन में बने रहने का वातावरण प्रदान किया जाता है और उसके उत्साह एवं परिश्रम से अधिक उत्पादन प्राप्त कर अधिक लाभ प्राप्त किया जाता हैं

2.9 उत्पादकता की कसौटी एवं उसमें अवरोध

उत्पादकता की कसौटियां अद्योलिखित बातों से निर्धारित होती हैः–

1. असमानता न बने रहने के लिए दूसरे अभिकरणों के वेतन से समायोजन इस स्थिति से ही प्रतिष्ठान की उत्पादकता प्रभावित होती है।
2. प्रतिष्ठान में श्रमिक के कैरियर विकास की संभावना, प्रशिक्षण की सुविधा विकासात्मक नीतियां एवं व्यवस्थित प्रोन्नति की प्रक्रिया ही उत्पादकता में सहायक होती है।
3. श्रमिक के कठिनाईयों के समाधान हेतु प्रभावी परामर्श सेवायें तथा विवाद समाधान, उपयुक्त मशीनरी का होना उत्पादकता की विधायी स्थिति है।
4. संगठन के अन्दर और बाहर श्रमिकों के हितार्थ विकासात्मक कार्यक्रमों एवं उनके प्रशिक्षण की सुविधा की सुलभता उत्पादकता में सहायक होती हैं।
5. प्रतिष्ठान में अभिकर्मियों हेतु वर्तमान में अनुकूल कार्य का होना तथा भविष्य में और अच्छे अवसर की सुलभता उत्पादकता के लिए कसौटी स्वरूप है।
6. कार्य की दशाओं में निरंतर सुधार एवं विस्तृत आनुसांगिक लाभ का होना उत्पादकता की कसौटी है।

उपरोक्त सभी बातों का अभाव ही उत्पादकता में अवरोध है।

2.10 कार्यमूल्यांकन की अवधारणा एवं उद्देश्यः

कार्य मूल्यांकन से अभिप्राय कार्य विश्लेषण की उपलब्धि है, कार्य विश्लेषण कार्य के कर्तव्यों का वर्जन करता है, आधिकारिक सम्बन्धियों का वर्जन करता है एवं अपेक्षित कार्य दशाओं तथा अन्य सूचनाओं का विश्लेषण करता है। और कार्य मूल्यांकन इसकी तरफ प्रत्येक कार्यो का मूल्यांकन उन्हीं सूचनाओं के संदर्भ में करता है। इस प्रकार से यह एक औपचारिक एवं व्यवस्थित कार्यका मूल्यांकन एक कार्य से दूसरे कार्यो के आधार पर निर्धारित करताहै इसी के आधार पर मजदूरी अथवा वेतन का स्वरूप प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार से यह संगठन के कार्यो के आधार पर मूल्यांकन की एक प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया के माध्यम से प्रबंधक की उत्पादकता व संतुष्टि को श्रेष्ठ स्तर पर बनाया जाता है। यदि कार्य का मूल्यांकन सही नहीं किया जाता है तो उसकी कीमत भी उचित रूप की नहीं हो सकती है। यही कारण है कि आज आधुनिक समाज में किसी कार्य का मूल्य बहुत दिया जाता है। मूलतः व्यक्ति एक कार्य के लिए जो प्राप्त करता है, उसमें उसका शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुभव, जो उस कार्य की मांग होती है, उसके अनुरूप ही प्रापत करता हैः–

कार्य मूल्यांकन की कतिपय महत्वपूर्ण परिभाषायें इस प्रकार है–

1. **आइ.एल.ओं** ने कार्य मूल्यांकन के बारे में कहा है, कि यह एक निर्धारित करने और आवश्यकताओं की तुलना के संदर्भ में कार्य विशेष की उपलब्धि जो सामान्य अभिकर्मियों के द्वारा बगैर उसके व्यक्तिक योग्यता व उपलब्धि का लेखा है।
2. कार्य मूल्यांकन पर **नीदरलैंड** की परिभाषा में कहा गया है कियह एक केवल विभेदक मजदूरी दर स्थापित करने की प्रक्रिया है।
3. **किमबाल एवं किमबाल** ने मूल्यांकन करते हुए कहा है कि यह एक प्रयास है, जो किसी प्रतिष्ठान के प्रत्येक कार्य का मूल्यांकन निर्धारित करता है कि प्रतिष्ठान में एक कार्य के लिए उचित मजदूरी क्या हो?
4. **वेन्डल फ्रैंच** ने भी कहा है कि कार्य मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जो कि प्रतिष्ठान के भीतर अनेक कार्यो का तुलनात्मक मूल्य निर्धारित करता है, ताकि विभिन्न मूल्य वाले कामों के लिए विभेदात्मक मजदूरी दी जा सके। कार्य के तुलनात्मक मूल्य से अभिप्राय है, जो इन कारकों से प्राप्त होता है– यथा– उत्तरदायित्व, कौशल, प्रयास एवं कार्य की दशायें। यह एक प्रकार से सापेक्ष कार्य मूल्य का मापन है, जिसका उद्देश्य वस्तुगत आधारों पर विभेदक मजदूरी प्रदान करना है। यह कार्य अपेक्षाओं एवं कार्य भिन्नताओं के मध्य अंतर को मापता है और जिसके आधार पर मजदूरी प्रशासन का उद्देश्य प्राप्त किया जाता है, यह किसी कार्य का मूल्य नहीं निर्धारित करता है केवल उसके तुलनात्मक मूल्य को बताता है। इस प्रकार से यह प्रतिष्ठान के प्रत्येक कार्यका सापेक्ष मूल्य निर्धारित करता है। जिसके आधार पर उचित आधार मजदूरी निर्धारित होनी चाहिए।

कार्य मूल्यॉकन के उद्देश्यः– ILO प्रतिवेदन में कार्य मूल्यांकन का उद्देश्य किसी प्रतिष्ठान के विभिन्न कार्यो का सापेक्ष मूल्य एक स्वीकृत तार्किक आधार पर स्थापित करना है।

इस प्रकार से कार्य मूल्यांकन का प्राथमिक उद्देश्य उनकी तुलनात्मक कार्य के आधार पर मजदूरी एवं वेतन निर्धारित करना हे, यह अद्योलिखित बातों के आधार पर ही निर्धारित करता है–

1. समानता एवं वेतन प्रशासन का उद्देश्य।
2. प्रभावी मजदूरी एवं वेतन नियंत्रण।
3. मजदूरी पर श्रम संघों व प्रबंधन के समझौते।
4. अन्य अभिकर्मियों के तुलनात्मक मजदूरी व वेतन के संदर्भ में।

कार्य मूल्यांकन न केवल मजदूरी निर्धारिण में सहायता देता है वरन अद्योलिखित पक्षों में भी सहायता पहुंचाना उसका उद्देश्य है।

1. प्रतिष्ठान के मानककिरण एवं विकास में तथा कार्य की दशाओं में विकास।
2. अधिकारी व अभिकर्मी के अधिकार व दायित्व के स्पष्टीकरण में।

3. तथा अभिकर्मियों के व्यक्तिक विवादों के समाधान में एवं कार्य दर के पुनरावलोकन में और अभिकर्मियों के सांख्य की विकास में।
4. नावेल्स एंड थामसन ने कहा है कि मजदूरी एवं वेतन भुगतान व्यवस्था की समस्त बुराईयों के निराकरण में भी यह उपयोगी है। हम देखते है कि बहुत से अभिकरणों में कार्यरत अभिकर्मी ऊंची मजदूरी व वेतन मान प्राप्त करते है, किन्तु उनमें न तो उच्च कौशल है और न ही परिश्रम न ही दायित्व बोध है।
5. यह जिसके अधिकारी नहीं है, किन्तु प्राप्त कर रहे है और इतना ही नहीं जिनकी उपलब्धि अच्छी नहीं है, वे भी अधिक प्राप्त कर रहे हे। वे योग्यता नहीं अपनी वरिष्ठता के आधार पर भुगतान दर प्राप्त कर रहे है। इस तरह प्रतिष्ठान में अभिकर्मियों में वेतन मजदूरी में व्यापक विविधता है। इतना ही नहीं प्रतिष्ठान के अभिकर्मियों में जाति लिंग, धर्म व राजननीतिक भिन्नता के कारण असमान मजदूरी व वेतन अदायगी हो रही है।

कार्य मूल्यांकन मूलतः संगठन के कार्यो का एक व्यवस्थित केटलॉग (अनुसूची) प्रदान करता है, जो प्रबंधकीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। यह स्मरणीय है, कि कार्य मूल्यांकन केवल कार्य का वर्गीकरण करता है, व्यक्तिगत गुणों का नहीं यह विज्ञान नहीं है किन्तु वेतन, मजदूरी निर्धारण की दिशा में प्रबंधक की दृष्टि से एक विधिवत कार्य प्रणाली है। कार्य मूल्यांकन के सिद्धान्त, सभी व्यवसायों, अधिकारियों सभी प्रकार के कर्मियों पर समान रूप से लागू हो सकते है। यह सिद्धान्त अद्योलिखित रूपों में माने गये है–

1. कार्य का मूल्यांकन करें कर्मचारी का नहीं।
2. मूल्यांकन के लिए चयनित घटक को भली–भांति समझाना चाहिए।
3. घटक भली–भांति चयनित व पूर्णरूपेण परिभाषित होने चाहिए।
4. कोई भी कार्य मूल्यांकन योजना निरीक्षक, फोरमैन तथा कर्मचारी द्वारा अच्छी तरह समझाना चाहिए।
5. पर्यवेक्षक को अपने विभाग के कामों में भाग लेना चाहिए।
6. कार्य मूल्यांकन में कर्मचारियों का सहयोग लेना चाहिए तथा उन्हें विमर्श में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए।
7. प्रबंधकों को पर्यवेक्षकों व कर्मियों से विचार–विमर्श के समय कार्य का मौद्रिक मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। केवल अंक व मूल्य गुण के बारे में बात करनी चाहिए।
8. बहुत अधिक वेतनमान निर्धारित नहीं किये जाने चाहिए।

कार्य मूल्यांकन क्षेत्र एवं सीमायेंः— कार्य मूल्यांकन के अधोलिखित क्षेत्र माने जाते है—यथा—

1. **पदोन्नतिः**—निष्पादन मूल्यांकन का सबसे बड़ा उपयोग यह है कि इससे कर्मचारियों के पदोन्नति के ठोस आधार प्राप्त होते हैं।
2. **स्थान्तरण, सेवायुक्ति, जबरी छुट्टीः—** अन्य प्रशसकीय कार्यवाहियो के लिए कर्मचारियों पर नियंत्रण रखने तथा उपयुकत व्यकित को उपयुक्त कार्य सौंपने की दृष्टि से मूल्यांकन का पर्याप्त महत्व है।
3. **मजदूरी एवं वेतन प्रशासनः—** मजदूरी एवं वेतन निर्धारण के लिए भी निष्पादन मूल्यांकन को आधार माना जाता है।
4. **प्रशिक्षणः**—उपयुक्त निष्पादन मूल्यांकन प्रणाली से दो दृष्टियों से प्रशिक्षण संबंधी उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

   (अ) यह ज्ञात होता है कि किन क्षेत्रों में श्रमिक दक्ष है और किन क्षेत्रों में अकुशल।

   (ब) इससे विशिष्ट प्रशिक्षण चाहने वाले व्यक्तियों तथा सामान्य प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्तियों में भेद किया जा सकता है।
5. **कार्मिक अनुसंधानः—** निष्पादन मूल्यांकन अभिकर्मी अनुसंधान का आधार भी तैयार करता है।
6. **कर्मचारी का आत्म विकासः—** निष्पादन मूल्यांकन से ही प्रत्येक कर्मचारी यह जानकारी प्राप्त कर लेता है कि अन्य सहयोगियों के तुलना में किस स्थान पर है तथा उसे कितने अधिक सुधार की आवश्यकता है।

सीमाएँः— निष्पादन मूल्यांकन कार्य व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है। अतः इसमें कई प्रकार की त्रुटियां पाया जाना सामान्य हैं। इस प्रक्रिया में कुछ प्रमुख त्रुटियाँ ये हैः—

1. **परिवेश प्रभावः**—परिवेश प्रभाव से विभिन्न विशेषताओं एवं घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है। इसमें मूल्यांकन निष्पादन भी प्रभावित होता है।
2. **दयालुया कठोर मूल्यांकनः—** ये दोनों तथ्य पर्यवेक्षक की भावनाओं पर निर्भर करते है कि वे कर्मचारी के प्रति किस प्रकार की धारणा रखते है। यह धारणा ही मूल्यांकन को प्रभावित करती है।
3. **मध्यम प्रवृत्तिः—** सामान्यतः अधिकारी अपना पक्ष एवं उत्तरदायित्व बचाने के लिए सभी अधीनस्थ कर्मचारियों का औसत मूल्यांकन कर देते है।
4. **अन्य पूर्वाग्रहः—** इसके अतिरिक्त जाति, धर्म, लिंग, स्तर आदि के आधार पर भी मूल्यांकन में पक्षपात हो सकता है। मैकफर लैण्ड के अनुसार ''निष्पादन मूल्यांकन में 3 तत्व बाधक बनते हैः—

1–मिथ्या धारणाएँ

2– मनोवैज्ञानिक अवरोध

3–तकनीकी त्रुटियों।

प्रोफेसर बीज का मत है कि''अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थ कर्मचारी का सामान्य अंकन करता है। जो कि मूल्यांकन के लिए उचित नहीं है।

2.11 कार्य मूल्यांकन की पद्धतियाँः

कार्य मूल्यांकन अनेक तकनीकों पर आधारित है। इसे मूल्यांकन विधियों के अर्न्तगत समझा जाता है। ये तकनीकें या विधियों दो वर्गो में विभाजित की जाती है।

1– संख्यात्मक तकनीक या विधि

2– गैर संख्यात्मक तकनीके

गैर संख्यात्मक तकनीकों के अन्तर्गत साधारण एवं तुलनात्मक रैकिंग है और संख्यात्मक तकनीक या विधि के अंतर्गत बिन्दु निर्धारण एवं कारक तुलनात्मक विधि है, जिसे अधोलिखित चित्र के रूप में देख सकते है।

कार्य मूल्यांकन विधि का प्रारूप

(Types of Job Evalutaion Methods)

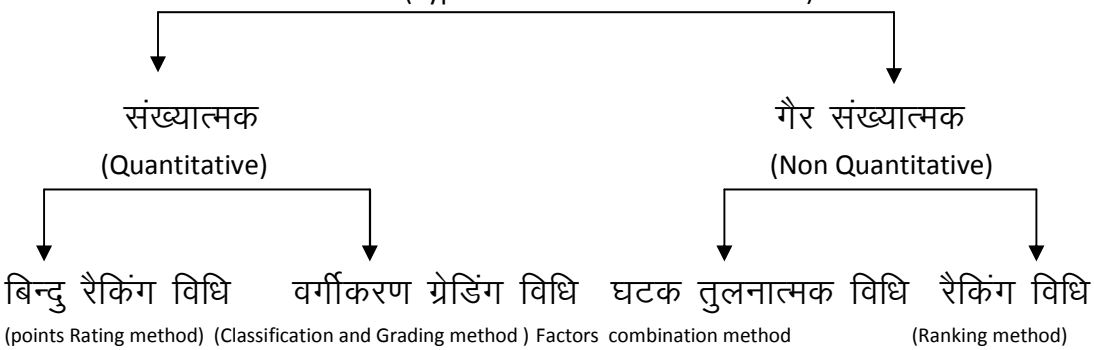

अंक तुलनात्मक विधि

1. गैर संख्यात्मक विधि–

a- क्रम निर्धारण विधि–

b- श्रेणी करण विधि

क्रम निर्धारण विधिः– इस विधि के अंतर्गत कार्य से संबंधित समस्त सूचनाओं के आधार पर प्रत्ये कार्य की श्रेणी निर्धारित कर दी जाती है और उन्हें विभिन्न समूहों में विभक्त कर दिया जाता है। समान श्रेणी वाले समस्त कार्यो को एक ही श्रेणी में रखा जाता है। इस विधि में पांच चरणों का प्रयोग किया जाता हैः–

अ– कार्य विवरण तैयार करना तथा उसका क्रम कार्ड पर अंकित करना।

ब– मुख्य कार्यो व मूल्यांकनकर्ताओं का चयन करना सफल मूल्यांकन के लिए इस से बीस तक कार्य चयनित किये जाने चाहिए।

स– मुख्य कार्यो को उसकी विशिष्ठता के आधार पर क्रमबद्ध करना और एक संपूर्ण सूची तैयार करना।

द– समस्त कार्यो का क्रम निर्धारित करना। इस चरण के अन्तर्गत सभी कार्यो को उनकी कठिनाई, सुविधा, महत्व के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है। मुख्य कार्यो को प्राथमिकता दी जाती है तथा कम महत्वपूर्ण कार्यो का बाद का क्रम दिया जाता है।

य– क्रम निर्धारण के आधार पर कार्य का वर्गीकृत किया जाता है। सामान्यतः आठ या बारह वर्ग बनाये जाते हैं। एवं वर्ग में सम्मिलित किये जाने वाले श्रमिकों को समान मजदूरी प्रदान की जाती है। अंत विभागीय क्रम निर्धारण व उदाहरण निम्नवत है–

रासायनिक	विभागीय तकनीकी वर्ग		Office
विश्लेषात्मक प्रयोगशाला	ड्राईंग आफिस	उत्पादन नियंत्रण	लेखा कार्यालय
वरिष्ठ विश्लेषात्मक रसायनज्ञ विश्लेषात्मक रसायनज्ञ प्रयोगशाला तकनीकी प्रयोगशाला क्लीनर	डिजाइनड्राफ्ट्स मैन वरिष्ट ट्रेसर ट्रेसर तकनीशियन क्लर्क	नियोजन क्लर्क प्रोग्रेस क्लर्क डिस्पैचक्लर्क विशिष्ट क्लर्क	मुख्य लेखा क्लर्क इनवाइस क्लर्क लेखा क्लर्क क्लोजिंग क्लर्क फिलींग क्लर्क

इस विधि के कुछ दोष है, इस पद्वति में स्थान या क्रम निश्चित करने वाले, अधिकारियों के अभिकर्ता पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है, अतएवं क्रम निर्धारण श्रेणियों की उपयुक्तता विश्वसनीय नहीं होती है, प्रत्येक ग्रेड का कम या अधिक होना कार्य की कम अथवा कम होने से संबंधित नहीं होता है। उपयुक्त उदाहरण में यह न ही कहा जा सकता है कि पहली ग्रेड छठे ग्रेड से दुगुना या दस गुनी या बीस गुनी अधिक है, इस विधि का एक दोष यह भी है, कि कोई भी व्यक्ति उसे दिये गये स्तर के प्रति प्रश्न पूछ सकता है कि उसके इस क्रम का आधार क्या था इस प्रणाली का मुख्य गुण सरलता हैं

3. श्रेणी करण विधि : श्रेणी करण विधि में भी पांच चरण सम्मिलित किये जाते है–

अ– कार्य विवरण तैयार करना।

ब– वर्ग विवरण तैयार करना –

इसके अंतर्गत प्रत्येक वर्ग को परिभाषित किया जाता है जिसके आधार पर कार्य के विभिन्न वर्ग तथा स्तर निर्धारित किये जाते हे, एक बार वर्ग निर्धारित किये जाने पर गैर पर्यवेक्षकीय उत्तरदायित्व तथा पर्यवेक्षकीय कार्य उत्तरदायित्व निर्धारित किया जाता है। सामान्यतः दस से बीस मुख्य कार्यो को वर्गीकृत किया जाता है, जिसमें सभी वर्गो के कार्य को सम्मिलित किया जाता है।

द– मुख्य कार्यो का वर्गीकरण–इसके अंतर्गत उपयुक्त वर्ग स्तर के आधार पर मुख्य कार्यो का वर्गीकरण किया जाता है, सम्बन्धों को वर्ग परिभाषा के अनुसार स्थापित करना आवश्यक है।

य– सभी प्रकार के कार्यो का वर्गीकरण करना। एक ही वर्ग मेंसम्मिलित सभी कार्यो की समान मजदूरी दर प्रदान की जानी। कार्य श्रेणीकरण यद्यपि सरल प्रतीत होता है किंतु सामान्य व्यक्ति यह कार्य नहीं कर सकता है। श्रेणी निश्चित करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि उसे कार्य का पर्याप्त ज्ञान हो कार्य श्रेणीकरण योजना निम्न बातों पर आधारित है–

1. शिक्षा व कार्य का ज्ञान।
2. अनुभव– अनुभवी व्यक्ति ही अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर प्रमाप वस्तु का उत्पादन करने में जानकारी रखता है।
3. स्वतः प्रेरणा कल्याण शक्तिः यह तत्व कार्य की कठिनाई का मूल्यांकन करता है तथा व्यक्ति की कार्य के प्रति निष्ठा व कल्पना शक्ति का मूल्यांकन करता है।
4. शारीरिक शक्ति– किसी कार्य के प्रति व्यक्ति विशेष शारीरिक रूप से कितना परिश्रम कर सकता है, उसे कार्य करते समय कितना अधिक व्यस्त और फालतू रहना कितना श्रेय माल को इधर उधर रखने में नष्ट करना पड़ता है, आदि बातों के आधार पर कार्य का मूल्यांकन करना पड़ता है।
5. मानसिक योग्यता– किसी कार्य के प्रति व्यक्ति कितना अधिक एकाग्र हो सकता है तथा कार्यचक्र के समन्वय को बनाये रखने के लिए कितना अधिक दृढ़ चित्र रहता है, इसका अंकन किया जाता है।
6. कार्य प्रणाली व कार्य प्रक्रिया के प्रति उत्तरदायित्व इसके अंतर्गत कम से कम
7. माल नष्ट हो, इस दृष्टि से उपभोग कितनी सतर्कता से किया जाता है। इस तथ्य को देखा जाता है। इसमें मशीनों का क्षय उनको चलाते समय सावधानी आदि के बारे में मूल्यांकन किया जाता है।
8. उत्पाद सामर्थ के प्रति उत्तरदायित्व – इसका उद्देश्य यह पता लगाना होता है,

9. कि सामान्यतः पर्याप्त सावधानी से सामर्थ का कितना अपव्यय रोका जा सकता है।
10. अन्य व्यक्तियों की सुरक्षा – इस तत्व के अंतर्गत सामान्यतः सुरक्षा हेतु की गई कार्यवाही सम्मिलित की जाती है। मनुष्य अपना स्वयं का ध्यान रखने के साथ यदि कह अपने सहयोगी की भी सुरक्षा का ध्यान रखता है तो वह संगठन की दृष्टि से अधिक लाभप्रद साबित होता है।
11. अन्य व्यक्तियों के कार्य के प्रति उत्तरदायित्व– इसका अर्थ केवल यही है कि कर्मी विशेष अपने स्वयं के कार्य के उत्तरदायित्व वहन करते समय वह अन्य कर्मियों को कितना सहयोग व मार्ग दर्शन करता है।
12. कार्य की दशायें– इस तत्व के अंतर्गत कर्मी के कार्य क्षेत्र की दशाएं जैसे– प्रकाश,स्वच्छता एक ही वर्ग में सम्मिलित सभी कार्यो को समान मजदूरी दर प्रदान की जानी चाहिए। ताप, ध्वनि क्षमता एवं उत्पादन को प्रभावित करते हैं।
13. जोखिम जो टाली न जा सके– कार्य करते समय स्वास्थ्य पर प्रभाव व दुर्घटना के रूप में योग्य न टाली जाने वाली हानि को सम्मिलित किया जाता है। जो
14. व्यक्ति पूर्वदर्शी होकर ऐसी घटनाओं की जानकारी दे सकता है। वह अधिक योग्य समझा जाता है।

2.12 कार्य विश्लेषण एवं वर्णन

किसी भी प्रतिष्ठान के कर्मियों की मूलभूत समस्याओं के निवारण हेतु उपक्रम कें किये जाने वाले समस्त कार्यो का विश्लेषण करना आवश्यक है, इसके आधार पर ही कर्मचारियों के चयन, पदोन्नति, प्रशिक्षण पद अवनति आदि कार्य किये जाते है,उपक्रम में कर्मचारियों के चयन का मूल आधार कार्य विश्लेषण होता है। क्योंकि जब तक प्रत्येक कार्य के तत्वों का विस्तृत विवरण नहीं होता हे तब तक योग्य कर्मी का चयन नहीं किया जा सकता। कार्य विश्लेषण को समझने से पहले यह समझना आवश्यक है कि कार्य क्या है? प्रसिद्ध विद्वान् डेल योडर, ''कार्य, उन कार्यो, कर्तव्यों और दायित्वों का समूह है, जो एक व्यक्ति को सौंप जाते है तथा जो अन्य कार्य से भिन्न होते हैं।ओटिस क्ल्यूकर्ट के अनुसार, ''कार्य, समान कौशल, सामान्य ज्ञान, समान उत्तरदायित्व एवं समान कर्तव्यों की स्थितियों का समूह है।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि कार्य का वर्गीकरण उत्पादन विशिष्ठता के आधार पर किया जा सकता है। यदि विशिष्ठीकरण पर्याप्त है, तो सामान्य अवस्थाओं में जो उपकार्य है, वह विशिष्ठीकरण के उपरान्त कार्य कहला सकते है। कार्य के बारे में किसी प्रकार की गलत धारणा को न पनपने के लिए यह जरूरी है, कि कार्य का नामांकन स्पष्ट किया जाए तथा उनके उपकार्यो का निर्धारिण किया जाए। उदाहरणार्थ, एक छोटे कारीगर के लिए

गाड़ी का पहिया बनाना एक कार्य है,उसके लिए लकड़ी जुटाना, छीलना, गडडे तैयार करना व जोड़ना और पहिये पर फ्रेम लगाना उपकार्य है। किन्तु बड़े कारखानों में जहां कई श्रमिक कार्य करते हों, वहां सभी उपकार्य विभिन्न कर्मियों के लिए कार्य हो सकते हैं। कार्य आशय पदों के समूह से है, एक ही पद के विभिन्न स्तरों के समूहों को कार्य कहते हैं। जैसे–टंकणकर्ता के चार पद एक ही कार्य है किसी संगठन में एक कार्य पर एक अथवा अनेक व्यक्ति हो सकते है, इस प्रकार स्पष्ट है, कि कार्य शब्द व्यवसाय तथा पद के समरूप नही है, सामान्यतः किसी भी रिक्त स्थान का विज्ञापन एक स्थिति के बारे में सूचना देता है, एक विशिष्ट स्थान पर लिया गया व्यक्ति या तो विशिष्ट कार्य या तो एक से अधिक कार्य कर सकता है।

कार्य विश्लेषण का अर्थः– कार्य विश्लेषण के अंतर्गत कार्य का विस्तृत अध्ययन किया जाता है इसके द्वारा कार्य के दायित्व, कर्तव्य एवं परिस्थितियां जिसके अंतर्गत कार्य किया जाता है, कार्य का प्रकार, निम्नतम योग्यताये आदि का अध्ययन किया जाता है। कार्य विश्लेषण में कार्य का अध्ययन उसी प्रकार से होता है जैसे शरीर रचना शास्त्र में शरीर का अध्ययन किया जाता है। कार्य विश्लेषण पर अधोलिखित परिभाषायें प्रमुख रूप से मान्य है यथा–

1. **जख एसोबिन–** कार्य विश्लेषण, किसी कार्य से संबंधित तथ्यों का व्यस्थित रूप से संग्रह व अध्ययन करना है जिससे प्रत्येक कार्य को इस ढंग से परिभाषित कर उसकी विशेषतायें बतायी जा सके। जिससे अन्य कार्यो से उनकी प्रथकता स्पष्ट हो जाय।
2. **स्टोन व कैण्डाल,** ''कार्य विश्लेषण एक प्रक्रिया है, जिसका प्रयोग कार्य विशिष्ठ को परिभाषित करने, सूचना प्राप्त करने, प्रेषित करने के लिए किया जाता है।''
3. एस्कार्ट, प्रोदियर एवं स्प्रिंगल, ''कार्य विश्लेषण कार्य से सम्बद्ध क्रियाओं, कर्तव्यों और संबंधों का आलोचनात्मक कार्य मूल्यांकन करने की विधि है''।
4. **डेल योडर–** कार्य विश्लेषण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रत्येक कार्य से संबंधित तथ्यों को योजनाबद्ध प्रणाली से खोज कर अंकित किया जाता है''।
5. **ए डविन फिलापो**, ''किसी कार्य विशेष के संबंध मेंप्रक्रियाओं व उत्तरदायित्व की सूचना एकत्र करने व उनका अध्ययन करने की विधि ही कार्य विश्लेषण है''।
6. **माइकेल जूसियस,** ''कार्य विश्लेषण कर्तव्यों, क्रियाओं, कार्यो के संगठनात्मक पहलुओं के अध्ययन की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विशिष्ठताओं के प्राप्ति जिन्हें कुछ व्यक्ति कार्य विवरण भी कहते है''।

7. **इंग्लैड के श्रम मंत्रालय,** ''कार्य विश्लेषण कार्य के परिश्रम की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कार्य व कार्य के उन भागों को पहचाना जाता है तथा उन स्थितियों को स्पष्ट किया जाता है। कार्य विश्लेषण से अनेक उपयोगी सूचनाये प्रापत होती है–जिन्हें दो भागों में बांटा जाता है।

1. कार्य विवरण
2. कार्य की विशिष्ठता

कार्य वर्णन :– यह एक वर्णनात्मक कथन है, जिससे कार्य क्या है? कर्तव्य व उत्तरदायित्व क्या है? तथा कौन से स्थैतिक तत्व व सामान्य दशायें इसे प्रभावित करती है, आदि बातों के बारे में जानकारी मिलती है। दूसरे शब्दों में यह बताता है कि क्या करना है कैसे करना है तथा क्यों करना है यह समस्त कार्यो का प्रभाण है, जिसमें सर्वग्राह कार्य तत्वों का दिग्दर्शन किया जाता है। कार्य विशिष्ठता यह कार्य को करने के लिए आवश्यक से विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण है यह न्यूनतम योग्यताओंको क्रमबद्ध करता है। किसी कार्य को सही रूप से चलाने के लिए किस प्रकार के श्रम की आवश्यकता होती है। इसको बताता है अर्थात् किसी कार्य संपादन के लिए व्यक्ति में अपेक्षित गुणों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करता है। जिसे निम्न चार्ट द्वारा देखा जा सकता है–

कार्य विश्लेषण	
कार्य विवरण निम्न तत्वों का विवरण	कार्य विशिष्ठता
कार्य की जानकारी कार्य का संक्षिप्त विवरण कर्तव्य जो किये जाते हैं अन्य कार्यों से संबंध पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण मशीन, उपकरण, सामग्री एवं कार्य विवरण कार्य की दशायें दैवी संकट	शारीरिक विशेषतायें मनोवैज्ञानिक विशेषतायें व्यक्तिगत विशेषतायें उत्तरदायित्व अन्य जैविक विशेषतायें

कार्य विवरण के सम्बन्ध में विद्वानों ने निम्न परिभाषायें दी है–

1. फिगल एवं मायर्स, ''कार्य विवरण दिये हुए कार्य अथवा स्थिति के अंगर्तत आने वाले विभिन्न कर्तव्यों, जिम्मेदारियों और संगठनात्मक संबंधों का लिखित सारांश है। यह कार्य विभाजन तथा उत्तरदायित्व के क्षेत्र को परिभाषित करता है, जिससे कार्य विशिष्ठ को अन्य कार्य से प्रथक रखा जा सके।
2. बैथेल, अक्कवाटर, स्मिथ एवं स्टैक मैन, ''कार्य विवरण वास्तव में कार्य विश्लेषण का सार तत्व है, जो कार्य को भली–भांति पहचानने में कार्य विश्लेषक की सहायता करता है।

3. कमिंग के अनुसार, ''कार्य विवरण एक विशिष्ठ कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, कर्तव्यों का और उत्तरदायित्वों का व्यापक विवेचना है।
4. फर्लेफो, ''कार्य विवरण कार्य विश्लेषण का प्रथम और तात्कालिक उत्पादन है, इसके शीर्षक से ही पता चलता है कि यह विवरण प्रकृति से ही वर्णनात्मक है तथा विद्यमान और संगत कार्य तथ्यों के अभिलेख का निर्माण करता है।

कार्य विवरण में निम्न बातें सम्मिलित की जाती है–

1. **कार्य की जानकारी–** इसमें कार्य का मुख्य, गोर्ण शीर्षक, विभाग अनुभाग, संयंत्र, संकेत, संख्या आदि सम्मिलित किये जाते है, विभाग का नाम स्पष्टता जैसे– यांत्रिक विभाग, संसाधन विभाग दिया जाता है। उक्त विभाग व कार्य किस स्थान पर होगा उसकी स्थिति स्पष्ट रूप से बतायी जाती हैं।

2.13 सार संक्षेप

मानव संसाधन आयोजन से अभिप्राय प्रतिष्ठान के संगठित व असंगठित श्रमिक, नियोक्ता, पर्यवेक्षक, प्रबंधक तथा कर्मचारी से है, जिनके श्रम का सदुपयोग करना ही मानव संसाधन का आयोजन है।

मानव संसाधन आयोजन का अर्थ आज व्यापक होता जा रहा है, जिनमें सभी वर्ग के तथा सभी स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के लिए कार्य उपलब्धि एवं उनकी शक्ति का पूर्ण उपयोग करने की दृष्टि सेयोजनाबद्ध कार्यवाही की जाती हैं। मानव संसाधन आयोजन के माध्यम से ही कम प्रयास से ही अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

मानव संसाधन आयोजन का उद्देश्य व्यक्तियों के लिए अवसर की सुलभता तथा मानव संसाधन के सदुपयोग हेतु उनके कार्यो का वर्गीकरण करना और उनके लिए प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना तथा मानव शक्ति की आवश्यकताओं को अनुमानित करना ही उद्देयस है मानव संसाधन आयोजन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती हैः–

1. स्वचालित यंत्रों का प्रयोग, कर्मचारी की दक्षता, कार्य के प्रति उसकी रूचि।
2. भर्ती एवं चयन नीति को ठोस आधार प्रदान करने हेतु मानव संसाधन का आयोजन की आवश्यकता होती हैं।
3. व्यवसाय के आकार अनुरूप के अनुसार मानव संसाधन आयोजन की आवश्यकता होती है।
4. रोजगार अभाव एवं जनाधिक्य के कारण आवश्यकता होती है।
5. मानव संसाधन के आयोजन के माध्यम से ही प्रति इकाई श्रम लागत कम की जा सकती है।

मानव संसाधन आयोजन की प्रक्रिया एक जटिल एवं निरंतन चलने वाली प्रक्रिया है, जो प्रत्येक विभाग में की जाती हैं।

मानव संसाधन के नियोजन से न केवल व्यक्तिक व संरचनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति बल्कि राष्ट्रीय उद्देश्यों की भी पूर्ति होती है।

इसका आयोजन प्रमुख विधियों के रूप में अधोलिखित है–

1. अल्पकालीन नियोजन
2. मध्यकालीन नियोजन
3. दीर्घकालीन नियोजन

मानव संसाधन आयोजन में सम्प्रेषण की विशिष्ठ भूमिका होती है, सम्प्रेषण के माध्यम से ही कर्मचारी दिशा–निर्देश प्राप्त करता और प्रतिष्ठान के उद्देश्यों को भी प्राप्त करता है। मानव संसाधन आयोजन में अभिलेख, लेखा, तथा लागत एवं अंकेक्षण की विशिष्ठ भूमिका होती है।मानव संसाधन आयोजन के क्षेत्र में कार्य मूल्यांकन की अवधारणा और उसके क्षेत्र विचारणीय होते है– इनके संदर्भ में ही कार्य विश्लेषण किया जाता है।

2.13 अभ्यास एवं स्वमूल्यांकन के लिये प्रश्न

1. मानव संसाधन आयोजन की अवधारणा एवं उद्देश्य का वर्णन कीजिए।
2. मानव संसाधन आयोजन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
3. मानव संसाधन आयोजन की विधियों का वर्णन कीजिए।
4. मानव संसाधन आयोजन का मांग एवं पूर्ति के संदर्भ में पूर्वानुमान का वर्णन कीजिए।
5. मानव संसाधन आयोजन में सूचना व्यवस्था की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
6. गणना तथा लागत एवं अंकेक्षण पर टिप्पणी लिखिए।
7. उत्पादकता एवं प्रोत्साहन लाभ की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
8. प्रोत्साहन लाभ की कसौटी और बाधायें क्या है? स्पष्ट कीजिए।
9. कार्य मूल्यांकन की अवधारणा, उसके क्षेत्र एवं पद्धतियों पर विचार स्पष्ट कीजिए।
10. कार्य विश्लेषण के अर्थ एवं विवरण पर अपने विचार दीजिए।

2.14 पारिभाषिक शब्दावली

कार्य विवरण	Job description	कार्य विशिष्ठता	Job Specifitation	कार्य की जानकारी	Job Identifiation
कार्य का संक्षिप्त	Job Summat	अन्य कार्यों से संबंध	Related other jobs	कर्तव्य जो किये जाते हैं	Job fiyord

विवरण पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण	Subervision	दैवी संकट	Hazards	शारीरिक विशेषतायें	Physical Charactericts
कार्य की दशायें	working condtion	जैविक विशेषतायें	biological Charcteristics	उत्तरदायित्व	Responsbility
जनाभाव	over Employment	जनाधिक्य	Under Employment	कार्य मूल्यांकन	Job Evaluation
मध्यम प्रवृत्ति	central tendency	**अन्य पूर्वाग्रह**	other biases	श्रेणी करण विधि	Grading method
उत्पादन नियंत्रण	Production control	नियोजन क्लर्क	Production control	विशिष्ट क्लर्क	Specification Clerk

2.15 संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. सुब्बारात, (चतुर्थ संस्करण 2010) परसोनेल एण्ड ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट। हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. सी.वी. मामोरिया ए.वी. गानकर (2010) श्री ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद, लखनऊ।
3. मामोरिया, चतुर्भुज, सतीश मामोरिया एवं मोहनलाल दशोरा (2007) : ''सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक सम्बन्ध'', आगरा : साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स.
4. डेविस, के0 : ''ह्यूमन रिलेशंस इन बिजिनेस'', PP. 439–41.
5. माइकेल जे0 ज्यूसियस, ''पर्सनेल मैनेजमेण्ट'', PP/ 478–82.
6. भारत सरकार (1951) : ''कोड ऑफ डिसिप्लिन इन इन्डस्ट्री'', PP. 2–3.
7. योडर, डेल, ''हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट''
8. पिगर्स एण्ड मायर्स, ''पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन''.
9. योडर, डेल (1972), ''पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशंस
10. कपूर, टी0एन0 (1986) : ''पर्सनेल एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया''.

इकाई–3

कार्य विश्लेषण

Job Analysis

इकाई की रूपरेखा

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.4 कार्य विश्लेषण की अवधारणा
3.5 कार्य विश्लेषण के लक्षण
3.6 कार्य विश्लेषण के उद्देश्य
3.7 कार्य विश्लेषण से प्राप्त होने वाली सूचनायें (विषय–क्षेत्र)
3.8 कार्य विश्लेषण की सूचनाओं के स्रोत
3.9 कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया
3.10 कार्य विश्लेषण की उपयोगिता
3.11 भूमिका विश्लेषणः एक समाविष्ट अवधारणा
3.12 कार्य अभिकल्प
3.13 कार्य अभिकल्प की तकनीकें
3.14 सार संक्षेप
3.15 अभ्यास प्रश्न
3.16 पारिभाषिक शब्दावली
3.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 परिचय

मानवीय संसाधनों की अधिप्राप्ति, मानव संसांधन प्रबन्धन का प्रथम संचालनात्मक कार्य है, जिसे विभिन्न उप–कार्यों, जैसे–मानव संसाधन नियोजन, भर्ती तथा चयन में उप–विभाजित किया जा सकता है। प्रबन्धतन्त्र को एक कार्य के लिए अपेक्षित व्यक्ति के प्रकार तथा भविष्य में सेवायोजित किये जाने वाले व्यक्तियों की संख्या का निर्धारण करना आवश्यक होता है। दूसरे शब्दों में, एक मानवं संसाधन प्रबन्धक के कार्यों में से एक महत्वपूर्ण कार्य, जितना सम्भव हो सके उतना यथार्थ रूप से व्यक्तियों की संख्या तथा उनके प्रकारों का निर्धारण करना है।

इस कार्य का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि निर्धारित कर्तव्यों को कौन सर्वोत्तम ढंग से सम्पन्न कर सकता है? इसके साथ ही संगठन के लिए उचित समय में उचित कार्य हेतु,

उचित व्यक्ति का पता लगा लेना भी आवश्यक होता है। इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए कार्य का सम्पूर्ण ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

3.2 उद्देश्य

इस कार्य का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि निर्धारित कर्तव्यों को कौन सर्वोत्तम ढंग से सम्पन्न कर सकता है? इसके साथ ही संगठन के लिए उचित समय में उचित कार्य हेतु, उचित व्यक्ति का पता लगा लेना भी आवश्यक होता है। इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए कार्य का सम्पूर्ण ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:–

- कार्य विश्लेषण की अवधारणा को समझ सकेगें।
- कार्य विश्लेषण के लक्षणों को जान सकेगें।
- कार्य विश्लेषण के उद्देश्यों को लिख सकेगें।
- कार्य विश्लेषण से प्राप्त होने वाली सूचनाओं को समझ सकेगें।
- कार्य विश्लेषण की सूचनाओं के स्रोत
- कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेगें।
- कार्य विश्लेषण की उपयोगिता का विवरण कर सकेगें।
- भूमिका विश्लेषणः एक समाविष्ट अवधारणा को समझ सकेगें।
- कार्य अभिकल्प की अवधारणा को समझ सकेगें।
- कार्य अभिकल्प की तकनीकों को जान सकेगें।

3.3 कार्य विश्लेषण की अवधारणा

साधारण शब्दों में कार्य विश्लेषण को एक कार्य के विषय में सूचनाओं को एकत्रित करने की एक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, कार्य विश्लेषण, कार्यों का एक औपचारिक एवं विस्तृत निरीक्षण है। यह एक कार्य के विषय में सूचनाओं के संग्रहण की एक प्रक्रिया है। इस प्रकार, कार्य विश्लेषण, कार्य की विषय–वस्तु, भौतिक परिस्थितियों जिनमें कार्य सम्पादित किया जाता है तथा कार्य के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए आवश्यक पात्रताओं का व्यवस्थित अनुसंधान है। इसकी कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें निम्नलिखित प्रकार से है:

1. **ई.जे. मैकॉर्मिक** के अनुसार'' कार्य विश्लेषण को कार्यों के विषय में सूचना प्राप्त करने के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है।'' (1979, पृ० 20)
2. **एम.एल.ब्लम** के अनुसार, ''कार्य विश्लेषण की परिभाषा एक कार्य से सम्बन्धित विभिन्न अंगभूतों, कर्तव्यों, कार्य–दशाओं तथा कर्मचारी की व्यक्तिगत पात्रताओं के समुचित अध्ययन के रूप में की जा सकती है।'' (1957,पृ. 325)

3. **एडविन बी. फिलिप्पो** के अनुसार, ''कार्य विश्लेषण एक कार्य विशेष की क्रियाओं एवं उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में सूचनाओं का अध्ययन करने एवं उन्हें एकत्रित करने की प्रक्रिया है।'' (1984, पृ०114)

3.4 कार्य विश्लेषण के लक्षण

कार्य विश्लेषण की परिभाषाओं के अध्ययन से इसके जो लक्षण सामने आते हैं, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण लक्षण निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. कार्य विश्लेषण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मानव संसाधन प्रबन्धन तकनीक है। मानवीय संसाधनों की प्राप्ति में यह प्रथम पग होता है।
2. कार्य विश्लेषण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रत्येक कार्य के विषय में तथ्यों का व्यवस्थित रूप से अवलोकन एंव अध्ययन किया जाता है।
3. कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत उस कार्य के विषय में तथ्यों का संकलन एवं अध्ययन किया जाता है जो अस्तित्व में होता है।
4. कार्य विश्लेषण कार्य के मानक निर्धारित करने की एक प्रक्रिया है। ये मानक,समुचित कार्य निष्पादन के लिए अपेक्षित न्यूनतम स्वीकार्य पात्रताओं निपुणताओं तथा योग्यताओं की शर्ते निर्दिष्ट करते है।

कार्य विश्लेषण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत एक निश्चित कार्य से सम्बन्धित क्रियाकलापों, कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों, अन्य दूसरे कार्यों के साथ सम्बन्धों तथा उसके सफल निष्पादन हेतु अपेक्षित पात्रताओं, निपुणताओं तथा योग्यताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है।

3.5 कार्य विश्लेषण के उद्देश्य

यद्यपि कार्य विश्लेषण सम्पूर्ण मानव संसाधन प्रबन्धन गतिविधियों के लिए एक अत्यन्त आवश्यक आधार होता है, परन्तु इसके विशेषीकृत उद्देश्यों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता हैः

1. कर्मचारियों की अधिप्राप्ति के लिए उचित एवं तर्कसंगत आधार स्थापित करना।
2. प्रत्येक कार्य के विषय में अवलोकन एवं अध्ययन के माध्यम से मानव संसाधन नियोजन के लिए आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराना।
3. कार्य मूल्यांकन के लिए आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं को उपलब्ध कराना।
4. प्रत्येक कार्य के लिए अपेक्षित न्यनतम स्वीकार्य पात्रताओं, निपुणताओं तथा योग्यताओं सम्बन्धी मानकों को निर्दिष्ट करके कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन सम्बन्धी प्रक्रिया को सुगमता प्रदान करना।
5. कर्मचारियों के लिए प्रभावी प्रशिक्षण एवं विकास के कार्यक्रमों की योजना तथा विषय–वस्तु का निर्माण करने में सहायता प्रदान करना।

6. किसी कार्य विशेष को सम्पादित करने हेतु अपेक्षित योग्यता सम्बन्धी सूचना उपलब्ध कराकर मजदूरी एवं वेतन के निर्धारण में योगदान देना।

3.6 कार्य विश्लेषण से प्राप्त होने वाली सूचनायें (विषय–क्षेत्र)

कार्य विश्लेषण एक कार्य के विभिन्न पहलुओं की व्याख्यात्मक अध्ययन होता है, जिसके अन्तर्गत कार्य सम्बन्धी कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों, कार्य की प्रकृति एवं कार्य–दशाओं तथा कार्य हेतु अपेक्षित क्षमताओं एवं योग्यताओं का समावेश होता है। सामान्यतः कार्य विश्लेषण से प्राप्त होने वाली सूचनाओं अथवा इसके विषय क्षेत्र का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है:

1. कार्य परिचय

(i) कार्य शीर्षक
(ii) कार्य संख्या

2. कार्य की प्रमुख विशेषतायें

(i) कार्य स्थल
(ii) कार्य का भौतिक पर्यावरण
(iii) कार्य का संगठनात्मक पर्यावरण
(iv) कार्य सम्बन्धी जोखिम

3. कार्य के अन्तर्गत क्रियाकलाप

(i) कार्य की प्रक्रियायें
(ii) कार्य के अंतर्गत निर्धारित कर्तव्य
(iii) कर्तव्यों के निष्पादन की विधि

4. कार्य का अन्य कार्यों से सम्बन्ध

(i) कार्यों के मध्य समन्वय
(ii) सहयोगी कर्मचारी
(iii) सहायक तथा अधीनस्थ

5. कार्य की प्रौद्योगिकी

(i) कार्य में प्रयुक्त यन्त्र एवं उपकरण
(ii) कार्य की तकनीकें
(iii) कार्य में प्रयुक्त साधन एवं सामग्री

6. कार्य निष्पादन मानक

(i) गुणवत्ता एवं मात्रा की दृष्टि से अपेक्षित उत्पादन
(ii) कार्य मानक
(iii) कार्य में लगने वाला समय

7. कार्य के लिए अपेक्षायें

(i) शिक्षा एवं प्रशिक्षण
(ii) कार्य अनुभव
(iii) निपुणतायें
(iv) शारीरिक एवं मानसिक योग्यतायें

3.7 कार्य विश्लेषण की सूचनाओं के स्रोत

कार्य विश्लेषण के विषय में सूचनाओं को तीन प्रमुख स्त्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है, तथा वे है:

1. एक कार्य को वास्तव में जो कर्मचारी सम्पन्न करते है, उनसे;
2. अन्य कर्मचारियों जैसे– सुपरवाइजर एवं फोरमैन, जो एक कार्य का सम्पन्न करने के दौरान कर्मचारियों का निरीक्षण करते हैं तथा फलस्वरूप इसके विषय में ज्ञान अर्जित करते है, उनसे; तथा
3. एक कार्य को कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न करने का निरीक्षण करने के लिए विशेष रूप से नियुक्त बाहरी अवलोकनकर्ताओं से। इस प्रकार के बाहरी व्यक्तियों को' व्यवसाय कार्य विश्लेषक' कहा जाता है। कभी–कभी विशेष कार्य–समीक्षा समितियाँ भी गठित की जाती हैं

कार्य विश्लेषण के अंग : कार्य विश्लेषण के तीन महत्वपूर्ण अंग हो सकते है, जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है

(i) कार्य विवरण
(ii) कार्य विशिष्टता
(iii) कर्मचारी विशिष्टता

(I) कार्य विवरण : कार्य विवरण एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो मूल रूप से विवरणात्मक प्रकृति का होता है तथा जिसमें कार्य के निष्पादन हेतु अपेक्षित क्रियाकलापों, कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों, कार्य की भौतिक दशाओं तथा उसमें प्रयुक्त यन्त्रों एवं उपकरणों आदि का उल्लेख किया जाता है। यह एक ऐसा लिखित वक्तव्य है, जिसमें दर्शाया जाता है कि कार्य–धारक से अपेक्षित वास्तविक क्रियायें क्या हैं? इनके निष्पादन में उसे किन साधनों की आवश्यकता होगी? तथा उसके कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व क्या होगें? जैसे कि एडविन बी. फिलिप्पो ने कहा है कि, ''कार्य विवरण एक कार्य विशेष के कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का व्यविस्थत एवं तथ्यपरक वर्णन है।''(1984, पृ० 114)

इस प्रकार हम संक्षेप में यह कह सकते है कि कार्य विवरण यह बताता है कि क्या करना है? कैसे करना है? तथा क्यों करना है? यह प्रत्येक कार्य के मानक निर्धारित करता है।

अच्छे कार्य विवरण की विशेषतायें : कार्य विवरण के अभिलेखन के दौरान निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

1. कार्य विवरण में कार्य की प्रकृति तथा उसके विषय–क्षेत्र का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
2. कार्य विवरण संक्षिप्त, तथ्यपरक एवं सुस्पष्ट होना चाहिये। साथ ही, इसमें कार्य का एक स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
3. कार्य विवरण में कार्य के कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये।

कार्य विवरण की विषय वस्तु : सामान्यतः एक कार्य विवरण के प्रारूप के अन्तर्गत विषय–वस्तु के रूप में निम्नलिखित सूचनाओं का समावेश किया जाता है:

1. **कार्य परिचयः** कार्य का शीर्षक, विभाग, उप–विभाग,संयन्त्र तथा कार्य संख्या आदि।
2. **कार्य सारांशः** सम्पूर्ण रूप से कार्य क्या है? इसके विषय में एक संक्षिप्त विवरण।
3. **कार्य कर्तव्यः** कार्य की प्रमुख एवं सहायकता क्रियायें, कार्य की विधि कार्य में प्रयुक्त साधान एवं सुविधायें तथा कार्य में लगने वाला समय आदि।
4. **प्रदत्त पर्यवेक्षणः** कार्य हेतु प्रदत्त पर्यवेक्षण का स्तर तथा जवाबदेही आदि।
5. **अन्य कार्यों से सम्बन्धः** कार्य की अन्य कार्यो के सापेक्ष स्थिति, अन्य कार्यों से लम्बवत् एवं क्षैतिजीय सम्बन्ध तथा कार्यों के मध्य समन्वय की स्थिति आदि।
6. **यन्त्र औजार तथा सामग्रीः** कार्य के लिए अपेक्षित यंत्र, औजार तथा सामग्री आदि।
7. **कार्य–दशायें:** कार्य का भौतिक पर्यावरण, जैसे– तापमान, प्रकाश, ध्वनि, प्रदूषण, नमी, कार्यस्थल का वातावरण तथा जोखिम आदि।

कार्य विवरण के लाभ : कार्य विवरण, मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकार से लाभदायक होता हैं:

1. कार्य विवरण के माध्यम से कार्य का वर्गीकरण तथा श्रेणीकारण सम्भव होता है।
2. कार्य विवरण संगठन के मानव संसाधन प्रबन्धक को चयन प्रक्रिया के लिए आवेदकों की तुलना करने तथा उनकी छँटनी करने में सहायता प्रदान करता है।
3. सुस्पष्ट कार्य विवरण के उपलब्ध होने से कर्मचारी को उसके कार्य के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करना सुविधाजनक होता है।
4. कार्य विवरण के माध्यम से प्रबन्धक को कर्मचारी के औचित्य का निर्धारण करने में सुविधा होती है, जिसके फलस्वरूप कर्मचारी के स्थानान्तरण, पदोन्नतितथा पद अवनति का कार्य आसान हो जाता है।

5. कार्य विवरण के होने से कर्मचारी को कार्य के प्रति समझ विकसित करने में सहायता प्राप्त होती है, जिससे उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

6. कार्य विवरण की उपस्थिति में कार्य की जटिलता एवं विविधता के आधार पर कर्मचारी की मजदूरी अथवा वेतन का निर्धारण आसान हो जाता है।

(II) कार्य विशिष्टता : कार्य विशिष्टता कार्य को संतोषजनक रूप से सम्पादित करने के लिए अपेक्षित मानवीय विशेषताओं का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है। यह कार्य को सफलता सम्पन्न करने हेतु किसी व्यक्ति में आवश्यक पात्रताओं का वर्णन करता है। कार्य विशिष्टता, एक कार्य विवरण की एक तार्किक अपवृद्धि होती है। प्रत्येक कार्य विवरण के लिए, कार्य विशिष्टता का होना वांछनीय होता है। यह संगठन को, एक कार्य विशेष का उत्तरदायित्व देने हेतु किस प्रकार के व्यक्ति की आवश्यकता है, इसका पता लगाने में सहायता प्रदान करता है। जैसा कि एडविन बी. फिलिप्पो को कथन है कि, ''कार्य विशिष्टता उन न्यूनतम स्वीकार्य मानवीय विशेषताओं का विवरण है, जो एक कार्य को उचित ढंग से सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है।''(1984, पृ० 114)

कार्य विशिष्टता की विषय–वस्तु : एक कार्य विशिष्टता के प्रारूप के अन्तर्गत विषय–वस्तु के रूप में सामान्यतः कर्मचारी योग्यता सम्बन्धी निम्नलिखित सूचनायें सम्मिलित की जाती हैं

1. शारीरिक विशिष्टतायें: आयु, लिंग, कद, वजन, स्वास्थ्य, दृष्टि, सुनने की क्षमता, शारीरिक क्षमता तथा यन्त्रों के संचालन की क्षमता आदि।
2. मनोवैज्ञानिक विशिष्टतायें: गणना करने की क्षमता, व्याख्या करने की क्षमता, नियोजन की क्षमता निर्णयन की क्षमता, एकाग्रचित होने की योग्यता, व्यवस्था करने की क्षमता, मानसिक सन्तुलन, स्मरण शक्ति तथा सतर्कता आदि।
3. संवेगात्मक तथा सामाजिक विशिष्टतायें: संवेगात्मक स्थिरता, लोचशीलता, मानवीय सम्बन्धों में सामाजिक अनुकूलनशीलता तथा वस्त्र, हाव–भाव, सौम्यता एवं स्वर की विशेषताओं सहित व्यक्तिगत प्रकटन आदि।
4. व्यक्तिगत विशिष्टतायें: वाक् चातुर्य, उत्साह का स्तर, पहल करने की क्षमता, जानकारी ग्रहण करने की क्षमता तथा प्रस्तुतीकरण आदि।

कार्य विशिष्टता, चयन प्रक्रिया में अत्यन्त उपयोगी होता है, क्योंकि यह एक कार्य विशेष के लिए नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति हेतु अपेक्षित विशेषताओं का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है।

(II) कर्मचारी विशिष्टता : कर्मचारी विशिष्टता, मानवीय योग्यताओं अथवा धरित विशेषताओं से सम्बन्धित होता है तथा यह उन पात्रताओं का उल्लेख नहीं करता है, जो कि मानवीय

योग्यताओं को सूचित करते है। पात्रता, योग्यताओं का मापन करने का एक मानक है, जो कुछ निश्चित योग्यताओं, निपुणताओं तथा ज्ञान आदि के स्वामित्व को प्रमाणित करता है। अतः कर्मचारी विशिष्टता एक कार्य के लिए एक पद–धारक की न्यूनतम अपेक्षित पात्रताओं, जैसे–शारीरिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आदि का एक विवरण है, जो भावी कर्मचारी से कार्य सम्पन्न करने के लिए न्यूनतम मानवीय योग्यताओं (जैसा कि कार्य विशिष्टता में उल्लिखित किया गया है) ये युक्त होने की अनिवार्यता का वर्णन करता है।

कार्य विशिष्टता की सूचनाओं को, कर्मचारी विशिष्टता की सूचनाओं में यह ज्ञात करने की उद्देश्य से परिवर्तित करना आवश्यक है कि एक पद को भरने के लिए किस प्रकार के व्यक्ति की आवश्यकता है। कर्मचारी विशिष्टता एक लोकप्रिय उत्पादन नाम के सामन होता है, जो यह परिणाम निकालता है कि एक विशेष कर्मचारी विशिष्टता से युक्त अभ्यर्थी, कार्य विशिष्टता के अन्तर्गत उल्लिखित मानवीय योग्यताओं से प्रायः युक्त है। उदाहरण के लिए एक एम.बी.ए. की शैक्षिक योग्यता से युक्त अभ्यर्थी सामान्यतः प्रबन्धन की अवधारणाओं को जानता है तथा प्रबन्धकीय निपुणताओं, जैसे– विश्लेषण करने की निपुणता, निर्णय–निर्माण की निपुणता, व्याख्या करने की निपुणता तथा अन्तर्वैयक्तिक निपुणताओं को धारण करता है। फिर भी इस मान्यता की प्रमाणिकता की जाँच चयन परीक्षा तथा अन्य प्रविधियों के माध्यम से की जा सकती है। कर्मचारी विशिष्टता, एक कार्य विशेष के लिए अभ्यर्थियों की विशेष श्रेणी के औचित्य का पता लगाने में उपयोगी होता है।

कर्मचारी विशिष्टता की विषय–वस्तु : सामान्यतः एक कर्मचारी विशिष्टता के प्रारूप के अन्तर्गत विषय–वस्तु के रूप में निम्नलिखित सूचनाओं का समावेश किया जाता हैः

1 आयु
2. लिंग
3. शैक्षिक योग्यतायें
4. प्राप्त प्रशिक्षण
5. अनुभव
6. शारीरिक विशिष्टतायें
7. सामाजिक विशिष्टताये
8. पारिवारिक पृष्ठभूमि
9. पाठ्येत्तर गतिविधियाँ
10. रूचियाँ

कार्य विश्लेषण की सूचनायें एकत्रित करने की विधयाँ : कार्य विश्लेषण की सूचनाओं को एकत्रित करने हेतु अनेक विधियाँ उपयोग में लायी जाती है फिर भी उसमें से कोई भी

परिपूर्ण नहीं है। इसलिए वास्तविक अभ्यास में, कार्य विश्लेषण तथ्यों को प्राप्त करने के लिए भिन्न–भिन्न विधियों के एक संयोजन का उपयोग किया जाता है। इनमें से प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं:

1. कार्य निष्पादन विधि : इस विधि के अन्तर्गत कार्य विश्लेषक कार्य का प्रत्यक्ष रूप में अनुभव प्राप्त करने तथा क्रियाओ एवं उत्तरदायित्वो से परिचित होने के उद्देश्य से स्वयं की उसक कार्य का निष्पादन करता हैख् जिसका कि विश्लेषण किया जाता है। यह विधि उन्ही कार्यों के विश्लेषण में उपयोगी होती हैं जिनमें कम निपुणता की आवश्यकता होती है। तथा जिन्हें सरलतापूर्वक सीखा जा सकता है। यह उन कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं जो कि खतरनाक है अथवा जिनमें विस्तृत प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

2. वैयक्तिक अवलोकन विधि : कार्य विश्लेषण की सूचनायें प्राप्त करने की यह एक लोकप्रिय एवं सरल विधि है। इसके अन्तर्गत कर्मचारी का कार्य–स्थल पर कार्य करते हुए अवलोकन किया जाता है। अवलोकन के दौरान विभिन्न प्रश्न पूछ कर क्रियाओं को समझना अत्यन्त सरल हो जाता है। परन्तु प्रशासकीय कार्यों, जिसमें अधिकतर सोच–विचार करना होता है तथा मानसिक श्रम करना पड़ता है, उनमें इस विधि का उपयोग करना सम्भव नहीं है। ऐसे कार्यों में भी यह विधि उपयोगी नहीं होती है, जिनमें कार्य रुक–रुक कर तथा लम्बे समय के लिए चलता है।

3. निर्णायक घटना विधि : निर्णायक घटना विधि, कार्य विश्लेषण का एक गुणात्मक दृष्टिकोण है, जो कार्य अथवा क्रियाओं के व्यावहारिक रूप से संकेन्द्रित विशेष विवरणों को प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत केवल उन्हीं घटनाओं का अध्ययन किया जाता हैं जो कि कार्य के सफल अथवा असफल निष्पादन को प्रदर्शित करती है। पद–धारकों से असामान्य घटनाओं तथा प्रसंगों आदि का वर्णन करने के लिए कहा जाता है। जो कि पूर्व में घटित हो चुके हैं तथा जो कार्य की प्रकृति पर प्रकाश डालते हों। ये घटनायें एवं प्रसंग प्रभावी अथवा अप्रभावी कार्य व्यवहार को दर्शाते है। ये सभी कठिन निर्णय लेने के अवसर होती हैं, जिनसे यह ज्ञात किया जा सकता हैं कि कार्य के लिए किन योग्यताओं, सूचनाओं, गुणों तथा मानसिक चेतना की आवश्यकता होती है।

4. साक्षात्कार विधि : साक्षात्कार विधि के अन्तर्गत कार्य विश्लेषक कर्मचारी से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करते हुए कार्य के सम्बन्ध में सूचनाओं को एकत्रित करता है। ये सूचनायें कर्मचारी से प्रश्न पूछकर तथा विश्लेषक द्वारा स्वयं अवलोकन करके एकत्रित की जाती है। इसके लिए प्रश्नों की एक अनुसूची का निर्माण करके उसका प्रयोग करना उत्तम होता है इस विधि के द्वारा कार्य के सम्बन्ध में कर्मचारी तथा पर्यवेक्षक दोनों के विचार प्राप्त किये जा सकते हैं।

यद्यपि कि साक्षात्कार विधि छिपी हुई सूचनाओं को प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती है, जो कि कभी–कभी अन्य विधियों के माध्यम से उपलब्ध नहीं होती हैं, परन्तु फिर भी इसकी कुछ सीमायें हैं, जैसे (1) यह समय एवं धन के हिसाबसे खर्चीली विधि है; (2)सूचनाओं की विश्वसनीयता कार्य विश्लेषक की निपुणताओं पर निर्भर करती है तथा यदि वह कर्मचारी से संदिग्ध प्रश्न पूछता है तो वे गलत हो सकती है; तथा (3) कर्मचारी की कार्य विश्लेषक के प्रति शंका के कारण वह महत्वपूर्ण सूचनायें छिपा सकता है।

साक्षात्कार विधि का प्रयोग करते समय कार्य विश्लेषक को इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए– (1) कर्मचारी को साक्षात्कार का उद्देश्य स्पष्ट करना चाहिए; (2) कर्मचारी के विचारों को अच्छी तरह समझना चाहिए (3) सोच विचार कर उपयुक्त एवं समयानुकूल प्रश्न पूछने चाहिये (4) कर्मचारी की कार्य रूचि प्रकट करनी चाहिए तथा (5) कर्मचारी से प्राप्त सूचनाओं को अवलोकन करते हुए जाँच भी करते रहना चाहिये।

इस प्रकार उपरिलिखित सुझावों को ध्यानमें रखते हुए इस विधि का प्रयोग द्वारा कार्य के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

5. प्रश्नावली विधि : प्रश्नावली विभिन्न प्रश्नों से युक्त ऐसा प्रपत्र है, जो कर्मचारी को भरने के लिए दिया जाता हैं इसमें कार्य से सम्बन्धित क्रियाओं, उत्तरदायित्वों तथा निष्पादन मानकों आदि के विषय में अनेक प्रश्न होते हैं। समान्यत; यह प्रश्नावली कार्य विश्लेषक द्वारा सम्बन्धित कर्मचारियों के अधिकारी को दे दी जाती है। जो उन्हे कार्य के समय कर्मचारियों से भरवाता है तथा तत्पश्चात् उन्हें कार्य विश्लेषक के विभाग को भेज देता है यह विधि साक्षात्कार विधि की अपेक्षा कम खर्चीली होती है। तथा इसमें सूचनायें एकत्रित करने में समय भी कम लगता है। साथ ही, इसमें अधिक संख्या में कर्मचारी भाग ले सकते है। कुछ प्रमाणिक प्रश्नावलियों का भी प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ निम्नलिखित प्रकार से है

(अ) वस्तुस्थिति विश्लेषण प्रश्नावलीः यह एक मानकीकृत प्रश्नावली है, जो कार्य उन्मुख घटकों को परिमाणात्म रूप से परखने के लिए विकसित की गयी है।

(ब) प्रबन्ध वस्तुस्थिति विवरण प्रश्नावली : यह एक मानकीकृत संयन्त्र है , जो विशेष रूप में प्रबन्धकीय कार्यों के विश्लेषण करने में उपयोग के लिए अभिकल्पित की गयी है।

प्रश्नावली विधि में भी कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती है जैसे–(1) इसमें अलग–अलग प्रश्न पूछना सम्भव नहीं है (2) इसमें विभिन्न कर्मचारियों द्वारा एक ही प्रश्न को भिन्न–भिन्न अर्थों में लिया जा सकता है (3) कई बार भरी हुई प्रश्नावलियाँ भी अपूर्ण अपर्याप्त तथा असंगतियों से युक्त होती है।

3.8 कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया

कार्यो को एक सुव्यस्थित प्रक्रिया के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है, जिसके कुछ निश्चित चरण होते है। इन चरणों के माध्यम से कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है।

1.संगठनात्मक सूचनाओं का संग्रहण : कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया के प्रथम चरण में संगठन के सभी कार्यों का व्यापक अवलोकन किया जाता है, ताकि विभिन्न कार्यों के बीच सम्बन्धों, संगठनात्मक लक्ष्यों तथा विभिन्न कार्यों के महत्व के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सके। इस हेतु संगठनात्मक चार्ट, कार्य–श्रेणी विवरणों तथा कार्य–प्रवाह विवरणों आदि का अध्ययन किया जाता हैं इसमें विभिन्न कार्यों के पारस्परिक सम्बन्धों, कार्य–समूह की सामान्य आवश्यकताओं तथा कार्य मे संम्मिलित विभिन्न क्रियाओं के प्रवाह का ज्ञान हो जाता है।

2. कार्य विश्लेषण कार्यक्रम का निर्माणः इसके पश्चात कार्य विश्लेषण का कार्यक्रम तैयार किया जाता है। इसके अन्तर्गत विश्लेषण के लिए इसके उपयोग के विशिष्ट क्षेत्रों तथा उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। साथ ही, कार्य विश्लेषण के लिए प्रभारी अधिकारी, समय अनुसूची तथा बजट आदि के विषय में निर्णय लिये जाते हैं।

3.विश्लेषित किये जाने वाले प्रतिनिधि कार्यों का चयनः संगठन के सभी कार्यों का विश्लेषण करना अत्यन्त ही खर्चीला तथा समय नष्ट करने वाला कार्य है। इसलिए कार्य विश्लेषक कुछ प्रतिनिधिक कार्यों का चयन कर लेता है, जो कि अपनी–अपनी श्रेणी के कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। विभिन्न चयनित कार्यों के मध्य प्राथमिकता का निर्धारण कर लेना भी उचित होता है।

4. कार्य विश्लेषण तथ्यों का संग्रहणः इस चरण के अन्तर्गत कार्य विश्लेषण के लिए तथ्य एकत्रित किये जाते हे। तथ्यों को एकत्रित करने के लिए अनेक विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सूचनाओं के एकत्रीकरण के लिए केवल उसी विधि का उपयोग किया जाये, जो कि दी गयी परिस्थिति में स्वीकार्य एवं विश्वनीय हो।

5. कार्य विवरण तैयार करना : इस चरण के अन्तर्गत कार्य की विषय–वस्तु के रूप मं क्रियाओं, कर्तव्यों उत्तरदायित्वों तथा संचालनों आदि का वर्णन किया जाता है। कार्य–धारक से कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का पालन करना तथा कार्य विवरण के अन्तर्गत अनुसूचित क्रियाओं तथा संचालनों का निष्पादन करना अपेक्षित होता है।

6. कर्मचारी विशिष्टता तैयार करना : इस अन्तिम चरण के अन्तर्गत कार्य विशिष्टता की मानवीय योग्यताओं को एक कर्मचारी विशिष्टता में परिवर्तित किया जाता है। कर्मचारी विशिष्टता, शारीरिक पात्रताओं, शैक्षिक योग्यताओं तथा अनुभव आदि का वर्णन करता है, जो कि यह बताता है कि इन योग्यताओं से युक्त अभ्यर्थी कार्य विशिष्टता में अनुसूचित न्यूनतम मानवीय योग्यताओं को धारण करता है।

3.9 कार्य विश्लेषण की उपयोगिता

कार्य विश्लेषण, मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत एक अत्यन्त महत्वपूण्र कार्य होता है। यह संगठन के मानवीय संसाधनों के विषय में अनेकों आवश्यक सूचनायें प्रदान करता है।

जिनसे कर्मचारियों के सेवायोजन, पदोन्नति, प्रशिक्षण, निष्पादन मूल्यांकन, कार्य मापन तथा वृत्ति नियोजन आदि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते है। कार्य विश्लेषण, मानव संसाधन प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित कार्यों में उपयोगी होता है:

1. मानव संसाधन नियोजन में उपयोग : कार्य विश्लेषण, मानवीय संसाधन आवश्यकता का ज्ञान एवं निपुणताओं के रूप में पूर्वानुमान में सहायता प्रदान करता है। यह कार्यों के बीच पार्श्विक तथा उर्ध्व सम्बन्धों को व्यक्त करते हुए एक सुव्यवस्थित पदोन्नति तथा स्थानान्तरण नीति के निर्माण को सहज बनाता है। यह एक संगठन के अन्तर्गत आवश्यक मानवीय संसाधन योग्यता के निर्धारण में भी सहायता प्रदान करता है।

2. भर्ती एवं चयन में उपयोग : कार्य विश्लेषण के द्वारा कार्य सम्बन्धी, कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों तथा योग्यताओ का निर्धारण कर लिया जाता हैं साथ ही कर्मचारियों की योग्यताओं, रूचियों तथा व्यक्तिगत का भी निर्धारण कर लिये जाने में कर्मचारियों के प्रकार तथा चयन की विधियों के विषय में निर्णय लेना आसान हो जाता है।

3. प्रशिक्षण एवं विकास में उपयोग : कार्य विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि प्रत्येक कर्मचारी से किस प्रकार के कार्य एवं योग्यतायें अपेक्षित हैं तथा अन्य कार्यों के सम्बन्ध में उसके उत्तरदायित्व क्या है। इससे प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने, प्रशिक्षण हेतु कर्मचारियों का चुनाव करने तथा विकास योजनायें तैयार करने में सहायता प्राप्त होती है।

4. कार्य वर्गीकरण एवं कार्य मूल्यांकन में उपयोग : कार्य विश्लेषण से प्राप्त सूचनायें कार्य समूहों के गठन के माध्यम से कार्य वर्गीकरण में सहायता होती हैं। साथ ही इनसे विभिन्न कार्यों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है इसके अतिरिक्त, कार्य विश्लेषण, कार्य मूल्यांकन का भी आधार है, जिसके द्वारा संगठन के अन्तर्गत कार्यों का तुलनात्मक मूल्य निर्धारित किया जाता है।

5. निष्पादन मूल्यांकन में उपयोग : कार्य विश्लेषण के आधार पर कर्मचारियों के कार्य निष्पादन के मानक निर्धारित किये जाते है। इन मानकों के द्वारा कर्मचारियों का निष्पादन मल्यांकन करना अत्यन्त सहज हो जाता हैं।

6. मजदूरी एवं वेतन प्रशासन में उपयोग : कार्य विश्लेषण के द्वारा कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन हो जाता है, जिससे कि श्रेष्ठ मजदूरी पद्धतियों एवं वेतन दरों का विकास किया जाता है। इससे मजदूरी की असमानताओं को दूर करने तथा अन्य संगठनों में प्रचलित मजदूरी की दरों के साथ तुलना करने में सहायता प्राप्त होती है।

7. सुरक्षा एवं स्वास्थ्य में उपयोग : कार्य विश्लेषण से कार्यों के सम्बन्ध में जोखिमों तथा अस्वास्थ्यकर परिणामों की जानकारी प्राप्त हो जाती है। जिसके फलस्वरूप प्रबन्धकगण इन जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करने तथा कार्य सम्बन्धी अस्वास्थ्यकर दशाओं को दूर करने में उपाय करते है।

3.10 भूमिका विश्लेषणः एक समाविष्ट अवधारणा

कार्यों को सामूहिक कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के आधार पर तथा उनके द्वारा अभिकल्पित एवं विश्लेषित किया जाता है। कार्य विश्लेषण, क्रियात्मक अथवा यांत्रिक कार्यों के लिए उपयुक्त होता है। जिसे विशेष रूप से अभिकल्पित किया जा सकता है। परन्तु प्रबन्धकीय परिस्थितियों पर आधारित अनेकों क्रियाकलापों को सम्पन्न करते हैं तथा उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं।

यह अनुभव किया गया है कि कार्य विश्लेषण की सीमाओं को देखते हुए एक कर्मचारी द्वारा सम्पादित की जाने वाली विभिन्न भूमिकाओं को सम्मिलित करने के लिए कार्य विश्लेषण में विस्तार किया जा चाहिए। एडविन बी,फिलिप्पों के अनुसार, '' एक भूमिका अपेक्षित व्यवहार अन्तःक्रियाओं के सम्पूर्ण प्रतिमान तथा एक नियत कार्य को धारण कर रहे व्यक्ति को ध्यान में रखते हुए भावनाओं से बनी होगी'' (1984, पृ०121)। भूमिका की अवधारणा, कार्य की अवधारणा की अपेक्षा कुछ अधिक ही है सामान्यतः एक कार्य के पद धारक से कर्तव्यों का पालन करने के दौरान कार्य विश्लेषण द्वारा परिभाषित कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों से अधिक विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन अपेक्षित होता है। उदाहरण के लिए एक बैंक के ऋण लेने वाले व्यक्तियों के साथ लेन–देन करना पड़ता है। उस अन्य बैंकों के अधिकारियों, उद्योगपतियों तथा अथशास्त्रियों से मिलना पड़ता है तथा विभिन्न मुद्दो जैसे– परियोजना–मूल्याकंन, केन्द्रीय बैंक के निर्देशों, ऋण वसूली स्तर तथा औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी विकास में प्रवृत्तियों पर विचार–विमर्श करना पड़ता है। सामान्यतः इन सभी क्रियाकलापों को कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत स्थान प्राप्त नहीं होता है। कर्मचारियों की ये विभिन्न भूमिकायों सामान्यतः एक भूमिका तथा दूसरी भूमिका के बीच संघर्ष में परिणत होती है जिसे भूमिका–संघर्ष कहा जाता है। इस प्रकार कर्मचारियों को कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत अनुसूचित कर्तव्यों के निष्पादन करने के अतिरिक्त विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है। अतः यह अनुभव किया गया कि 'भूमिका विश्लेषण' को कार्य विश्लेषण के स्थाल पर प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

3.11 कार्य अभिकल्प

कार्य अभिकल्प, कार्य विश्लेषण के लिए तर्कसंगत अनुक्रम होता है। जैसा कि इस अध्याय में पहले स्पष्ट किया जा चुका है। कि कार्य विश्लेषण, कार्य सम्बन्धी तथ्यों तथा एक कार्य को सम्पन्न करने हेतु पद–धारक से अपक्षित ज्ञान एवं निपुणताओं सम्बन्धी सूचनायें प्रदान करता है। तत्पश्चात्, कार्य अभिकल्प, निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य की एक इकाई के अन्तर्गत कार्यों, कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को व्यवस्थित रूप देने के लिए चेतन रूप से प्रयास करता है। मैथिस एवं जैक्सन ने कार्य अभिकल्प को अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित

करते हुए कहा है कि, ''.....यह प्रत्येक कार्य के लिए एक ही दिशा में कार्य विषय–वस्तु (कार्यों, क्रियाओं एवं सम्बन्धों), पारिश्रमिकों (बाह्य एवं आन्तरिक) तथा अपेक्षित पात्रताओं (निपुणताओं, ज्ञान एवं क्षमताओं) का एकीकरण करता है, जो कि कर्मचारियों तथा संगठन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते है'' (1982, पृ० 138)

कार्यों की अभिकल्पना का संगठन एवं इसके कर्मचारियों के उद्देश्यों पर एक निर्णायक प्रभाव पड़ता है। संगठन के परिप्रेक्ष्य में, जैसे ही कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का समूहीकरण किया जाता है, वैसे ही वे उत्पादन क्षमता तथा मूल्य–लागत को प्रभावित कर सकते है। जो कार्य, सन्तुष्टि नहीं प्रदान करते हैं या फिर अधिक लागत की माँग करते हैं, उन पर नियुक्ति का किया जाना कठिन होता हैं नीरस कार्यो से उच्च कर्मचारी–परिवर्तन का अनुभव किया जा सकता है।

3.12 कार्य अभिकल्प की तकनीक

मूल रूप से, कार्यों की अभिकल्पना में चार तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, जिनके विषय में संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. कार्य सरलीकरण : कार्य सरलीकरण एक अभिकल्पना विधि है, जिसके द्वारा कार्यों को छोटे–छोटे घटकों में विभाजित किया जाता है तथा तत्पश्चात् उन्हें समग्र कार्यों के रूप में कर्मचारियों को सौंपा जाता है। कार्य के सरलीकरण के लिए यह अपेक्षित होता है कि कार्यों को उनकी छोटी–छोटी इकाइयों में विभक्त किया जाये तथा फिर उन्हें विश्लेषित किया जाये। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक विशिष्ट उप–इकाई अपेक्षित रूप से कुछ क्रियाओं से बनी होती है। तत्पश्चात् इन उप–इकाइयों को कर्मचारियों को उनके सम्पूर्ण कार्य के रूप में सौंप दिया जाता है। कार्य सरलीकरण को उस समय अपनाया जाता है, जबकि कार्य अभिकल्प का निर्माण करने वाले व्यक्ति ये अनुभव कहते हैं कि कार्य विशिष्ट नहीं है। यह तकनीक इस अर्थ में त्रुटिपूर्ण है कि अति विशिष्टीकरण उकताहट में परिणत हो जाता है, जो कि कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली गलतियों तथा पद त्याग में परिवर्तित हो सकता है।

2. कार्य परिवर्तन : कार्य परिवर्तन किसी कर्मचारी के एक कार्य से दूसरे कार्य पर गतिशीलता की ओर इंगित करता है। वास्तव में, कार्य स्वंय में परिवर्तित नहीं होते हैं, केवल कर्मचारियों का विभिन्न कार्यो के बीच परिवर्तन किया जाता है एक कर्मचारी जो कि अपनी नित्यचर्या का कार्य करता है, उसका किसी दूसरे कार्य को करने हेतु कुछ घंटों अथवा दिनों अथवा महीनों के लिए स्थान परिवर्तित कर दिया जाता है तथा फिर उसे अपने पहले कार्य पर पुनः नियुक्त कर दिया जाता है। यह उपाय कर्मचारी को उकताहट तथा एकरसता से छुटकारा प्रदान करता है। विभिन्न कार्यो के सम्बन्ध में कर्मचारियों की

निपुणताओं में सुधार करता है। कर्मचारियों की स्वयं की प्रतिष्ठा में वृद्धि करता है तथा वैयक्तिक विकास के अवसर उपलब्ध करता हे। परन्तु फिर भी, बारम्बार होने वाले कार्य परिवर्तन, संगठन एवं कर्मचारियों पर पड़ने वाले उनके नकारात्मक प्रभावों को देखते हुए उपयुक्त नहीं होते है।

3. कार्य विस्तारण : कार्य विस्तारण का तात्पर्य एक विशिष्ट कार्य को अधिक विविधता प्रदान करने के लिए उसमें अतिरिक्त तथा विभिन्न कार्यों को जोड़ना है। यह प्रक्रिया क्षैतिजीय कार्य–भरण अथवा क्षैतिजीय कार्य विस्तारण कहलाती है। यह कार्यों की विविधता तथा उनके विषय–क्षेत्र में वृद्धि के द्वारा कर्मचारी की असन्तुष्टि को दूर करता है तथा एकरसता को कम करता है। यद्यपि, यह तकनीक उच्चतर मजदूरी अथवा वेतन की ओर इंगित करती है, परन्तु यह कर्मचारियों की सन्तुष्टि, उत्पादन की गुणवत्ता तथा संगठन की सम्पूर्ण कार्य क्षमता में सुधार करती है।

4.कार्य समृद्धीकरण : कार्य समृद्धीकरण, कार्य को लम्बवत् रूप से अधिक भार–युक्त बनाता है। कार्य समृद्धीकरण का तात्पर्य कार्य में कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को जोड़ना है, जो कि निपुणताओं की विविधता, कार्य–पहचान, कार्य के महत्व, है। यह संगठनात्मक इकाई जो कि एक कार्य के रूप में संयोजित है, उसके एक लम्बवत् भाग को लेकर कार्य के क्रियाकलापों के रूप में कार्य की गहनता में वृद्धि के द्वारा असन्तुष्टि को दूर करने का प्रयास करता है। जैसे ही कार्य अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाता है तथा कर्मचारियों के उत्तरदायित्व में वृद्धि होती है, उनके अभिप्रेरण एवं उत्साह में भी वृद्धि होने लगती है।

3.13 सार संक्षेप

कार्य विश्लेषण से जो सूचनायें प्राप्त होती है। उनमें क्या, कैसे, कब तथा क्यों क्रियाकलाप सम्पन्न किये जाते है; उपयोग किये जाने वाले यन्त्रों, औजारों अथवा उपकरणों; दूसरों के साथ किस प्रकार की अन्तःक्रिया अपेक्षित है; भौतिक एवं सामाजिक कार्य दशायें; तथा कार्य के लिए अपेक्षित प्रशिक्षण, निपुणतायें एवं क्षमतायें आदि सम्मिलित होती हैं। विभिन्न विद्वानों ने कार्य विश्लेषण को अपने–अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है।

एक कर्मचारी के लिए अभिप्रेरण एवं कार्य सन्तुष्टि, कार्य घटकों (विषय–वस्तु, पात्रताओं एवं पारिश्रमिकों) तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं के बीच उचित ताल–मेल करने के द्वारा प्रभावित होते है। अतः कार्यों की सावधानीपूर्वक की गयी अभिकल्पना संगठन एवं उसके कर्मचारियों दोनों को उनके उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान कर सकती है।

3.14 अभ्यास प्रश्न

1.कार्य विश्लेषण के अंगों की व्याख्या कीजिये।

2.कार्य अभिकल्प की तकनीकों के अर्न्तगत कार्य समृद्धीकरण से आप क्या समझते है।

3.कार्य विशिष्टता की विषय–वस्तु समझाइये।
4.कार्य विश्लेषण की अवधारणा समझाइये।
5.कार्य विश्लेषण के लक्षणों को लिखिये।
6.कार्य विश्लेषण के उद्देश्यों को बताइये।
7.कार्य विश्लेषण से प्राप्त होने वाली सूचनाओं (विषय–क्षेत्र) की व्याख्या कीजिये।
8.कार्य विश्लेषण की सूचनाओं के स्रोत क्या है।
9.कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया को समझाइये।
10.कार्य विश्लेषण की उपयोगिता क्या है।
11.भूमिका विश्लेषण की अवधारणा समझाइये।
12.कार्य अभिकल्प से आप क्या समझते हैं।
13.कार्य अभिकल्प की तकनीकें क्या हैं।

3.15 पारिभाषिक शब्दावली

भूमिका विश्लेषण	Work Discriction	विषय क्षेत्र	Scope
उकताहट	Boredom	तकनीक	Technics
एकरसता	Monotony	कार्य विवरण	Job Discription
कार्य स्थल	Work Place	वैयक्तिक	Personal
वेतन	Salary	म्जदूरी	Wages

3.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. योडर डेल (1960) 'पर्सनल मैनेजमेंट एण्ड इण्डस्ट्रीयल रिलेशन्स'।
2. मामोरिया, चतुर्भुज, सतीश मायोरिया (2007) सेविवर्ग प्रबंध एवं औद्योगिक सम्बन्धः आगरा, साहित्य भवन।
3. सेवि के0सी0 (1978), 'वर्कर्स पार्टीसिपेशन एण्ड इण्डस्ट्रीयल रिलेशन्स इन इंडिया', वाल्यूम 5 नं. 3 (जुलाई)
4. सी0वी0 मामोरिया ''ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट'', दिल्ली : हिमालय पब्लिशिंग हाउस।
5. पी0 सुब्बाराव ''परसोनेल एण्ड ह्यूमन रिर्सोस मैनेजमेन्ट''।

इकाई–4

चयन प्रक्रिया, कार्य पर नियुक्ति,कार्य परिचय एवं पदोन्नति

Selection Procedure, Placement, Induction & Promotion

इकाई की रूपरेखा

4.1 परिचय
4.2 उद्देश्य
4.3 चयन की अवणारणा
4.4 चयन प्रक्रिया की विशेषतायें
4.5 चयन का महत्व
4.6 चयन नीति
4.7 चयन प्रक्रिया
4.8 चयन में आधुनिक प्रवृत्तियाँ
4.9 कार्य पर नियुक्ति
4.10 कार्य परिचय
4.11 पदोन्नति
4.12 पदोन्नति के उद्देश्य
4.13 पदोन्नति के प्रकार
4.14 पदोन्नति के आधार
4.16 सार संक्षेप
4.17 अभ्यास प्रश्न
4.18 पारिभाषिक शब्दावली
4.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 परिचय

मानवीय संसाधनों की प्राप्ति के स्त्रोतों की पहचान कर लेने, भावी कर्मचारियों की खोज कर लेने तथा संगठन में रोजगार हेतु आवेदन करने के लिए, भावी कर्मचारियों की खोज कर लेने तथा संगठन में रोजगार हेतु आवेदन करने के लिए उन्हें अभिप्रेरित कर लेने के पश्चात्, प्रबन्धतन्त्र को उचित समय पर उपयुक्त कर्मचारियों के चयन करने का कार्य सम्पन्न करना होता है। दूसरे शब्दों में, मानव संसाधन प्रबन्धन की प्रक्रिया के अन्तर्गत भर्ती के पश्चात् अगला तार्किक चरण, योग्य एवं सक्षम लोगों का चयन करना होता है। चयन में

स्पष्ट मार्गदर्शक नीति, प्रत्येक रिक्त पद के लिए सर्वाधिक योग्य अभ्यर्थियों के समूह में से उस व्यक्ति को चुनना होता है, जो कि कार्य को सबसे अधिक सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सके। चयन प्रक्रिया गतिविधियों एवं उपायों की व्यवस्था है, जो कि एक संगठन में अभ्यर्थी की विशिष्टताओं का, कार्य विशिष्टताओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप होने अथवा नहीं होने की जाँच करने के लिए अपनायी जाती है।

मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत कार्य पर नियुक्ति एक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप होता है, क्योंकि इसके ठीक प्रकार से सम्पन्न किये जाने से अनुपस्थिता, कर्मचारी–परिवर्तन तथा दुर्घटनाओं में कमी होती है तथा कर्मचारियों के मनोबल एवं कार्यक्षमताओं में वृद्धि होती है। पदोन्नति किसी कर्मचारी के वर्तमान कार्य से दूसरे कार्य पर ऊपर की ओर गतिशीलता से सम्बन्धित होती है, जिसके द्वारा उसकी आय, प्रतिष्ठा, पद एवं उत्तरदायित्व में वृद्धि को सही अर्थों में पदोन्नति कहा जा सकता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :–

- चयन की अवधारणा को जान सकेगें।
- चयन प्रक्रिया की विशेषतायें को समझ सकेगें।
- चयन के महत्व को बता सकेगें।
- चयन नीति को समझ सकेगें।
- चयन प्रक्रिया को लिख सकेगें।
- चयन में आधुनिक प्रवृत्तियों को जान सकेगें।
- कार्य पर नियुक्ति को की प्रक्रिया को समझ सकेगें।
- कार्य परिचय को लिख सकेगें।
- पदोन्नति को समझ सकेगें।
- पदोन्नति के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकेगें।
- पदोन्नति के प्रकारों का विवरण कर सकेगें।
- पदोन्नति के आधार को समझ सकेगें।

4.3 चयन का अर्थ एवं अवणारणा

चयन, एक संगठन के अन्तर्गत रिक्त पदों को भरने के लिए अपेक्षित पात्रताओं तथा सामर्थ्य से युक्त व्यक्तियों (वे लोग जो आवेदन करते हैं, उनके सम्पूर्ण समूह में से) को चुनने की प्रक्रिया है। यद्यपि, संगठनों के अन्तर्गत पदोन्नति एवं स्थानान्तरण के लिए भी कुछ चयन पद्धतियाँ अपनायी जा सकती हैं, परन्तु यहाँ इस अध्याय में हम संगठन के बाहर से

आवेदकों के चयन करने पर ध्यान केन्द्रित कर रहे है। मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत भर्ती एवं चयन दो निर्णायक चरण होते हैं तथा प्रायः इन दोनों शब्दों को एक–दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु, दोनों के बीच पर्याप्त अन्तर होता है। जहाँ एक ओर, भर्ती सगंठनों के अन्तर्गत रिक्त पदों के लिए आवेदन करने हेतु भावी कर्मचारियों की खोज करने तथा उन्हें प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है, वहीं दूसरी ओर, चयन उन्ही अभ्यर्थियों के समूह में से उपयुक्त अभ्यार्थियों को चुनने से सम्बन्धित होता है। भर्ती को इसके दृष्टिकोण से सकारात्मक कहा जा सकता है, क्योंकि यह जितना सम्भव हो सके अधिक से अधिक अभ्यार्थियों का संगठन में आवेदन करने के लिए आकर्षित करने का प्रयास करता है, जबकि चयन अपने व्यवहार से नकारात्मक कहा जा सकता है, क्योंकि यह उपयुक्त अभ्यार्थियों को चुनने के उद्देश्य से जितना सम्भव हो सके अधिक से अधिक अयोग्य अभ्यार्थियों को निकाल बाहर करने का प्रयास करते है। इसके अतिरिक्त पहले भर्ती की जाती है तथा उसके पश्चात् चयन किया जाता है। चयन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण परिभाषाओं का विवरण निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. थॉमस एच. स्टोन के अनुसार, ''चयन एक कार्य में सफलता की अत्यधिक सम्भावना से युक्त लोगों की पहचान करने (तथा पारिश्रमिक देकर नियुक्त करने) के उद्देश्य से आवेदकों के मध्य भेद करने की प्रक्रिया है।''(1985, पृ० 106)।

2. अरून मोनप्पा एवं मिर्जा एस. सैय्यद के अनुसार, '' चयन आवेदन–पत्रों में से एक अथवा अधिक आवेदकों को रोजगार प्रदान करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है। चयन पर अत्यधिक ध्यान दिया जाना अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि एक ओर इसका अर्थ कार्य की अपेक्षाओं के मध्य 'सर्वाधिक उपयुक्त' को तथा दूसरी ओर अभ्यर्थी की पात्रताओं को नियत करना होता है।'' (1685, पृ. 106)

4.4 चयन प्रक्रिया की विशेषतायें

उपलिखित विवेचन के अध्ययन से चयन प्रक्रिया की जो विशेषतायें सामने आती हैं, उनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. चयन प्रक्रिया, मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत एक निर्णायक चरण होता है।
2. चयन प्रक्रिया के द्वारा वे लोग जो आवेदन करते हैं, उनके सम्पूर्ण समूह में से, किसी कार्य में सफलता की अत्यधिक सम्भावना से युक्त लोगों की पहचान की जाती है।
3. चयन प्रक्रिया के द्वारा कुल अभ्यर्थियों में से 'सर्वाधिक उपयुक्त' को चुना जाता है।

4. चयन एक नकारात्मक दृष्टिकोण है, क्योंकि इसके द्वारा अयोग्य अभ्यार्थियों को अस्वीकार कर दिया जाता है।
5. चयन प्रक्रिया में वे अभ्यर्थी, जो इसके विभिन्न चरणों को पार करते हुए अन्त तक पहुँच जाते हैं, वे चुन लिये जाते हैं तथा शेष अभ्यर्थी चयन की दौड़ से बाहर हो जाते हैं।

इस प्रकार, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत चयन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा संगठनों के लिए वांछित योग्यताओं के श्रेष्ठता अभ्यर्थियों का चयन करके उन्हें रोजगार प्रदान किया जाता है तथा शेष अभ्यर्थियों को अस्वीकार कर दिया जाता है।

4.5 चयन का महत्व

एक संगठन की इसके लक्ष्यों को प्रभावपूर्ण रूप से प्राप्त करने तथा एक गतिशील वातावरण में विकास करने की क्षमता इसके चयन कार्यक्रम की प्रभावशीलता पर अत्यधिक निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, योग्य कर्मचारियों के चयन का महत्व निम्नलिखित कारणों से भी बढ़ जाता है:

1. चयन प्रक्रिया के माध्यम से योग्य कर्मचारियों को चुनना सम्भव होता है, जिससे संगठन की ख्याति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।
2. चयन प्रक्रिया के द्वारा यदि उपयुक्त कर्मचारियों का चयन कर लिया जाता है, तो वे संगठन के लिए मूल्यवान परिसम्पत्ति बन जाते हैं।
3. उचित ढंग से किये गये योग्य लोगों के चयन से कर्मचारी–परिवर्तन में कमी होती है तथा साथ ही कर्मचारियों का मनोबल भी बढ़ता है।
4. एक श्रेष्ठ चयन प्रक्रिया का अनुसरण करने से कर्मचारियों की संगठन के प्रति कर्तव्य–निष्ठा, अपनत्व तथा सहयोग की भावना में वृद्धि होती है।
5. समुचित चयन प्रक्रिया के अपनाये जाने से संगठन के अन्तर्गत सेवायोजक एवं कर्मचारियों के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना होती है।
6. योग्य कर्मचारियों का चयन करने से संगठन की उत्पादन लागत एवं अपव्यय में कमी होती है तथा साथ ही कार्यों की निष्पादन कुशलतापूर्वक होता है।

4.6 चयन नीति

चयन नीति संगठन की रोजगार नीति का अंग होती है। एक उत्तम चयन नीति में निम्नलिखित तथ्यों का समावेश अवश्य ही होना चाहिये:

1. चयन नीति को रोजगार उन्मुख होने के साथ–साथ व्यावसायिक मार्गदर्शन में सहायक होना चाहिए।

2. चयन नीति, सम्पूर्ण संगठनात्मक नीति के अनुरूप होनी चाहिये।
3. चयन नीति में, चयन करते समय देश में प्रचलित विधान के अनुपालन के विषय में प्रावधान होना चाहिये।
4. चयन नीति सरल, स्पष्ट एवं न्यायसंगत होनी चाहिये।
5. चयन नीति कठोर न होकर लोचशील होनी चाहिये, ताकि समयानुसार उसमें परिवर्तन किया जा सके।
6. चयन नीति में प्रत्येक स्तर के पद हेतु चयन करने के लिए प्राधिकारी व्यक्तियों का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिये। चयन का कार्य अकेले व्यक्ति के स्थान पर चयन–मण्डल को सौंपे जाने का प्रावधान किया जाना चाहिये।
7. चयन नीति पक्षपारहित होनी चाहिए
8. चयन नीति का अनुपालन कठोरता से किया जाना चाहिए।

4.7 चयन प्रक्रिया

चयन हेतु किसी आदर्श प्रक्रिया का प्रावधान नहीं है, जिसका सभी क्षेत्रों में सभी संगठनों द्वारा अनुसरण किया जा सके। विभिन्न संगठनों द्वारा, संगठन के आकार, व्यवसाय की प्रकृति, रिक्त पदों की संख्या एवं प्रकार तथा प्रचलित विधानों के अनुपालन की स्थिति के आधार पर भिन्न–भिन्न चयन अपनी तकनीकों अथवा पद्धतियों को अपनाया जा सकता है। इस प्रकार प्रत्येक संगठन अपनी सुविधानुसार तथा अपने लिए अनुकूल चयन की कोई भी एक पद्धति अथवा अनेक पद्धतियों के संयोजन का अनुसरण कर सकता है।

चयन प्रक्रिया में रोजगार हेतु कोई अभ्यर्थी उपयुक्त है अथवा नहीं, इसके विषय में निर्णय करने के लिए उसकी पात्रताओं, अनुभव, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता, स्वभाव एवं व्यवहार ज्ञान तथा अभिरूचि आदि के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्रित करने की विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। अतः चयन प्रक्रिया एक अकेला कार्य नहीं है, बल्कि अनिवार्य रूप से पद्धतियों अथवा चरणों की एक श्रंखला है जिसके द्वारा विभिन्न चयन तकनीकों के माध्यम से भिन्न–भिन्न प्रकार की सूचनायें एकत्रित करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक चरण पर तथ्यों के प्रकाश में आने की सम्भावना होती है जो कि कार्य की अपेक्षाओं एवं कर्मचारी विशिष्टताओं के साथ तुलना करने के लिए उपयोगी होते हैं। सामान्यतः एक वैज्ञानिक चयन प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्नलिखित चरणों का समावेश किया जा सकता हैः

1. आवेदन–पत्रों के छँटाई : चयन प्रक्रिया के अन्तर्गत, सर्वप्रथम, भर्ती के माध्यम से रोजगार हेतु अत्यधिक संख में आकर्षित अभ्यार्थियों की ओर सक संठगन द्वारा प्राप्त किये गये आवदेन–पत्रों के छँटाई की जाती है। उक्त आवेदन–पत्र चयन प्रक्रिया का मूल आधार होते हैं, क्योंकि इनके द्वारा अभ्यार्थियों के विषय में सामान्य जानकारी प्राप्त की जाती है।

तथा उनके चयन हेतु प्रथम दृष्ट्या निर्णय लिया जाता है। इस आवेदन–पत्र के द्वारा अभ्यर्थियों की आयु, शैक्षिक योग्यता, प्रशिक्षण, अनुभव, पृष्ठभूमि तथा अपेक्षित वेतन आदि की जानकारी प्राप्त होती है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कुछ संगठनों द्वारा स्वयं तैयार किया गया आवेदन–पत्र का प्रारूप ही स्वीकृत किया जाता है, जबकि अनेक संगठन यह अभ्यर्थियों पर ही छोड़ देते हैं कि वे जिस रूप से चाहें अपना आवेदन कर सकतेहैं इस हेतु प्रायः आवेदन–पत्र के रूप में एक सह–पत्र के साथ बायोडेटा अथवा रिज्यूम का उपयोग किया जाता है।

आवेदन पत्रों की छँटाई का उद्देश्य प्रारम्भिक चरण में ही जो अभ्यार्थी निर्धारित पद के लिए स्पष्ट रूप से अयोग्य होते हैं उन्हें चयन प्रक्रिया से अलग करना होता हैं आवेदन–पत्रों की प्रभावी तरीके से छँटाई करने से समय एवं धन की काफी बचत होती है। परन्तु इस विषय में आश्वस्त होने के लिए सावधानी रखना अनिवार्य होता है। कि अच्छे योग्य अभ्यार्थी छूटने न पाये तथा महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों को निष्पक्ष रूप से महत्व प्रदान किया जाये तथा बिना औचित्य स्पष्ट किये उन्हें अस्वीकार न किया जाये यह भी ध्यान देने योग्य है कि आवेदन–पत्रों की छँटाई के लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीकें अभ्यर्थियों की प्राप्ति के स्त्रोतों तथा भर्ती की पद्धतियों के आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकती है। आवेदन–पत्रों की छँटाई के दौरान जिन अभ्यर्थियों में संगठन द्वारा निर्धारित न्यूनतम अपेक्षित योग्यता से कम योग्यता होती है, उन्हें अस्वीकार कर दिया जााता है तथा केवल योग्य अभ्यर्थियों को ही अगले चरण के लिए प्रवेश दिया जाता है।

2. प्रारम्भिक साक्षात्कार : आवेदन–पत्रों की छँटाई के द्वारा जिन अभ्यार्थियों को चुना जाता हैं, उन्हें प्रारम्भिक साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। प्रारम्भिक साक्षात्कार अत्यन्त संक्षिप्त होता है। इसका उद्देश्य आवेदन–पत्रों के माध्यम से अभ्यार्थियों की जो अयोग्यतायें प्रकट नहीं हो पाती हैं, उनको प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात करके अनुपयुक्त अभ्यार्थियों को चयन प्रक्रिया से हटा देना होता है।

प्रारम्भिक साक्षात्कार के अर्न्तगत अभ्यार्थियों को कार्य की प्रकृति, कार्य के घंटों, कार्य–दशाओं तथा वेतन आदि की जानकाी प्रदान की जाती है। साथ ही, उनकी शैक्षिक योग्यताओं, प्रशिक्षणों, अनुभवों, वर्तमान कार्यों तथा रूचियों आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है। इसके अतिरिक्त उनसे अपेक्षित वेतन तथा वर्तमान कार्य को छोड़ने के विषय में कारणों की भी जानकारी प्राप्त की जाती है। इस प्रकार अभ्यर्थियों की वाक्–पटुता, मस्तिष्क की दशा तथा उनके विषय में एक सामान्य जानकारी प्राप्त की जाती है। इससे उनके विषय में यह निर्णय लेने में सहायता प्राप्त होती है कि उनके चयन किये जाने की कुछ सम्भावनायें हैं अथवा नहीं। इस प्रकार प्रारम्भिक साक्षात्कार के ज्ञात अयोग्य अभ्यर्थियों

को छाँट दिया जाता है तथा केवल योग्य अभ्यर्थियों को ही चयन प्रक्रिया के आगामी चरण के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

3. चयन परीक्षण : प्रारम्भिक साक्षात्कार के द्वारा चुने गये अभ्यर्थियों को चयन परीक्षण से गुजरना होता है। यह चयन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग होता है। सामान्यतः चयन परीक्षण मनोवैज्ञानिक प्रकृति का होता है। जिसके द्वारा अभ्यर्थियों की योग्यताओं चातुर्य, कार्य अभिरूचियों तथा व्यवहारों आदि का मूल्याकंन किया जाता है तथा साथ ही अभ्यर्थियों की कार्य क्षमताओं एवं निपुणताओं को भी परखा जाता है चयन परीक्षण के द्वारा उचित पद के लिए उचित व्यक्ति को चुनना अत्यन्त सरल हो जाता है। चयन परीक्षण के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैः

(i) योग्यता परीक्षणः इन परीक्षणों के माध्यम से अभ्यर्थियों की छिपी हुई विशिष्टता योग्यताओं तथा रूझानों को ज्ञात करने का प्रत्यन किया जाता है। इसके द्वारा यह अनुमान लगाने का प्रयास किया जाता हैं कि यदि किसी अभ्यर्थी को चयन कर लिया जाय तो भविष्य में वह अपने कार्य में सफल हो पायेगा अथवा नहीं। इसके साथ ही, परीक्षणों से किसी विशिष्ट कार्य को सीखने के लिए अभ्यर्थी के रूझान को भी ज्ञात किया जा सकता है। योग्यता परीक्षण निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैः

(अ) बुद्धि परीक्षणः इन परीक्षणों के माध्यम से अभ्यर्थियों की ग्रहण शक्ति, गणितीय प्रवृत्ति, स्मरण–शक्ति तथा तर्क–शक्ति की जाँच की जाती है। इन परीक्षणों के पीछे आधारभूत मान्यता यह है कि कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति किसी भी कार्य को शीघ्रता एवं सरलता से सीख सकता है।

(ब)यान्त्रिक योग्यता परीक्षणः इन परीक्षणों के माध्यम से अभ्यर्थियों की यन्त्रों को पहचानने तथा उन्हें सुचारू रूप से प्रयोग करने की क्षमता का मापन किया जाता है। यन्त्रों पर कार्य करने वाले कुशल एवं तकनीकी कर्मचारियों के चयन हेतु इन्हीं परीक्षणें का प्रयोग किया जाता है।

(द) लिपिकीय योग्यता परीक्षणः इन परीक्षणों के माध्यम से कार्यलय की क्रियाओं की निष्पादन क्षमता का मापन किया जाता है इन परीक्षणों में वर्ण विन्यास गणना करना, बोध शक्ति, प्रतिलिपि बनाना तथा शब्द मापन आदि सम्मिलित होते है।

(ii) उपलब्धि अथवा निष्पादन परीक्षणः इन परीक्षणों का प्रयोग उस समय किया जाता है, जबकि अभ्यर्थियों द्वारा विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त किये जाने का दावा किया जाता है। इनके माध्यम से यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त प्रशिक्षणों में से कितनी बातें वे सीख पाय है। ये परीक्षण दो प्रकार से किये जा सकते हैः

(अ) कार्य ज्ञान : इस परीक्षण के अन्तर्गत एक कार्य विशेष के सम्बन्ध से अभ्यर्थियों के ज्ञान का पता लगाया जाता है। यह मौखिक अथवा लिखित दोनों ही प्रकार का हो सकता है।

(ब) कार्य–नमूना परीक्षणः इस परीक्षण के अन्तर्गत अभ्यर्थियों को एक वास्तविक कार्य के भाग को सम्पन्न करने के लिए कहा जाता है तथा उनके निष्पादन के स्तर के आधार पर उनके विषय में निर्णय किया जाता है।

(iii) स्थितिपरक परीक्षणः इस परीक्षण के माध्यम से अभ्यर्थियों का वास्तविक जीवन से मिलती–जुलती एक परिस्थिति में मूल्यांकन किया जाता है। इस परीक्षण में अभ्यर्थियों को या तो किसी परिस्थिति का सामना करने के लिए, या फिर कार्य के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण परिस्थितियों को समाधान करने के लिए कहा जाता है। तत्पश्चात यह देखा जाता है कि अभ्यर्थी किस प्रकार से तनावपूर्ण परिस्थिति में प्रतिक्रिया करते है।

(iv)रूचि परीक्षणः इस परीक्षण के माध्यम से अभ्यर्थियों की कार्य,पद, व्यवसाय, शौक तथा मनोरंजनात्मक क्रियाओं के सम्बन्ध में उनकी पसन्द एवं नापसन्द को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता हैं इस परीक्षण का उद्देश्य इस बात का पता लगाना होता है कि कोई अभ्यर्थी जिस कार्य के लिए उसने आवेदन किया है, उसमें रूचि रखता है अथवा नहीं तथा साथ ही यह भी ज्ञात करना होता है कि कार्य के किस विशेष क्षेत्र कमे वह अभ्यर्थी रूचि रखता है। इस परीक्षण की आधारभूत मान्यता यह है कि एक कार्य के प्रति अभ्यर्थी की रूचि तथा कार्य की सफलता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

4. समूह परिचर्चाः समूह परिचर्चा की तकनीक का प्रयोग, कार्य के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में अतिरिक्त सूचनायें प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। समूह परिचर्चा में अभ्यर्थियों को समूह में विभाजित करके उन्हें कोई चर्चित अथवा सामयिक विषय दे दिया जाता है, जिस पर उन्हें तर्क–वितर्क करना होता है। इस परिचर्चा में अभ्यर्थियों के ज्ञान की गहनता, विचारों की गुणवत्ता, स्तर एवं मौलिकता, कम शब्दों में अपनी बात समझाने की योग्यता तथा उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कोई अभ्यर्थी अपने समूह में कितनी पहल करता है तथा दूसरे सदस्यों को किस हद तक प्रभावित कर पाता है, इसका विशेष महत्व होता हे। समूह में चर्चा के समय अभ्यर्थियों की सहनशीलता एवं दूसरे की बात सुनने की क्षमता को भी ध्यानपूर्वक मापा जाता है। अनेक व्यावसायिक संगठनों द्वारा आज कल समूह परिचर्चा के बाद समूह कार्य भी करवाया जाता है।

5.चिकित्सकीय परीक्षणः मुख्य सेवायोजन साक्षात्कार में योग्य पाये गये अभ्यर्थियों का चिकित्सकीय परीक्षण किया जाता है। विभिन्न संगठनों में अनेक कार्य ऐसे होते हैं, जिनके लिए कुछ निश्चित शारीरिक योग्यताओं, जैसे– स्पष्ट दृष्टि, स्पष्ट सुनने की शक्ति,

असाधारण शारीरिक शक्ति, कठोर कार्य–दशाओं के लिए सहन–शक्ति तथा स्पष्ट आवाज आदि का होना नितान्त आवश्यक होता हैं चिकित्सकीय परीक्षण के द्वारा इस बात की जाँच की जाती है कि अभ्यर्थियों में ये शारीरिक योग्यतायें हैं अथवा नहीं। इसके अन्तर्गत अभ्यर्थियों के शरीर के विभिन्न अंगों एवं प्रत्यंगों की चिकित्सकों द्वारा गहन जाँच की जाती है।

6. सन्दर्भों की जाँचः मुख्य सेवायोजन साक्षात्कार तथा चिकित्सकीय परीक्षण की समाप्ति के पश्चात् मानव संसाधन विभाग द्वारा सन्दर्भों की जाँ की जाती है। विभिन्न संगठनों द्वारा अभ्यर्थियों से उनके आवेदन–पत्रों में दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के नाम व पते सन्दर्भ के रूप में दिये जाने की अपेक्षा की जाती है। ये सन्दर्भ उन व्यक्तियों के हो सकते हैं, जो कि अभ्यर्थियों को अच्छी तरह से जानते हो अथवा वे अभ्यर्थियें के पूर्ववर्ती सेवायोजक हों तथा जो अभ्यर्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों एवं उनके पूर्व के कार्य–निष्पादन के विषय में भली प्रकार से परिचित हों।

7. नियुक्ति आदेशः इस प्रकार अन्तिम चयन निर्णय कर लिये जाने के पश्चात् संगठन को सफल अभ्यर्थियों को इस निर्ण के विषय में सूचित करना होता हैं इसके लिए संगठन द्वारा सफल अभ्यर्थियों को नियुक्ति आदेश भेजा जाता है। नियुक्ति आदेश पर नियुक्ति प्राधिकारी का हस्ताक्षर होना अनिवार्य होता है।

4.8 चयन में आधुनिक प्रवृत्तियाँ

चयन प्रक्रिया के साथ–साथ मानव संसाधन प्रबन्धन के अन्य क्षेत्रों में नवीन प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आयी हैं। चयन सम्बन्धी कुछ प्रमुख आधुनिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं:

1. निमन्त्रण द्वारा चयनः विभिन्न संगठनों के प्रबन्धनों द्वारा प्रतिस्पर्धी संगठनों के महत्वपूर्ण अधिशासियों एवं प्रबन्धकों के कार्य–निष्पादन का निरन्तर अवलोकन किया जाता है। यदि इन अधिशासियों एवं प्रबन्धकों का कार्य–निष्पादन उत्कृष्ट होता है, तो प्रबन्धन आकर्षक वेतन एवं हित–लाभों की पेशकश करने के द्वारा ऐसे अधिशासियों एवं प्रबन्धकों को अपने संगठन में कार्य करने के लिए आमन्त्रित करते है।

2. ठेका करनाः वर्तमान में संगठनों के लिए अति कुशलता के कार्यों को जारी रखने के लिए विशेषज्ञों को नियुक्त करना आवश्यक होता है। वस्तुतः प्रौद्योगिकी में परिवर्तनों का होना अति–कुशल कर्मचारियों की माँग में वृद्धि करता है। यह छोटे संगठनों के लिए अत्यन्त कठिन होगा कि वे अति–कुशल कर्मचारियों को नियुक्त करें, क्योंकि वे उच्च वेतन की माँग करते हैं। ये परामर्शदात्री संगठन प्रधान सेवायोजक होते हैं तथा अवश्यकताग्रस्त संगठन, कर्मचारियों के समूह में से स्वयं के लिए अपेक्षित कर्मचारियों को ठेके पर प्राप्त

करते है। तथा परामर्शदात्री संगठनों को आपसी सहमति पर आधारित धनराशि का भुगतान करते हैं परामर्शदात्री संगठन ही कर्मचारियों को वेतन का भुगतान करते हैं।

3. 360^0 चयन कार्यक्रमः सामान्यत संगठनों के अन्तर्गत वरिष्ठों के द्वारा ही चयन परीक्षणों एवं साक्षात्कारों का प्रशासन किया जाता है। वे पद एवं अभ्यर्थी के बीच उपयुक्तता का निर्णय करते हैं। परन्तु इन भावी कर्मचारियों का ज्ञान, निपुणतायें एवं कार्य–निष्पादन केवल वरिष्ठों कोही नहीं, बल्कि उनके अधीनस्थों एवं समान स्तर के कर्मचारियों को भी प्रभावित करते हैं। अतः, विभिन्न संगठनों ने अधीनस्थों एवं समान स्तर के कर्मचारियों को चयन परीक्षणों एवं साक्षात्कारों के प्रशासन में सम्मिलित करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार का चयन कार्यक्रम, **'360^0 चयन कार्यक्रम'** कहलाता है।

4.9 कार्य पर नियुक्ति

चयन प्रक्रिया के माध्यम से जब किसी अभ्यर्थी का अन्तिम रूप से चयन कर लिया जाता है तथा उसे नियुक्ति आदेश दे दिया जाता है तो आगामी चरण उसकी 'कार्य पर नियुक्ति' का होता है जब नव–नियुक्त कर्मचारी कार्य करने के लिए उपस्थित होता है तो संगठन को उसे उस कार्य पर, जिसके लिए उसका चयन किया गया है, नियुक्त करना होता हैं अतः, सही कार्यों पर नव–नियुक्त कर्मचारियों को स्थापित करना ही कार्य पर नियुक्ति कहलाती है। जैसा की पॉल पिगर्स एवं चार्ल्स ए. मेयर्स का कथन है कि '' कार्य पर नियुक्ति से आशय चयनित अभ्यर्थी को सौंपे जाने वाले कार्य पर निर्धारण करना तथा वह कार्य उसे सौंपना है।'' (1977, पृ० 256)

कार्य पर नियुक्ति का उत्तरदायित्व उस विभागाध्यक्ष का होता है, जिसके विभाग में नये कर्मचारी की नियुक्ति की जानी है प्रारम्भ में नये कर्मचारी की कार्य पर नियुक्ति छः महीने से एक वर्ष की परिवीक्षा–अवधि पर की जाती हैं यदि कर्मचारी का कार्य उक्त अवधि में सन्तोषजनक पाया जाता हैं तो इस परिवीक्षा–अवधि की समाप्ति के पश्चात् उसे स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया जाता है। बहुत ही कम स्थितियों में किसी कर्मचारी को इस अवधि के पश्चात् कार्य से निकाला जाता है।

4.10 कार्य परिचय

कार्य पर नियुक्ति के पश्चात् एक नया कर्मचारी अपने कार्य के कर्तव्यो एवं उत्तरदायित्वों का तभी प्रभावपूर्ण ढंग सें निर्वहन कर सकता है जब उसे उसके कार्य, जिस विभाग से वह सम्बन्धित है उसके तथा सम्पूर्ण संगठन के विषय में पूर्ण जानकारी प्रदान की जाये। यह जानकारी ही कार्य परिचय कहलाती हैं। कार्य परिचय को अभिमुखीकरण के नाम से भी जाना जाता है। मैथिस एवं जैक्सन ने इसे पारिभाषित करते हुए कहा है कि ''कार्य परिचय'' कर्मचारियों का उनके कार्यों उनके सह–कर्मियों तथा संगठन के विषय में

नियोजित परिचय होता है।''कार्य परिचय के द्वारा नये कर्मचारी में कार्य के प्रति लगन तथा संगठन के प्रति अपनत्व की भावना विकसित होती है। इस प्रकार, कार्य परिचय किसी संगठन के उद्देश्यों नीतियों कार्य प्रणालियो तथा संगठनात्मक संस्कृति के विषय में नव–नियुक्त कर्मचारियों को शिक्षित करने का एक साधन है। कार्य परिचय मौखिक अथवा लिखित अथवा दोनों हो सकता है।

कार्य परिचय के उद्देश्यः कार्य परिचय का प्रमुख उद्देश्य नव–नियुक्त कर्मचारियों को उनके कार्यों एवं सम्पूर्ण संगठन के विषय में पूर्ण रूप से अवगत कराना होता है। इसके अतिरिक्त, इसके कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. नव–नियुक्त कर्मचारियों को उनके कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों, अधिकारों तथा संगठन में उनकी स्थिति से अवगत कराना।
2. नव–नियुक्त कर्मचारियों को उनके कार्य एवं संगठन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की शंकाओं का समाधान करना।
3. नव–नियुक्त कर्मचारियों को संगठन के उद्देश्यों, नीतियों, कार्य प्रणाली तथाा संगठनात्मक संस्कृति से परिचित कराना।
4. नव–नियुक्त कर्मचारियों का संगठन के साथ उचित समायोजन स्थापित करना ।
5. नव–नियुक्त कर्मचारियों में संगठन के प्रति विश्वास, अपनत्व तथा निष्ठा की भावना को उत्पन्न करना।

कार्य परिचय के लाभः कार्य परिचय से होने वाले लाभ निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. नव–नियुक्त कर्मचारियों पर कार्य परिचय के माध्यम से पड़ने वाला प्रथम प्रभाव महत्वपूर्ण होता है तथा यह निम्न कर्मचारी–परिवर्तन में परिणत होता है।
2. कार्य परिचय के परिणामस्वरूप नव–नियुक्त कर्मचारियों कार्य के साथ शीघ्रता से समायोजन कर लेते हैं तथा इसके द्वारा पर्यवेक्षकों के समय की भी बचत होती है।
3. कार्य परिचय से कर्मचारी असन्तोष एवं परिवेदनाओं में कमी आती है।
4. कार्य परिचय के द्वारा नव–नियुक्त कर्मचारियों में संगठन के प्रति अपनत्व एवं वचनबद्धता की भावना विकसित होती है।

कार्य परिचय की विषय–वस्तुः नव–नियुक्त कर्मचारियों को कार्यों एवं संगठन की परिस्थितियों के सम्बन्ध में सूचनायें प्रदान करने के लिए व्याख्यानों, हस्तपुस्तिकाओं, चलचित्रों तथा समूह संगोष्ठियों आदि का उपयोग निम्नलिखित प्रमुख विषयों के बारे में उनके स्वयं के अवगत होने हेतु किया जाता हैः

1. **संगठन के विषय में**
   (i) संगठन का इतिहास, विकास, उत्पाद, बाजार तथा उपभोक्ता आदि।

(ii) संगठन की संरचना, संयन्त्रों की स्थिति, उत्पादन की विधियाँ तथा विभिन्न विभाग आदि।

(iii) वेतन भत्ते तथा कटौतियाँ आदि।

(iv) कार्य–भार, यन्त्र, उपकरण तथा उपयोग किये जाने वाले पदार्थ आदि।

(v) अनुशासन के नियम एवं अनुशासनात्मक प्रक्रिया।

(vi) परिवेदना निवारण पद्धति।

(vii) पदोन्नति एवं विकास के मार्ग।

(ix) कर्मचारी संघ तथा सौदेबाजी संयन्त्र

(x) शिक्षा प्रशिक्षण एवं विकास की सुविधायें आदि।

(xi) कैण्टीन की व्यवस्था

(xii) सामाजिक हित–लाभ एवं कल्याण प्रावधान।

(xiv) यात्रा एवं निर्वाह भत्ते

2. विभाग के विषय में: विभागाध्यक्ष नव–नियुक्ति कर्मचारी का महत्वपूर्ण कर्मचारियों से परिचय कराता है तथा कार्य एवं विभाग के विषय में संक्षिप्त वर्णन करता है। तत्पश्चात् पर्यवेक्षक उसका परिचय उस इकाई के सभी कर्मचारियों से कराता है तथा साथ ही कार्य, संयन्त्र, उपकरण तथा पदार्थो जिनके साथ उस नव–नियुक्ति कर्मचारी को कार्य करना होता है, उत्पादन–प्रक्रिया, उसके कार्य करने के स्थान उसके कार्य का उत्पादन प्रक्रिया में महत्व उसकी संगठनात्मक संरचना में स्थिति, कार्य–विवरण कार्यभार एवं गुणवत्ता के बनाये रखने की आवश्यकता आदि के विषय में विस्तार से वर्णन करता है।

3. वरिष्ठों सहकर्मियों एवं अधीनस्थों के विषय में :

(i) नव–नियुक्ति कर्मचारी का उसके उस वरिष्ठ अधिकारी से परिचय कराना, जिसके सम्मुख उसे प्रस्तुत होना है।

(ii) अन्य वरिष्ठों से परिचय कराना, जिनसे उसका कार्य अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है।

(iii) नव–नियुक्ति कर्मचारी का उसके उन अधीनस्थों से परिचय कराना, जिनके साथ उसे कार्य करना है।

(iv) नव–नियुक्ति कर्मचारी का उसके सहकर्मियों से परिचय कराना।

कार्य परिचय की प्रक्रिया: कार्य परिचय की प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों के रूप में समझा जा सकता है:

1. नव–नियुक्ति कर्मचारी द्वारा एक निश्चित समय एवं स्थान पर सम्बन्धित विभागाध्यक्ष के समक्ष कार्य हेतु उपस्थित होना।
2. विभागाध्यक्ष द्वारा नव–नियुक्ति कर्मचारी का स्वागत किया जाना ।

3. विभागाध्यक्ष द्वारा उसका परिचय संगठन अथवा शाखा के मुखिया से कराना।
4. संगठन अथवा शाखा के मुखिया द्वारा उसका परिचय महत्वपूर्ण कर्मचारियों से कराना तथा संगठन के विषय में वर्णन करना।
5. विभागाध्यक्ष द्वारा उसका सभी कर्मचारियों से परिचय कराया जाना तथा विभाग एवं उसके सम्पूर्ण क्रियाकलापों के विषयों में वर्णन किया जाना।
6. सम्बन्धित पर्यवेक्षक द्वारा उसका उस इकाई में उसके सहकर्मियों एवं अधीनस्थों से परिचय कराया जाना तथा उसके, कार्य, यन्त्र, उपकरणों तथा पदार्थों के विषय में वर्णन करना।
7. सम्बन्धित पर्यवेक्षक द्वारा उसे उसके कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों, अधिकारों, सुरक्षा उपायों तथा कल्याण सुविधाओं के विषय में जानकारी देना।
8. पर्यवेक्षक द्वारा उसकी कार्य के विषय में शंकाओं को दूर करना।

संगठनों में, समय की एक अवधि के पश्चात् किसी कर्मचारी के पद एवं भूमिका के संगठनात्मक संरचना में पार्श्विक रूप से अथवा लम्बवत् रूप से एक कार्य दूसरे कार्य पर परिवर्तित होने की प्रबल सम्भावना बनी रहती है। किसी संगठन के अन्तर्गत इस प्रकार की गतिशीलता संगठन के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों, विभागों एवं उप–विभागों में कार्यों के मध्य अथवा यहाँ तक कि बहु–संयन्त्र संचालनों में संयन्त्रों के मध्य हो सकती है।

4.12 पदोन्नति

सामान्यतः लोग पदोन्नति का अर्थ ऐसे कार्य–परिवर्तन से लगाते हैं, जिसके फलस्वरूप किसी कर्मचारी की आय अथवा वेतन में वृद्धि हो जाये, परन्तु एक ही कार्य पर रहते हुए यदि कर्मचारी को अधिक वेतन दिया जाये तो इसे पदोन्नति नहीं कहा जा सकता। यह तो मात्र वेतन–वृद्धि होगी। पदोन्नति का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से वेतन–वृद्धि से नहीं है। बल्कि इसका सम्बन्ध पद की प्रतिष्ठा एवं उत्तरदायित्व या अधिक कुशलता से है। कई स्थितियों में जहाँ कर्मचारी बढ़ी हुई आय के बिना ही उच्चतर स्तर के कार्यों पर स्थानान्तरित किये जाते हैं तो ऐसी पदोन्नति को शुष्क पदोन्नतियाँ कहते है। पदोन्नति की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें निम्नलिखित प्रकार से है।

1. **पॉल पिगर्स एवं चार्ल्स ए. मेयर्स** के अनुसार ''पदोन्नति से आशय किसी कर्मचारी को एक श्रेष्ठतर कार्य अपेक्षाकृत अधिक उत्तरदायित्वों, अधिक गौरव अथवा प्रतिष्ठा, अधिक निपुणताओं तथा विशेष रूप से बढ़ी हुई आय अथवा वेतन दर से प्रदान करना है।''

2. **अरून मोनप्पा एवं मिर्जा एस. सैय्यद** के अनुसार ''पदोन्नति किसी व्यक्ति का एक संगठन की पद सोपानिकी में ऊपर की ओर पुनः कार्य–निर्धारण होता है, जो कि बढ़े हुए उत्तरदायित्वों ,बढ़ी हुई प्रतिष्ठा तथा सामान्य रूप से बढ़ी हुई आय के साथ होता है, जो यद्यपि कि हमेशा इस प्रकार नहीं होता है।''

पदोन्नति के विषय में उपरिलिखित विवरण के अध्ययन से इसकी जो अनिवार्य दशायें सामने आती है, वे निम्नलिखित प्रकार से हैं :

(1) किसी कर्मचारी द्वारा वर्तमान में सम्पन्न किये जा रहे कार्य की अपेक्षा उसके लिए उच्चतर स्तर के कार्य का पुनः निर्धारण।

(2) कर्मचारी को स्वाभाविक रूप से उसके द्वारा पूर्व में धारित उत्तरदायित्वों एवं प्राधिकारों की अपेक्षा अधिक का सौंपा जाना।

(3) पदोन्नति में स्वाभाविक रूप से अधिक आय का सम्मिलित होना।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है। कि पदोन्नति किसी कर्मचारी के विकास की वह प्रक्रिया है, जिससे उसके कार्य मे परिर्वतन होता है। वह अच्छा वेतन, अच्छा स्तर, अच्छा अवसर, अर्थिक प्रतिष्ठा, अच्छा कार्य, वतावरण , अधिक उत्तरदायित्व एवं अच्छी सुविधायें प्राप्त करता है।

4.13 पदोन्नति के उद्देश्य

संगठनों द्वारा कर्मचारियों को पदोन्नति निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए की जाती हैः

1. कर्मचारियों को अधिक उत्पादकता के लिए अभिप्रेरित करना।
2. संगठनात्मक पद सोपानिकी में समुचित स्तरों पर कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं का उपयोग करना, जो कि संगठनात्मक प्रभावशीलता तथा कर्मचारी सन्तुष्टि में परिणत होता है।
3. संगठन के उच्च स्तर के कार्यों के लिए आवश्यक ज्ञान एवं निपुणताओं की प्राप्ति हेतु कर्मचारी में प्रतिस्पर्धात्मक भावना का विकास करना तथा उत्साह का संचार करना।
4. योग्य एवं सक्षम लोगों को संगठन के प्रति आकर्षित करना तथा उनकी सेवायें प्राप्त करना।
5. परिवर्तित वातावरण में उच्च स्तर के रिक्त पदों का उत्तरदायित्व ग्रहण करने हेतु तत्पर रहने के लिए कर्मचारियों के समक्ष आन्तरिक स्त्रोत का विकास करना।
6. कर्मचारियों में आत्म–विकास को बढ़ावा देना तथा उन्हें उनकी पदोन्नति के अवसरों की प्रतीक्षा करने हेतु तैयार करना।
7. कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा एवं अपनत्व की भावना को विकसित करना तथा उनके मनोबल को उच्च करना।
8. कर्मचारियों में प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रमों के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

9. अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निमार्ण हेतु संगठन के प्रति बचनबद्ध एवं निष्ठावान कर्मचारियों को पुरस्कृत करना।
10. श्रम संघों का संगठन के प्रति विश्वास सृजन का प्रयास करना।

4.14 पदोन्नति के प्रकार

पदोन्नति को निम्नलिखित प्रकास से वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. क्षैतिजीय पदोन्नतिः इस प्रकार की पदोन्नति में उत्तरदायित्वों एवं आय में वृद्धि तथा पद नाम में परिवर्तन सम्मिलित होता है। परन्तु, पदोन्नति कर्मचारी कार्य वर्गीकरण के अन्तर्गत ही रहता है, अर्थात इसमें मौलिक कार्य वर्गीकरण ज्यों का त्यों ही रहता है। उदाहरण के लिए, एक लोअर डिवीजन क्लर्क को अपर डिवीजन क्लर्क के पद पदोन्नति करना। यह पदोन्नति किसी कर्मचारी के पद के श्रेणी उन्नयन करने से सम्बन्धित होती है।

2.लम्बवत् पदोन्नतिः इस प्रकार की पदोन्नति बढ़े हुए उत्तरदायित्वों, प्रतिष्ठा तथा आय के साथ–साथ कार्य की प्रकृति में परिवर्तन में परिणत होती है। दूसरे शब्दों में, जब पदोन्नति कार्य वर्गीकरण की सीमाओं के बाहर होती है तो वह लम्बवत् पदोन्नति कहलाती है। उदाहरण के लिए, अपर डिवीजन क्लर्क को सुपरिन्टेन्डेण्ट के पद पर पदोन्नत करना।

3. शुष्क पदोन्नतिः कभी–कभी पारिश्रमिक में वृद्धि के स्थान पर शुष्क पदोन्नति भी की जाती है। इसमें पद नाम भिन्न होता है, परन्तु उत्तरदायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। पदोन्नत कर्मचारी को एक अथवा दो वार्षिक वेतन–वृद्धि दी जाती सकती है।

4.15 पदोन्नति के आधार

संगठनों द्वारा अपनी प्रकृति, आकार तथा प्रबन्धन के अनुसार पदोन्नति के लिए विभिन्न आधार अपनाये जाते हैं। सामान्यतः पदोन्नति के दो सुस्थापित आधार योग्यता तथा वरिष्ठता हैं। एक अन्य पदोन्नति का आधार है, वरिष्ठ अधिकारियों की सिफारिश, जो कि विभिन्न रूपों में सभी प्रकार के सगठनों के आधार पर पदोन्नति के समर्थक होते हैं, जबकि दूसरी ओर श्रम संघों की दृष्टि से वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति दी जानी चाहिये।

1. योग्यता के आधार पर पदोन्नतिः योग्यता के आधार पर पदोन्नति करने हेतु यह आकलन किया जाता है कि कोई कर्मचारी उस नये उच्च पद के लिए कितना योग्य है? उसके उस नये पद पर सफल होने की कितनी सम्भावना है? इन सभी बातों को ध्यान में रखकर ही उसकी पदोन्नति की जाती है। इसके अन्तर्गत उसकी सेवा की अवधि को ध्यन में नहीं रखा जाता है।

योग्यता के आधार पर पदोन्नति से होने वाले लाभ (1) योग्य एवं कुशल कर्मचारी अपनी प्रगति हेतु अधिक परिश्रम से काय्र करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं; (2) अकुशल कर्मचारियों को यदि यह विश्वास हो जाता है कि पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर ही

की जायेगी तो वे अपनी कमियों को दूर करने के प्रयास करते हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण संगठन के कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं योग्यता में वृद्धि होती है; तथा (3) यदि संगठन के समस्त कर्मचारी परिश्रम एवं लगन से कार्य करते हैं तो उत्पादन में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण समाज भी लाभान्वित होता है।

योग्यता के आधार पर पदोन्नति से होने वाले लाभो के होते हुए भी इसके कुछ दोष इस प्रकार हैः (1) यह संगठन के प्रबन्धकों एवं पर्यवेक्षकों आदि को, जिन्हे कर्मचारियों की योग्यताओं के विषय में अपनी राय देनी होती है। पक्षतापूर्ण नीति को अपनाने का अवसर प्रदान करती है। इससे योग्यता की आड़ में जातिवाद तथा भाई–भतीजावाद को बढ़ावा मिलता है;(2) यह उन कर्मचारियों में असन्तोष एवं निराशा की भावना को उत्पन्न करती है, जो कि वरिष्ठ होते हैं तथा जिनकी पदोन्नति नहीं होती है; (3) श्रम संघ, योग्यता के आधार पर पदोन्नति के समर्थक नहीं होते हैं, जिसके फलस्वरूप असन्तोष फैलता है तथा औद्योगिक सम्बन्ध भी बिगड़ते है।

2. वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नतिः वरिष्ठता का तात्पर्य एक ही संगठन के अन्तर्गत पर ही कार्य पर सेवा की अवधि से है। इसकी गणना किसी कर्मचारी के कार्य आरम्भ करने की तिथि से की जाती है। वरिष्ठता को पदोन्नति के आधार के रूप में मानने के पीछे यह तर्क है कि एक ही कार्य पर सेवा की अवधि तथा किसी कर्मचारी द्वारा संगठन के अन्तर्गत अर्जित ज्ञान की मात्रा एवं निपुणता के स्तर के बीच एक सकारात्मक सह–सम्बन्ध होता है। यह व्यवस्था इस प्रथा पर भी आधारित होती है कि जो संगठन में पहले आयेगा उसे ही समस्त हित–लाभों एवं विशेषाधिकारों में पहले अवसर दिये जाने चाहिये।

वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के गुण हैः (1) यह एक उचित आधार है तथा इसके अपनाने से प्रबन्धकों एवं पर्यवेक्षकों को अपने विवेकानुसार अथवा पक्षपातपूर्ण ढंग से पदोन्नति हेतु कर्मचारियों के चयन करने की छूट नहीं मिल पाती हैं; (2) यह अधिक व्यावहारिक आधार है, क्योकि योग्यता का मापन अत्यन्त कठिन कार्य है; (3) इससे कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा एवं अपनत्व की भावना में वृद्धि होती है, क्योंकि उन्हें पता रहता है कि वरिष्ठता के आधार पर उनके पदोन्नति के अवसर आने पर उनके साथ अन्याय नहीं होगा; (4) यह आधार कर्मचारियों को अधिक सन्तुष्टि प्रदान करता है, क्योंकि उनकी पदोन्नति उचित समय पर हो जाती है; तथा (5) पदोन्नति के इस आधार का श्रम संघों द्वारा प्रबल समर्थन किये जाने से यह विवादों को भी कम करने में सहायक होता है।

वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति में होने वाले गुणों के साथ–साथ इसमें विद्यमान कुछ दोष इस प्रकार हैं: (1) यह कर्मचारियों को परिश्रम तथा कुशलता के साथ कार्य करने को प्रोत्साहित नहीं करता, क्योंकि उन्हें यह आश्वासन रहता हैं कि वे चाहे कार्य करें अथवा

न करें उनकी पदोन्नति तो हो जायेगी;(2) यह योग्य, परिश्रमी एंव कुशल कर्मचारियों के मनोबल को गिरता है तथा उन्हें हतोत्साहित करता है, क्योंकि वे सोचते हैं कि परिश्रम से कार्य करने पर भी उन्हें पदोन्नति नहीं मिल पायेगी; तथा (3) इससे संगठन की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि आयोग्य एवं अकुशल कर्मचारी इसलिए परिश्रम नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी पदोन्नति में कोई रूकावट नहीं होती, जबकि योग्य एवं कुशल कर्मचारी असन्तुष्ट होने के कारण उत्साह एवं लगन से कार्य नहीं करते हैं।

3. वरिष्ठता के साथ योग्यताः वरिष्ठता एवं योग्यता, दोनों ही पदोन्नति के आधारो कें सापेक्षिक गुण–दोषों का विवेचन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही आधार के अपने–अपने लाभ हैं तथा साथ ही उनमें कुछ दोष भी हैं। व्यवहार में, वरिष्ठता को ही आधार मानकर पदोन्नति की जाती है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि योग्यता के महत्व को स्वीकार ही न किया जाये। वास्तव में, दोनों ही आधारों के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया जाना ही उचित होता है। यदि यह स्पष्ट है कि कोई वरिष्ठ कर्मचारी नये एवं उच्च पद के कार्य को सम्पन्न कर सकता है तो चाहे वह थोड़ा कम ही योग्य क्यों न हो, उसकी पदोन्नति की जानी चाहिये। परन्तु, यदि वह बिल्कुल ही अयोग्य है तो केवल वरिष्ठता के आधार पर उसकी पदोन्नति किये जाने से संगठन का हानि ही होगी। अतः इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय सम्बन्धित कर्मचारी, प्रबन्ध एवं सेवायोजक तीनों के हितों को ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

4.16 सार संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन में आपने चयन की अवधारणा को जाना हैं। चयन प्रक्रिया की विशेषताओं को समझा है। चयन के महत्व ,चयन नीति ,चयन प्रक्रिया ,चयन में आधुनिक प्रवृत्तियों को जाना है। कार्य पर नियुक्ति की प्रक्रिया को समझा है। कार्य परिचय ,पदोन्नति ,पदोन्नति के उद्देश्यों, पदोन्नति के प्रकारों का विवरण दिया गया है। पदोन्नति के आधारों को समझाया गया है।इस पाठ के अध्ययन से आप उपयुर्क्त के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सके होगें।

4.17 अभ्यास प्रश्न

1. '360^0 चयन कार्यक्रम' से आप क्या समझते है।
2. कार्य पर नियुक्ति की प्रक्रिया को समझाइये।
3. कार्य परिचय को लिखिये ।
4. चयन में आधुनिक प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिये।।
5. पदोन्नति पर टिप्पणी कीजिये।
6. पदोन्नति के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिये।

7. पदोन्नति के प्रकारों का विवरण प्रस्तुत कीजिये।
8. पदोन्नति के आधारों को समझाइये।
9. चयन की अवधारणा को लिखिये।
10. चयन प्रक्रिया की विशेषतायें का वर्णन कीजिये।
11. चयन के महत्व को बता सकेगें।
12. चयन नीति को समझ सकेगें।
13. चयन प्रक्रिया को लिख सकेगें।

4.18 पारिभाषिक शब्दावली

परिवीक्षा अवधि	Probation Period	**नियुक्ति आदेश**	Appointment Order
कार्य परिचय	Induction	**प्रक्षेपीय पराक्षण**	Projective Tests
ठेका करना	Leasing	**योग्यता परीक्षण**	Apttitude Tests

4.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जी0 पी0 सिन्हा और पी0 आर0 एन0 सिन्हा– इंडस्ट्रियल रिलेशन्स एंड लेबर लेजिस्लेशन
2. वी0 जी0 मेहत्राज– लेबर पार्टिसिपेशन इन मैनेजमेंट (1966)
3. के0 सी0 अलेक्जेंडर– पार्टिसिपेटिव मैनेजमेंट (1972)
4. इआन क्लेग्ग– इंडस्ट्रियल डेमोक्रेसी (1969)
5. निल डब्लू0 चैम्बरलेन– ऐन एक्सपेरिमेन्ट इन ए नार्वेजियन फैक्ट्री ह्यूमेन रिलेशन्स
6. आर0 के0 वर्मा और पी0 आर0 एन0 सिन्हा– वर्कर्स पार्टिसिपेशन इन मैनेजमैन्ट (1991)
7. वही पृ0–12
8. भारत सरकार– राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट (1969)
9. देखिए, खण्ड 3, वही
10. भारत सरकार, श्रम मंत्रालय रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन लेबर (2002)
11. वही खण्ड भाग 1

इकाई–5

कर्मचारी प्रशिक्षण

Employee Training

इकाई की रूपरेखा

5.1 परिचय
5.2 उद्देश्य
5.3 प्रशिक्षण का अर्थ एवं परिभाषायें
5.4 प्रशिक्षण के विशेषतायें
5.5 प्रशिक्षण एवं शिक्षा
5.6 प्रशिक्षण एवं विकास
5.7 प्रशिक्षण के उद्देश्य
5.8 प्रशिक्षण की आवश्यकता
5.9 प्रशिक्षण के क्षेत्र
5.10 प्रशिक्षण के सिद्धान्त
5.11 विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण स्तर
5.12 प्रशिक्षण के प्रकार
5.13 प्रशिक्षण की विधियाँ
5.14 प्रशिक्षण की प्रक्रिया
5.15 प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्याकंन
5.16 सार संक्षेप
5.17 अभ्यास प्रश्न
5.18 पारिभाषिक शब्दावली
5019 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 परिचय

संगठन एवं उनके कर्मचाारियों को अपन अस्तित्व को बनाये रखने तथा पारस्परिक लक्ष्यों की प्रप्ति के लिए एक साथ विकास एवं प्रगति करना होता है। अतः प्रत्येक आधुनिक प्रबन्धतन्त्र के लिए मानव संसाधन विकास के माध्यम से अपने संगठन का विकास करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। कर्मचारी प्रशिक्षण, मानव संसाधन विकास की एक महत्वपूर्ण उप–प्रणाली होती है। कर्मचारी प्रशिक्षण एक विशिष्ट कार्य है तथा मानव संसाधन प्रबन्धन के लिए आधारभूत संचालनात्मक कार्यों में से एक होता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- प्रशिक्षण का अर्थ एवं परिभाषायें जान सकेगें।
- प्रशिक्षण की विशेषताओं को लिख सकेगें।
- प्रशिक्षण एवं शिक्षा का महत्व समझ सकेगें।
- प्रशिक्षण एवं विकास को समझ सकेगें।
- प्रशिक्षण के उद्देश्यों को जान सकेगें।
- प्रशिक्षण की आवश्यकता की व्याख्या कर सकेगें।
- प्रशिक्षण के क्षेत्र को समझ सकेगें।
- प्रशिक्षण के सिद्धान्तों को जान सकेगें।
- विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण स्तर का विवरण कर सकेगें।
- प्रशिक्षण के प्रकारों की व्याख्या कर सकेगें।
- प्रशिक्षण की विधियाँ क्या है जान सकेगें।
- प्रशिक्षण की प्रक्रिया को समझ सकेगें।
- प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्याकंन कर सकेगें।

5.3 प्रशिक्षण का अर्थ एवं परिभाषायें

साधारण शब्दों में, प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है। प्रशिक्षण एक अल्पकालीन शैक्षणिक प्रक्रिया है तथा जिसमें एक व्यवस्थित एवं संगठित कार्य–प्रणाली उपयोग में लायी जाती हैं, जिसके द्वारा एक कर्मचारी किसी निश्चित उद्देश्य के लिए तकनीकी ज्ञान एवं निपुणताओं को सीखता है। दूसरे शब्दों में प्रशिक्षण कार्य एवं संगठन की आवश्यकताओं के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान निपुणताओं, व्यवहार, अभिरूचियों तथा मनोवृत्तियों में सुधार करता है, परिर्वतन उत्पन्न करता है तथा ढालता है। इस प्रकार प्रशिक्षण एक सीखने का अनुभव है। जिसके अन्तर्गत यह एक कर्मचारी में तुलनात्मक रूप से स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है, जो कि उसके कार्य का निष्पादन क्षमता में सुधार लाता है। प्रशिक्षण की कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. एडविन बी. फिलिप्पा के अनुसार ''प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है''

2. डेल एस. बीच के अनुसार'' प्रशिक्षण एक संगठित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान तथा/अथवा निपुणताओं को सीखने है।''

3. अरून मोनप्पा एवं मिर्जा एस. सैय्यदैन के अनुसार, ''प्रशिक्षण सिखाने/सीखने के क्रियाकलापों से सम्बन्धित होता है, जो कि एक संगठन के सदस्यों को उस संगठन द्वारा अपेक्षित ज्ञान निपुणताओं, योग्यताओं तथा मनोवृत्तियों को अर्जित करने एवं प्रयोग करने के लिए सहायता करने में प्राथमिक उद्देश्य हेतु जारी रखी जाती है।''

5.4 प्रशिक्षण के विशेषतायें

उपलिखित विवरण के आधार पर प्रशिक्षण की प्रकृति में निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर होती है:

1. प्रशिक्षण, मानव संसाधन विकास की एक महत्वपूर्ण उप–प्रणाली तथा मानव संसाधन प्रबन्धन के लिए आधारभूत संचालनात्मक कार्यों में से एक है
2. प्रशिक्षण कर्मचारियो के विकास की एक व्यवस्थित एवं पूर्व नियोजित प्रक्रिया होती है।
3. प्रशिक्षण एक सतत् जारी रहने वाली प्रक्रिया है।
4. प्रशिक्षण सीखने का अनुभव प्राप्त करने की प्रक्रिया है।
5. प्रशिक्षण किसी कार्य की व्यावहारिक शिक्षा का स्वरूप होता है।
6. प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि की जाती हैं तथा उनके विचारों, अभिरूचियो एवं व्यवहारों में परिर्वतन लाया जाता है।
7. प्रशिक्षण से कर्मचारियो की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।
8. प्रशिक्षण मानवीय संसाधनों में उद्देश्यपूर्ण विनियोग है, क्योंकि यह संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होता है।
9. प्रशिक्षण प्रबन्धतन्त्र का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होता है।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रशिक्षण, कार्यों को सही एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों को जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया है, जिससे कि उनकी कार्य के प्रति समझ, कार्यक्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

5.5 प्रशिक्षण एवं शिक्षा

प्रशिक्षण, शिक्षा से भिन्न होता है तथा दोनों के बीच भेद इस प्रकार के है:

(1) प्रशिक्षण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि की जाती है, इसके विपरीत, शिक्षा ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के सामान्य ज्ञान तथा बोध–शक्ति में वृद्धि की जाती है।

(2) प्रशिक्षण का क्षेत्र एक कार्य विशेष तक ही सीमित होता है, जबकि शिक्षा का क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक होता है जो कि विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान प्रदान करती है;

(3) प्रशिक्षण तकनीकी ज्ञान से सम्बन्धित होता है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा तकनीकी एवं सैद्धान्तिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान से सम्बन्धित होती है;

(4) प्रशिक्षण व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित होता है, जबकि शिक्षा सैद्धान्तिक ज्ञान पर बल देती है; तथा

(5) प्रशिक्षण रोजगार–उन्मुख होता है, इसके विपरीत शिक्षा व्यक्ति–उन्मुख होती है।

शिक्षा एवं प्रशिक्षण दोनों ही कर्मचारियों के ज्ञान, निपुणताओं तथा योग्यताओं के लिए आवश्यक है, साथ ही दोनो ही परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते है। अत' यह कहा जा सकता है। कि प्रशिक्षण शिक्षा का भाग है।

5.6 प्रशिक्षण एवं विकास

प्रशिक्षण एवं विकास भी एक–दूसरे से भिन्न होते है दोनों के बीच भिन्नता को इस प्रकार से समझा जो सकता हैः

(1) प्रशिक्षण कर्मचारियों को उनके कार्यों के सम्बन्ध में क्रियाओं तथा तकनीकी एवं सहायक क्षेत्रों के लिए प्रदान किया जाता है, जबकि विकास, प्रबन्ध, प्रशासन तथा संगठन आदि के सिद्धान्तों एवं तकनीकों के क्षेत्र में विकसित करने से सम्बन्धित होता है।

(2) प्रायः 'प्रशिक्षण' शब्द तकनीकी कर्मचारियों एवं गैर–प्रबन्धकीय व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है वहीं दूसरी ओर 'विकास' शब्द का प्रयोग अधिकतर प्रबन्धकीय व्यक्तियों के सन्दर्भ में ही किया जाता है।

(3) प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों को किसी कार्य को करने के योग्य बनाना होता है, इसके विपरीत विकास का मुख्य उद्देश्य प्रबन्धकीय व्यक्तियों के ज्ञान एवं निपुणताओं के साथ–साथ व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करना होता है। तेजी से बदलते हुए प्रौद्योगिक तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक वातावरण मे संगठनों के लिए प्रशिक्षण एवं विकास दोनों ही अत्यन्त आवश्यक हो गये है।

5.7 प्रशिक्षण के उद्देश्य

किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके उद्देश्यों का निर्धारण कितनी कुशलता से किया गया है। सामान्यः संगठनों द्वारा अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए जो उद्देश्य होते है, वे निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. कार्य एवं संगठन की वर्तमान तथा साथ ही परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये तथा पुराने दोनों कर्मचारियों को तैयार करना
2. किसी निश्चित कार्य के कुशलतापूर्ण निष्पादन के लिए नव–नियुक्त कर्मचारियों को आवश्यक आधारभूत ज्ञान एवं निपुणताओं को प्रदान करना।

3. संगठन के सभी स्तरों पर योग्य एवं कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था को बनाये रखना।
4. कर्मचारियों को कार्य–दशाओं एवं संगठनात्मक संस्कृति के अनुकूल बनाना।
5. न्यूनतम लागत, अपव्यय एवं बर्बादी तथा न्यूनतम पर्यवेक्षण पर कर्मचारियों से श्रेष्ठ ढंग से कार्य सम्पादन को प्राप्त करना।
6. कर्मचारियों को दुर्घटनाओं से बचाव की विधियों से परिचित कराना।
7. नवीन प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी परिवर्तनों से कर्मचारियों को परिचित करवाने तथा बदलते हुए वातावरण के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए कर्मचारियों को विकसित करना।
8. स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में नवीन कार्य–दशाओं में समायोजित करने के लिए कर्मचारियों को तैयार करना
9. कर्मचारियों को नवीनतम अवधारणाओं, सूचनाओं एवं तकनीकों के विषय में जानकारी प्रदान करने तथा उन निपुणताओं, जिनकी उन्हें अपने–अपने विशेष क्षेत्रों मे आवश्यकता है अथवा होगी, उनको विकसित करने के द्वारा उन्हें उनके वर्तमान पदों पर अधिक प्रभावपूर्ण रूप से कार्य सम्पन्न करने के लिए सहायता प्रदान करना।
10. संगठन के अन्तर्गत समस्त विभागों की कार्य–प्रणाली को सरल एवं प्रभावी बनाना।
11. कर्मचारियों की कार्य सम्पादन सम्बन्धी आदतों में सुधार करना।
12. कर्मचारियों की आत्म–विश्लेषण करने की योग्यता तथा कार्य सम्बन्धी निर्णय क्षमता का विकास करनां
13. वैयक्तिक एवं सामूहिक मनोबल, उत्तदायित्व की अनुभूति, सहकारिता की मनोवृत्तियों तथा मधुर सम्बन्धों को बढ़ावा देना।
14. संगठन द्वारा आपेक्षित स्तर के आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करना।
15. मानव संसाधन विकास के लक्ष्यों की पूर्ति करना।

5.8 प्रशिक्षण की आवश्यकता

प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने हेतु कर्मचारियों को महत्वपूर्ण विशिष्ट निपुणताओं के प्रदान किये जाने से सम्बन्धित होता है। प्रशिक्षण, मुख्य रूप से कार्य–उन्मुख होता है तथा इसका लक्ष्य वर्तमान कार्य–निष्पादन को बनाये रखना एवं उसमें सुधार करना होता है। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण निम्नलिखित कारणों से आवश्यक होता है:

1. शैक्षणिक संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों की शिक्षा सैद्धान्तिक ज्ञान की ठोस नींव तो डाल सकती है, किन्तु विभिन्न कार्यों के सफल निष्पादन हेतु व्यावहारिक ज्ञान एवं

विशिष्ट निपुणताओं की आवश्यकता होती है, जो कि प्रशिक्षण द्वारा ही पूरा की जा सकती है।

2. नव–नियुक्त कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक होता है, ताकि वे अपने कार्यों को प्रभावपूर्ण रूप से सम्पन्न कर सके।
3. वर्तमान कर्मचारियों को उच्चतर स्तर के कार्यों के लिए तैयार करने हेतु प्रशिक्षण अनिवार्य होता है।
4. वर्तमान कर्मचारियों के लिए पुर्नअभ्यास प्रशिक्षण आवश्यक होता है, ताकि वे कार्य–संचालनों में होने वाले नवीनतम विकासों के साथ–साथ चल सकें। इसके अतिरिक्त तीव्र गाति से होने वाले प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के लिए भी यह अत्यन्त आवश्यक होता है।
5. कर्मचारियों को गतिशील एवं परिवर्तनशील बनाने के लिए प्रशिक्षण अनिवार्य होता है। इससे उन्हें संगठनात्मक आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न कार्यों पर नियुक्त किया जाता सकता हैं।
6. कर्मचारी के पास क्या है? तथा कार्य की आवश्यकता क्या है, इन दोनों के बीच के अन्तर को दूर करने हेतु प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक होता हैं इसके अतिरिक्त, कर्मचारियों को अधिक उत्पादक एवं दीर्घकालिक उपयोगी बनाने के लिए भी प्रशिक्षण प्रदान किया जाना आवश्यक होता है।
7. अधिसमय, कार्य–लागत, अनुपस्थितता तथा कर्मचारी–परिवर्तन में कमी लाने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक होता है।
8. दुर्घटनाओं की दरों में कमी लाने तथा उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए समय–समय पर कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक होता है।

5.9 प्रशिक्षण के क्षेत्र

प्रायः विभिन्न संगठन अपने कर्मचारियों को निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करते हैः

1. **ज्ञानः** इसके अन्तर्गत प्रशिक्षार्थी कार्यो, कर्मचारी–व्यवस्था तथा संगठन द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा प्रदत्त सेवाओं के विषय में निर्धारित नियमों एवं विनियमों को सीखते है। इसका उद्देश्य नव–नियुक्त कर्मचारियों को इस सम्बन्ध में पूर्ण रूप से अवगत कराना होता है कि संगठन के भीतर तथा बाहर क्या–क्या घटित होता है।
2. **तकनीकी निपुणतायेंः** इसमें कर्मचारियों को एक विशिष्ट निपुणता (जैसे–किसी यन्त्र का संचालन करना अथवा कम्प्यूटर का संचालन करना) को सिखाया जाता है, ताकि वे उस निपुणता को अर्जित कर सकें तथा संगठन के प्रति अर्थपूर्ण रूप से अपना योगदान दे सकें।

3. **सामाजिक निपुणतायें:** इसके अन्तर्गत कर्मचारियों को कार्य–सम्पादन के लिए एक उचित मानसिक स्थिति का विकास करने तथा वरिष्ठों, सहकर्मियों एवं अधीनस्थों के प्रति आचरण के ढंगों को सिखाया जाता हैं इसमें प्रमुख ध्यान इस बात पर दिया जाता है कि एक कर्मचारी को कार्य–समूह के सदस्य के रूप में किस प्रकार से समायोजित किया जाये।

4. **तकनीकें:** इसमें कर्मचारियों को कार्य सम्पादन की विभिन्न स्थितियों में उनके द्वारा अर्जित ज्ञान एवं निपुणताओं के प्रयोग के विषय में जानकारी प्रदान की जाती है। कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं के सुधार करने के अतिरिक्त, प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों की मनोवृत्तियों को संगठनात्मक संस्कृति के अनुरूप ढालना भी होता है। जब एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रशासन समुचित ढंग से किया जाता है तो इससे संगठन के क्रियाकलापों के लिए कर्मचारियों की निष्ठा, लगाव एवं वचनबद्धता को स्थायी रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

5.10 प्रशिक्षण के सिद्धान्त

संगठनात्मक कार्यों की सफलता के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षित करना अनिवार्य होता है। परन्तु कार्य–सम्बन्धी ज्ञान एवं निपुणताओं के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना एक जटिल प्रक्रिया है। विद्वानों ने विभिन्न शोधों एवं प्रयोगों पर आधारित कुछ सिद्धान्तों को विकसित किया है। इन मार्गदर्शक सिद्धान्तों का अनुपालन प्रशिक्षण प्रक्रिया को सुलभ बना देता है तथा इससे प्रशिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करना भी सम्भव होता है। इनसें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है।

1. **अभिप्रेरण** : प्रशिक्षण कार्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिये, जो कि प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित कर सके। प्रशिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रशिक्षण की उपयोगिता एवं प्रशिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के बीच एकात्मकता स्थापित करना आवश्यक है। प्रशिक्षार्थियों की आवश्यकतायें, सामाजिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं। जब प्रशिक्षार्थी यह अनुभव करते हैं कि प्रशिक्षण उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की सहायक हो सकता है, तो इसके प्रति उनमें रूचि एवं उत्साह का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है।

2. **प्रगति प्रतिवेदन** : प्रशिक्षण को प्रभावपूर्ण बनाने तथा प्रशिक्षार्थियों के मनोबल को बनाये रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हैं कि प्रशिक्षार्थियों को उनकी प्रगति के विषय में समय–समय पर जानकारी प्रदान की जाये। प्रशिक्षण काल के दौरान प्रशिक्षक द्वारा निरन्तर यह अनुमान लगाया जाना चाहिये कि प्रशिक्षार्थियों ने किन–किन क्षेत्रों में कितनी प्रगति कर ली हैं प्रगति प्रतिवेदन से प्रशिक्षण में नियमितता, तत्परता एवं प्रभावशीलता बनी रहती है।

3. प्रबलन : प्रशिक्षण कार्यक्रम की प्रभावपूर्णता के लिए पुरस्कार एवं दण्ड के माध्यम से प्रशिक्षार्थियों का प्रबलन भी किया जाना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि प्रगति का मूल्यांकन करने पर अच्छे परिणामों के लिए पुरस्कार तथा खराब परिणामों के लिए दण्डित करने की भी व्यवस्था होना आवश्यक है। पदोन्नति, वेतन–वृद्धि, प्रशंसा एवं मान्यता आदि के द्वारा अच्छे परिणामों के लिए प्रशिक्षार्थियों को पुरस्कृत किया जा सकता हैं। परन्तु दण्ड के सम्बन्ध में प्रबन्धतन्त्र को अत्यन्त ही सावधानी बरतनी चाहिये।

4. प्रतिपुष्टि : प्रगति प्रतिवेदन एवं प्रतिपुष्टि दोनों एक–दूसरे के सहायक सिद्धान्त है। प्रतिपुष्टि को प्रगति प्रतिवेदन का पूरक कहा जा सकता है। इसका आशय यह है कि प्रशिक्षार्थियों को उनकी त्रुटियों एवं कमियों का ज्ञान प्रशिक्षण की अवधि में समय–समय पर प्राप्त होते रहना आवश्यक है, ताकि समय रहते वे त्रुटियों को सुधार सकें। प्रशिक्षक को भी चाहिए कि वह त्रुटियों के कारणों का पता लगाकर उन्हें सुधारने हेतु प्रयास करें

5. वैयक्तिक भिन्नताये : प्रायः प्रशिक्षार्थियों को सामूहिक रूप से प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, क्योंकि इससे समय एवं धन दोनों की बचत होती है। परन्तु प्रशिक्षार्थियों की बौद्धिक क्षमता एवं सीखने की तत्परता एक–दूसरे से भिन्न होती है। अत; प्रशिक्षार्थियों की इन भिन्नताओं को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण कार्यक्रम को तैयार किया जाना चाहिए।

6. अभ्यास : किसी कार्य को भली–भाँति सीखने के लिए उसका वास्तविक अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। केवल व्याख्यान सुनने एवं चलचित्र आदि देखने से किसी कार्य को सम्पन्न करने की विधि सीखना कठिन होता है। अतः, प्रशिक्षण एवं सार्थक बनाने के लिए यह भी आवश्यक हैं कि प्रशिक्षार्थी को कार्य के अभ्यास का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाये

5.11 विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण स्तर

प्रायः, किसी भी संगठन में विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारी कार्य करते हैं। इन सभी कर्मचारियों को एक सा प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता, बल्कि इनके लिए अलग–अलग स्तर के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। कर्मचारियों की श्रेणी के आधार पर प्रशिक्षण के विभिन्न स्तरों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

1. पर्यवेक्षकों के लिए प्रशिक्षण: प्रायः पर्यवेक्षक कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करते हैं तथा उन्हें कार्यों के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देते है। पर्यवेक्षक अधिकतर एक प्रबन्धक के निर्देशन में निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण की सीखते है। इसलिए पर्यवेक्षकों के लिए कार्य पर प्रशिक्षण विधियों पर बल दिया जाना चाहिये। इन विधियों की कमी को विभिन्न कार्य से पृथक प्रशिक्षण विधियों के द्वारा पूरा किया जा सकता है। सामान्यतः, पर्यवेक्षक के प्रशिक्षण में उत्पादन–नियन्त्रण, कार्य एवं क्रियाकलाप नियन्त्रण, कार्य–पद्धति अध्ययन, समय संसाधन नीतियाँ अधीनस्थों का प्रशिक्षण, परिवेदना निवारण पद्धति, अनुशासनिक प्रक्रिया, सम्प्रेषण,

प्रभावी निर्देशन करना, प्रतिवेदन बनाना, निष्पादन मूल्यांकन, कर्मचारी अभिलेख, अनुपस्थितता का निवारण, कर्मचारी–परिवर्तन, औद्योगिक एवं श्रमिक विधियाँ, नेतृत्व क्षमता तथा दुर्घटनाओं की रोकथाम आदि विषय सम्मिलित किया जाता है।

2. विक्रय प्रतिनिधियों के लिए प्रशिक्षण : विक्रय प्रतिनिधियों के लिए प्रशिक्षण में कार्य पर प्रशिक्षण के साथ–साथ कार्य से पृथक प्रशिक्षण विधियों पर बल दिया जाना चाहिए। विक्रय प्रतिनिधियों को संगठनात्मक ज्ञान, संगठन के उत्पादन, ग्राहकों , प्रतिस्पर्धियों, विक्रय प्रशासन एवं प्रबन्ध प्रक्रियाओं, ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुतीकरण के ढंगों, ग्राहकों की आपत्तियों को निपटाने के तरीकों, संगठन के प्रति निष्ठा तथा संगठन के उत्पादों के विषय में विश्वास सृजन आदि विषयों में प्रशिक्षित किया जाता है।

3. लिपिकीय कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण : लिपिकीय कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण आावश्यक होता है। इन कर्मचारियों के प्रशिक्षण में कार्य से पृथक प्रशिक्षण विधियों को अपनाया जा सकता है। प्रायः लिपिकीय कर्मचारियों को संगठन की पृष्ठभूमि के विषय में ज्ञान, संगठन की नीतियों, प्रक्रियाओं एवं कार्यक्रमों, लिखित सम्प्रेषण की विधियों, लिपिकीय योग्यता तथा प्रतिवेदना , अभिलेखों एवं पत्रावलियों के रखरखाव आदि के विषय में प्रशिक्षित किया जाता है।

4. कुशल श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण : किसी भी संगठन के कुशल श्रमिक अधिकतर विभिन्न तकनीकी संस्थानों द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति होते है। फिर भी, कार्य एवं संगठन की आवश्यकता तथा संगठनात्मक परिस्थितियों के अनुकूल उन्हें ढालने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना आवश्यक होता है। प्रायः, कुशल श्रमिकों को कार्य करने के तरीकों, उत्तरदायित्वों, वरिष्ठ अधिकारियों, अधीनस्थ श्रमिकों, वेतन भुगतान के तरीकों, छुट्टियों एवं अवकाशों, विभिन्न कल्याण सुविधाओं तथा अनुशासन के सम्बन्ध में प्रशिक्षित किया जाता है।

5. अर्द्ध–कुशल श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण : चूँकि, अर्द्ध–कुशल श्रमिकों को तकनीकी ज्ञान पहले से ही होता है, अतः इनके प्रशिक्षण में अधिक श्रम नहीं करना पड़ता है। फिर भी, इन्हें प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक होता है। ऐसे श्रमिकों को प्रशिक्षण, विशेषज्ञों द्वारा कार्य पर अथवा प्रशिक्षशालाओं में दिया जाना चाहिये। प्रायः, ऐसे श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण उनकी प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यकता पर निर्भर करता है।

6. अकुशल श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण : अकुशल श्रमिकों को उनके कार्यों के आधार पर ही उनके पर्यवेक्षकों द्वारा कार्य स्थल पर ही तथा कार्य करते समय ही प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। अकुशल श्रमिकों के प्रशिक्षण में कार्य–पद्धति का सुधार करना तथा यन्त्रों, उपकरणों एवं वस्तुओं का मितव्यतापूर्ण प्रयोग कर उत्पादन लागत में कमी करना आदि को सम्मिलित किया जाता है।

5.12 प्रशिक्षण के प्रकार

विभिन्न संगठनों द्वारा अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उपयोग अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु किया जाता है। उनमें से कुछ प्रमुख का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है:

1. कार्य–परिचय अथवा अभिमुखीकरण प्रशिक्षण : इस प्रकार के प्रशिक्षण के उद्देश्य नव–नियुक्त कर्मचारियों को उनके कार्य एवं संगठन से परिचित कराना होता है। इसके द्वारा नव–नियुक्त कर्मचारियों को संगठन की नीतियों, उद्देश्यों, संगठन की सरंचना, उत्पादन–प्रणालियों तथा कार्य–दशाओं आदि की जानकारी प्रदान की जाती है। यह प्रशिक्षण नव–नियुक्त कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा, रूचि एवं विश्वास उत्पन्न करने तथा संगठन के साथ एकात्मकता स्थापित करने के लिए आवश्यक होता है।

2. कार्य प्रशिक्षण : कार्य प्रशिक्षण, कर्मचारियों को उनके कार्यों में दक्ष एवं निपुण बनाने तथा कार्यों की बारीकियाँ समझाने के लिए प्रदान किया जाता है, ताकि वे अपने कार्यों का कुशलतापूर्वक सम्पादन कर सकें। इसमें कर्मचारियों को कार्य के विभिन्न पहलुओं, उसमें प्रयुक्त यन्त्रों एवं उपकरणों तथा कार्यविधियों की जानकारी प्रदान की जाती है। इस प्रकार के प्रशिक्षण से कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। यह प्रशिक्षण नये तथा पुराने दोनों प्रकार के कर्मचारियों को दिया जाता सकता है।

3. पदोन्नति प्रशिक्षण : संगठन में जब कर्मचारियों को पदोन्नत किया जाता है तो उन्हें उच्च पद के कार्य का प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक होता है, ताकि वे अपने नवीन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वाह कर सकें। सामान्यतः संगठन द्वारा उच्च पदों की भावी रिक्तियों का अनुमान लगाकर सम्भावित प्रत्याशियों को पहले से ही प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जाती है। कई बार कर्मचारियों को पदोन्नति के तुरन्त बाद भी प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है इसमें कर्मचारियों को नये पदों के कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों, अधिकारों तथा अन्य कार्यों से सम्बन्धों आदि का ज्ञान करवाया जाता है।

4. पुनअभ्यास प्रशिक्षण : वर्तमान परिवर्तनशील वातावरण एवं तीव्र प्रौद्योगिकीय विकास के परिणामस्वरूप इस प्रकार के प्रशिक्षण का महत्व बढ़ गया है। अतः कर्मचारियों को केवल एक बार प्रशिक्षित कर देना ही पर्याप्त नहीं होता है। उत्पादन में नवीन तकनीकों एवं यन्त्रों का प्रयोग किये जाने तथा नवीतम कार्य–प्रणालियों को अपनाये जाने की दशा में पुराने कर्मचारियों को पुनः प्रशिक्षित किये जाने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है पुराने कर्मचारियों के ज्ञान को तरा–ताजा करने उनकी मिथ्या धारणाओं को दूर करने, उन्हें नवीन कार्य–पद्धतियों एवं नये सुधारों से परिचित करवाने तथा उन्हें नवीन परिवर्तन से अवगत कराने की दृष्टि से यह प्रशिक्षण आवश्यक है। इस प्रकार ज्ञान का नवीनीकरण एंव

विकास सूचनाओं का प्रसार, कार्य–शैलियों में परिवर्तन तथा वैयक्तिक विकास आदि इस प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं।

5.13 प्रशिक्षण की विधियाँ

विभिन्न संगठनों द्वारा प्रशिक्षण के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक संगठन अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप इनमें से उपयुक्त विधि का चयन करता है। सामान्यतः, ये प्रशिक्षण विधियाँ प्रचालनात्मक तथा पर्यवेक्षकीय कर्मचारियों के लिए प्रयोग की जाती है। प्रशिक्षण की इन विधियों को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित करके समझाा जा सकता है।

- **कार्य पर प्रशिक्षण विधियाँ**
- **कार्य से पृथ्क प्रशिक्षण विधियाँ**

5.13.1 कार्य पर प्रशिक्षण विधियाँ

सामान्यतः कार्य पर प्रशिक्षण विधियाँ अत्यधिक प्रयोग में लायी जाती है। इन विधियों में प्रशिक्षार्थियों को संगठन के नियमित कार्यों पर नियुक्त करके उन्हें उन कार्यों को सम्पन्न करने हेतु अनिवार्य निपुणताओं को सिखाया जाता है। प्रशिक्षार्थी योग्य कर्मचारियों अथवा प्रशिक्षकों के पर्यवेक्षण एवं निर्देशन में कार्य सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते है। कार्य पर प्रशिक्षण, वास्तविक कार्य–दशाओं में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करते है। कार्य पर प्रशिक्षण, वास्तविक कार्य–दशाओं में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान एवं अनुभवों को प्रदान करने में अत्यन्त उपयोगी होते हैं। प्रशिक्षार्थी, कार्य के विषय में सीखने के दौरान, नियमित रूप से संगठन के कर्मचारी भी होते हैं, जो कि अपनी सेवायें संगठन को देते हैं तथा जिसके लिए उन्हें संगठन द्वारा परिश्रमिक का भुगतान भी किया जाता है। इससे प्रशिक्षार्थियों के स्थानान्तरण की समस्या भी समाप्त हो जाती है, क्योंकि वे अपने कार्य पर ही प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते है। इन विधियों के अन्तर्गत कार्यों को किस प्रकार से सम्पादित किया जाये इसे सिखाने की अपेक्षा प्रशिक्षार्थियों की सेवाओं को अत्यधिक प्रभावपूर्ण रूप से प्राप्त करने पर अधिक बल दिया जाता है। कार्य पर प्रशिक्षण विधियों में सम्मिलित हैः

1. **कार्य परिवर्तन :** इस विधि के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थी का एक कार्य से दूसरे कार्य पर प्रतिस्थापन सम्मिलित होता है। प्रशिक्षार्थी, विभिन्न निर्दिष्ट कार्यों में से प्रत्येक में अपने पर्यवेक्षक अथवा प्रशिक्षक से कार्य का ज्ञान प्राप्त करता है। तथा अनुभवों को अर्जित करना है। यद्यपि, यह विधि प्रायः प्रबन्धकीय पदों के लिए प्रशिक्षण में सामान्य होती हैं परन्तु कर्मचारी– प्रशिक्षार्थियों को भी कार्यशाला कार्यों में एक कार्य से दूसरे कार्य पर परिवर्तित किया जा सकता है। यह विधि प्रशिक्षार्थी को दूसरे कार्यों पर नियुक्त कर्मचारियों की समस्याओं को समझने तथा उनका सम्मान करने का अवसर प्रदान करती है।

2. **कोचिगं** : इस विधि में प्रशिक्षार्थी को एक विशेष पर्यवेक्षक के अधीन नियुक्त कर दिया जाता है, जो कि उसके प्रशिक्षण में शिक्षक की भाँति कार्य करता है। पर्यवेक्षक प्रशिक्षार्थी को उसके कार्य–निष्पादन पर त्रुटियों एवं कमियों के विषय में बताता है तथा उसे उनके सुधार के लिए कुछ सुझावों को भी प्रस्तुत करता है। प्रायः इस विधि में प्रशिक्षार्थी, पर्यवेक्षक के कुछ कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों में भागीदार बनता है तथा उसे उसके कार्य–भार से कुछ मुक्ति प्रदान करता है। प्रशिक्षण की इस विधि में जो दोष होता है वह यह कि प्रशिक्षार्थी को कार्य सम्पन्न करने में किसी प्रकार की न तो स्वंतंत्रता होती है तथा न ही उसे अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता है।

3. **समूह निर्दिष्ट कार्य** : समूह निर्दिष्ट कार्य प्रशिक्षण विधि के अन्तर्गत, प्रशिक्षार्थियों के एक समूह को कोई वास्तविक संगठनात्मक समस्या दी जाती है। तथा उनसे उसका समाधान करने को कहा जाता है। प्रशिक्षार्थी संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते हैं। इस विधि से उनमें दलीय–भावना का विकास होता है।

5.13.2 कार्य से पृथ्क प्रशिक्षण विधियाँ

कार्य से पृथक प्रशिक्षण विधियों के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थियों को उनके कार्य की परिस्थितियों से अलग करके केवल उनके भावी कार्य निष्पादन से सम्बन्धित सीखने की विषय–वस्तु एवं सामग्री पर ही उनका ध्यान केन्द्रित करवाया जाता है। चूँकि इनमें प्रशिक्षार्थियों के कार्य से पृथक रहने से उनके कार्य की आवश्यकताओं द्वारा उनकी एकाग्रता भंग नहीं होती है, इसलिए वे अपना सारा ध्यान कार्य सम्पन्न करने में समय बिताने की अपेक्षा कार्य सीखने में लगा सकते है।

1. **वेस्टिब्यूल ट्रेनिंग** : इस विधि में प्रशिक्षण, कार्य स्थल से पृथक एक विशेष प्रशिक्षणशाला में प्रदान किया जाता है, जिसमें यन्त्र, उपकरण,कम्प्यूटर तथा अन्य साज–सामान आदि जो कि सामान्यतः वास्तविक कार्य निष्पादन में प्रयुक्त होते हैं, वे भी उपलब्ध होते हैं तथा जहाँ लगभग कार्य स्थल जैसा वातावरण स्थापित किया जाता है। सामान्यतः इस प्रकार का प्रशिक्षण लिपिकीय तथा अद्धकुशल कार्यों के कर्मचारियों के लिए प्रयोग किया जाता है। यह प्रशिक्षण कुशल पर्यवेक्षकों अथवा फोरमैन द्वारा प्रदान किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत सिद्धान्तों को अभ्यास के साथ सम्बद्ध करते हुए प्रशिक्षण दिया जा सकता है। जब प्रशिक्षार्थी अपना प्रशिक्षण पूर्ण कर लेते है तो उन्हें कार्य पर नियुक्त कर दिया जाता है।

2. **रोल प्लेइंग** : इस विधि को मानवीय अन्तःक्रिया की एक पद्धति के रूप में पारिभाषिति किया जा सकता है, जिसमें अधिकल्पित परिस्थितियों में वास्तवित व्यवहार सम्मिलित होता है। प्रशिक्षण की इस विधि में कार्य, क्रियाशीलता तथा अभ्यास सम्मिलित होते है। इसमे

प्रशिक्षार्थियों को विभिन्न पद काल्पनिक रूप से सौंपे जाते हैं तथा उन्हें उन पदों की भूमिकाओं का निर्वाह करने को कहा जाता है। उदाहरणार्थ, प्रशिक्षार्थियों में से किसी को विक्रय अधिकारी, किसी को क्रय पर्यवेक्षक तथा किसी को विक्रेता की भूमिका सौंपकर किसी संगठनात्मक समस्या को हल करने के लिए कहा जाता है। प्रशिक्षार्थियों द्वारा भूमिका निर्वाह के समय प्रशिक्षक उनका गम्भीरतापूर्वक अवलोकन करता है तथा बाद में उन्हें उनकी त्रुटियों एवं कमियों के विषय में जानकारी देता है, ताकि वे वास्तविक कार्य निष्पादन के समय उन्हें दूर कर सकें। इस विधि का अधिकतर प्रयोग अन्तवैंयक्तिक अन्तः क्रियाओं एवं सम्बन्धों के विकास के लिए किया जाता है।

3. व्याख्यान विधि : यह एक परम्परागत विधि है, जिसके अन्तर्गत एक अथवा अधिक प्रशिक्षक, प्रशिक्षार्थियों के समूह को व्याख्यान देकर किसी विषय–वस्तु के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करते हैं। प्रशिक्षक को व्याख्यान कला एवं विषय–वस्तु का अच्छा ज्ञान होता है। व्यख्यान को प्रभावशाली बनाने के लिए, प्रशिक्षर्थियों को अभिप्रेरित करना तथा उनमें रूचि उत्पन्न करना अनिवार्य होता है। व्याख्यान विधि का एक लाभ यह हैं कि यह एक प्रत्यक्ष विधि है, जिसे कि प्रशिक्षार्थियों के एक बड़े समूह के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अतः इससे समय एवं धन, दोनों की बचत होती है। इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि इसके द्वारा केवल सैद्धान्तिक ज्ञान की प्रदान किया जा सकता है, व्यवाहारिक ज्ञान नहीं ।

4. सम्मेलन अथवा विचार–विमर्श विधिः इस विधि के अन्तर्गत, सामूहिक विचार–विमर्श द्वारा सूचनाओं एवं विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है। इसके उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव से सभी को लाभान्वित करना होता है। इस विधि के अन्तर्गत भाग लेने वाले प्रशिक्षार्थी विभिन्न विषयों पर अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं, तथ्यों, विचारों एवं आँकडों का आदान–प्रदान एवं परीक्षण करते हैं, मान्यताओं की जाँच करते हैं, निष्कर्षों को निकालते है तथा परिणामस्वरूप कार्यों के निष्पादन में सुधार हेतु योगदान देते है।

4. प्रोग्राम्ड इन्स्ट्रक्शन : हाल ही के वर्षों में यह विधि काफी लोकप्रिय हुई है। इस विधि में जो भी विषय–वस्तु सिखायी जानी होती है, उसे सावधानीपूर्वक नियोजित कर क्रमिक इकाइयों के एक अनुक्रम में प्रस्तुत किया जाता है। ये इकाइयाँ अनुदेशक के सरल से जटिल स्तर की ओर व्यवस्थित की गयी होती हैं। इन इकाइयों को प्रशिक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर देकर अथवा रिक्त स्थानों को भरकर पर करते है। तथा आगे बढ़ जाते हैं। इस विधि का प्रमुख लाभ यह हैं कि प्रशिक्षार्थी अपने सीखने का समायोजन अपनी सुविधानुसार किसी भी स्थान पर कर सकते है। आज सांख्यिकी विज्ञान एवं कम्प्यूटर के क्षेत्र में अनेक

प्रोग्राम्ड बुक उपलब्ध हैं। यह विधि समय एवं धन के हिसाब से खर्चीली होता है।

5.14 प्रशिक्षण की प्रक्रिया

प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा संगठनों के कर्मचारियों के ज्ञान, निपुणताओं तथा रूचियों में वृद्धि की जाती है। विभिन्न संगठनों की परिवर्तित आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कर्मचारियों के लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायें। एक आदर्श प्रशिक्षण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण चरण निम्नलिखित प्रकार से है–

1. प्रशिक्षण आवश्यकताओं की निर्धारणः प्रशिक्षण प्रक्रिया चरण में प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है। प्रशिक्षण आवश्यकताओं की निर्धारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण होता है, क्योंकि इसी के आधार पर ही प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रशिक्षण की विधियों तथा प्रशिक्षण की विषय–वस्तु को निर्धारित किया जाता है। प्रशिक्षण आवश्यकताओं का निर्धारण निम्नलिखित प्रकार के विश्लेषणों के माध्यम से किया जा सकता है।

(i) संगठनात्मक विश्लेषणः इसमें संगठन के उद्देश्य, विभिन्न क्षेत्रों में संगठनात्मक वातावरण का गहन अवलोकन जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में संगठनात्मक क्षमताओं एवं कमजोरियों, जैसे– दुर्घटनाओ, बार–बार यन्त्रों की टूट–फूट, अत्याधिक कर्मचारी–परिवर्तन बाजार अंश एवं बाजार सम्बन्धी अन्य क्षेत्रों, उत्पादन की गुणवत्ता एवं मात्रा उत्पादन–सारणी, कच्चा माल तथा वित्त आदि का विश्लेषण सम्मिलित है।

(ii) विभागीय विश्लेषणः इसमें विभिन्न विभागों की विशेष समस्याओं अथवा उन विभागों के कर्मचारियों के एक समूह की सामान्य समस्या, जैसे–ज्ञान एवं निपुणताओं को प्राप्त करने की समस्या सहित, विभिन्न विभागीय क्षमताओं एवं कमजोरियों आदि का विश्लेषण सम्मिलित है।

(iii) कार्य एवं भूमिका विश्लेषणः इसमे विभिन्न कार्यों एवं उनकी भूमिकाओं, परिवर्तनों के परिणामस्वरूप किये गये कार्य अभिकल्पों, कार्य–विस्तार तथा कार्य समृद्धिकरण आदि का विश्लेषण सम्मिलित है।

(iv) मानवीय संसाधन विश्लेषण : इसमें कार्यों के ज्ञान एवं निपुणताओं के क्षेत्रों में संगठन के कर्मचारियों की क्षमताओं एवं कमजोरियों का विश्लेषण सम्मिलित है।

2. प्रशिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारणः प्रशिक्षण की प्रक्रिया का अगला चरण इसके उद्देश्य का निर्धारण करना होता है एक बार प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण कर लेने से इसके उद्देश्यों को इंगित करना सरल हो जाता है। प्रशिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण अत्यन्त ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए क्योंकि सम्पूर्ण प्रशिक्षण की सफलता इसके उद्देश्यों द्वारा ही निर्देशित होती है।

3. प्रशिक्षण कार्यक्रम का संगठनः प्रशिक्षण आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों का निर्धारण हो जाने के पश्चात् अगला चरण प्रशिक्षण कार्यक्रम का संगठन अथवा नियोजन करना होता है। यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण चरण होता है। क्योंकि इसके द्वारा सम्पूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाती है। इसके अन्तर्गत संगठन का प्रबन्धतन्त्र विचार–विमर्श के द्वारा इन बातों के विषय में निर्णय करता है किः

(1) किन–किन कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाना है।
(2) प्रशिक्षण की विषय–वस्तु क्या होगी ।
(3) किन–किन विधियों द्वारा प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा।
(4) प्रशिक्षण का समय, अवधि एवं स्थान क्या होगा।
(5) कौन–कौन से व्यक्ति प्रशिक्षक होंगे, आदि।

5.15 प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्याकंन

प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तिम चरण में उसका मूल्यांकन किया जाता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन प्रशिक्षण के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होता है। इसमें प्रशिक्षण की आवश्यकता एवं उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षण कार्यक्रम के परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तथा यह ज्ञात किया जाता है। कि प्रशिक्षण कार्यक्रम कितना सफल रहा है। साथ ही प्रशिक्षण के पश्चात् संगठन के उत्पादन, अनुपस्थितता, कर्मचारी–परिवर्तन, दुर्घटनाओं तथा कर्मचारी मनोबल आदि पर पड़ने वाले प्रभाव का भी मूल्यांकन किया जाता हैं।

5.16 सार संक्षेप

किसी भी संगठन की कुशलता प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि उसके कर्मचारी कितनी अच्छी तरह से प्रशिक्षित है। सामान्यतः नव–नियुक्त कर्मचारियों के लिए उनके द्वारा कार्यों का उत्तरदायित्व लेने से पूर्व पर्याप्त प्रशिक्षण आवश्यक होता है। पुराने कर्मचारियों को भी पदोन्नति एवं स्थानान्तरण हेतु तैयार होने के लिए उनके कार्य की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहने हेतु प्रशिक्षण आवश्यक होता है। मानवीय संसाधनों के प्रशिक्षण का मूलभूत उद्देश्य ज्ञान, निपुणताओं, आदतों एवं मनोवृतियों का विकास करना है, जो कि व्यक्ति तथा संगठन दोनों में वृद्धि में योगदान देता है। इसके साथ ही, कर्मचारियों द्वारा यंत्रों का संचालन करने वस्तुओं एवं पदार्थों के दुरूपयोग को कम करने तथा दुर्घटनाओं से दूर रहने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना अनिवार्य होता है। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण कर्मचारियों को अधिक परिश्रम से कार्य करने हेतु अभिप्रेरित भी करता है।

5.17 अभ्यास प्रश्न

1. प्रशिक्षण का अर्थ एवं दो परिभाषा लिखिये।
2. प्रशिक्षण की विशेषताओं को लिखिये।
3. प्रशिक्षण एवं शिक्षा का महत्व समझाइये।
4. प्रशिक्षण एवं विकास पर टिप्पणी कीजिये।
5. प्रशिक्षण के उद्देश्यों को समझाइये।
6. प्रशिक्षण की आवश्यकता की व्याख्या कीजिये।
7. प्रशिक्षण के क्षेत्र को समझाइये।
8. प्रशिक्षण के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिय।
9. विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण स्तर का विवरण प्रस्तुत कीजिये।
10. प्रशिक्षण के प्रकारों की व्याख्या कीजिये।
11. प्रशिक्षण की विधियाँ क्या हैं ?
12. प्रशिक्षण की प्रक्रिया को समझाइये।
13. प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्याकंन कीजिये।

5.18 पारिभाषिक शब्दावली

प्रशिक्षण कार्यक्रम	Training Programme	मनोवृत्ति	Attitude
अभिप्रेरित	Motivation	प्रशिक्षण	Training
सिद्धान्त	Theories	कार्य परिवर्तन	Transfer

5.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अस्वाथप्पा, के., फैक्ट्री आर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुम्बई, 1990
- गर्ग, अजय लेबर लॉज,नाभी पब्लिकेशन्स, न्यू डेल्ही, 1998
- पन्त, एस.सी.,इण्डियन लेबर प्रोब्लेम्स, चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1976
- गिसलर, एडविन बीत्र मैनपॉवर प्लानिंगः ऐन इमरजिंग', पर्सनेल, सितम्बर, 1990
- गेलरमैन, एस. डब्ल्यू मोटिवेशन एण्ड प्रोडक्टिविटी, न्यूयार्क, ए. एम. ए, 1963
- सिंह, सुरेन्द्र, भारतीय औद्योगिक श्रम, अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., लखनऊ।
- सुब्रामण्यम, के, एन, वेजेज इन इण्या टाटा मैक्ग्राहिल, न्यू डेल्ही, 1979।
- हेन्डरसन, रिचर्ड आई. परफॉरमेन्स ऐप्रेजल, फोर्थ एडीशन, रेस्टन पब्लिशिंग कं., रेस्टन वा., 1982।

इकाई–6

प्रबन्ध विकास

Management Development

इकाई की रूपरेखा

6.1 परिचय
6.2 उद्देश्य
6.3 प्रबन्ध विकास की अवधारणा
6.4 प्रबन्ध विकास की आवश्यकता
6.5 विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के लिए प्रबन्ध विकास कार्यक्रम की विषय–वस्तु
6.6 प्रबन्ध विकास की विधियॉ
6.6.1 कार्य पर प्रयुक्त विधियाँ
6.6.2 कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ
6.7 कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ
6.8 प्रबन्ध विकास की प्रक्रिया
6.9 प्रबन्ध विकास के क्षेत्र
6.10 सार संक्षेप
6.11 अभ्यास प्रश्न
6.12 पारिभाषिक शब्दावली
6.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 परिचय

किसी भी संगठन की सफलता में उसके प्रबन्धक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होते है। सक्षम प्रबन्धकों की पर्याप्त संख्या के बिना, कोई भी संगठन दूसरे मूल्यवान संसाधनों जैसे–पूँजी, प्रौद्योगिकी एवं अन्य के होते हुए भी, विशिष्टता का स्थान ग्रहण करने की अपेक्षा नहीं कर सकता है। प्रत्येक संगठन में ये प्रबन्धक ही होते हैं, जो कि संसाधनों एवं क्रियाकलापों का नियोजन संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण करते है। समय–समय पर, प्रबन्ध प्रतिभाओं के विकास के महत्व को मान्यता प्रदान किये जाने से, इन दिनों अधिकतर संगठन प्रबन्ध विकास पर अत्याधिक ध्यान देने लगे हैं।

जिस तीव्र गति से देश प्रगति एवं विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। परिणामस्वरूप विभिन्न व्यावसायिक जटिलतायें दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। कुशल

प्रबन्धक ही संगठनों को समयानुकूल निश्चित गति प्रदान कर सकते है आने वाले समय में, जबकि व्यावसायिक वातावरण और भी अधिक गतिशील एवं जटिल हो जायेगा, तब प्रबन्धकों का महत्व भी उत्तरोत्तर बढ़ जायेगा। इसके अतिरिक्त, आधुनिक प्रबन्धक की महत्वपूर्ण धारणा यह है कि' प्रबन्धक जन्मजात नहीं होते बल्कि विकसित किये जाते है।'

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेगें:–

- प्रबन्ध विकास की अवधारणा
- प्रबन्ध विकास की आवश्यकता
- विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के लिए प्रबन्ध विकास कार्यक्रम की विषय–वस्तु
- प्रबन्ध विकास की विधियॉ
- कार्य पर प्रयुक्त विधियाँ
- कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ
- कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ
- प्रबन्ध विकास की प्रक्रिया
- प्रबन्ध विकास के क्षेत्र

6.3 प्रबन्ध विकास की अवधारणा

प्रबन्ध विकास, वृद्धि एंव विकास की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रबन्धक अपनी प्रबन्ध करने की योग्यताओं का विकास करत है। यह केवल शिक्षण के औपचारिक पाठ्यक्रम में सहभागिता का ही नहीं,बल्कि वास्तविक कार्य अनुभव का भी परिणाम होता है।प्रबन्ध विकास में संगठन की भूमिका, इसके वर्तमान तथा सम्भावित प्रबन्धकों के लिए कार्यक्रमों का आयोजन तथा विकास के अवसर प्रदान करने की होती है। प्रबन्ध विकास के विषय में कुछ प्रमुख निम्नलिखित प्रकार है:

1. एच. कून्ट्ज एवं सीत्र ओ' के अनुसार , ''प्रबन्ध विकास एक प्रबन्धक द्वारा प्रबन्ध करने का ज्ञान करने में प्रगति से सम्बधित होता है।''

2. माइकल जे. जूसियस के अनुसार, ''प्रबन्ध विकास एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसके द्वारा वांक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रबन्धकों की क्षमताओं में अभिवृद्धि की जाती है''। प्रबन्ध विकास कार्यक्रम के उद्देश्य: प्रबन्ध कार्यक्रम, जिन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए आयोजित किये जाते है वे निम्नलिखित प्रकार से है:

1. संगठन की विद्यमान प्रबन्ध व्यवस्था का जीर्णोद्वार करना।

2. प्रबन्ध समूह के सदस्यों की परिवर्तनशीलता में वृद्धि करना।
3. संगठन की गतिविधियों के सम्पूर्ण परिदृश्य के विषय में प्रबन्धकों को अवगत कराना तथा उन्हें एक–दूसरे के साथ समन्वयं स्थापित करने के लिए सक्रिय प्रयास करने हेतु सहायता प्रदान करना।
4. प्रबन्धकों को सामाजिक, आर्थिक तथा तकनीकी क्षेत्रों से सम्बन्धित अवधारणात्मक पहलुओं का ज्ञान प्रदान करना।
5. प्रबन्धकों को मानवीय सम्बन्धों की समस्याओं को समझने में सहायता प्रदान करना तथा उनकी मानवीय सम्बन्धों की निपुणताओं को सुधारना।
6. प्रबन्ध समूह के सदस्यों के मनोबल को उच्च करना।
7. अपेक्षित अन्तः शाक्तियों से युक्त लोगों की पहचान करना तथा उन्हें वरिष्ठ पदों के लिए तैयार करना।
8. प्रबन्ध उत्तराधिकार की ऐसी व्यवस्था स्थापित करना, जिससे कि संगठन में योग्य एवं अनुभवी प्रबन्धकों का कभी भी अभाव न उत्पन्न होने पाये।

6.4 प्रबन्ध विकास की आवश्यकता

प्रबन्ध विकास की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से अनुभव की जाती हैः

1. **सामान्यतः** प्रबन्धकों को संगठनात्मक संरचना, संगठन की संस्कृति, उसके आर्थिक एवं विपणन सम्बन्धी पक्षो, सामाजिक प्रणालियों, औद्योगिक परिवेश, उद्योग एवं वाणिज्य पर प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रभावों मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक जटिलताओं, श्रम आन्दोलनों, औद्योगिक प्रबन्ध विषयक मामलों में राज्य के हस्तक्षेप के क्षेत्रों तथा मानवीय एवं प्रजातात्रिक दृष्टिकोणों आदि के विषय में विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है, जिसकी प्राप्ति प्रबन्ध विकास कार्यक्रम के द्वारा ही हो सकती है।

2. प्रबन्धकों को अपने उत्तरदायित्वों के कुशलतापूर्वक निर्वहन हेतु कुछ विशिष्ट निपुणताओं की भी अपेक्षा होती है। इसके अतिरिक्त आज के प्रबन्धकों में ऐसी योग्यताओं एवं निपुणताओं का होना भी अत्यन्त आवश्यक है, जो कि प्राचीन एवं नवीन मूल्यों, भौतिकवाद एवं मानवतावाद तथा प्राविधिक एवं सांस्कृतिक अनिवार्यताओं के मध्य सन्तुलन स्थापित कर सके। इन सभी निपुणतओं की प्राप्ति प्रबन्ध विकास कार्यक्रमों के द्वारा ही हो सकती है।

3. प्रबन्धक अपने संगठन के नेता होते हैं। उन्हीं के नेतृत्व में चलकर कर्मचारी संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होते हैं। यद्यपि, नेतृत्व के गुण की प्राप्ति प्रशिक्षण के द्वारा पूर्ण रूप से सम्भव नहीं है, फिर भी प्रबन्ध विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अभ्यास एवं अनुभव प्रदान किये जाने के द्वारा इसकी काफी हद तक प्राप्ति होती है।

4. प्रबन्धन, एक विचारशीलता की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में नवीन लक्ष्यों एवं मूल्यों का सदैव ध्यान रखना पड़ता है। वर्तमान प्रबन्धन के लिए रचनात्मक क्रियाओं का अत्यधिक महत्व होता है। इसलिए प्रबन्धकों में प्रत्येक स्तर पर रचनात्मक कार्य करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, नवीन सामाजिक, आर्थिक, प्रौद्योगिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में उन्हें अपने दृष्टिकोणों एवं मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन लाना अनिवार्य हो गया है।

6.5 प्रबन्ध विकास के क्षेत्र

सामान्यत; प्रबन्ध विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत क्षेत्र के रूप में निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया जाता है।

1. संगठनात्मक सूचनायें : इसके अन्तर्गत संगठन के उद्देश्य, नीतियाँ, संगठनात्मक संरचना, प्रक्रियायें, गतिविधियाँ, उत्पाद एवं सेवायें, संयन्त्र व्यवस्था, वित्तीय पहलू, जैसे– पूँजी एवं बजट, विनियोग, नियोजन एवं नियन्त्रण तथा कर्मचारी–प्रबन्ध सम्बन्ध आदि सम्मिलित होते हैं।

2. प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं तकनीकें: इसमें संगठन के सिद्धान्त, प्रबन्ध तकनीकें, वित्तीय तकनीकें, उत्पादन योजना एवं नियन्त्रण, विधि–विश्लेषण, कार्य–आबंटन, कार्य अध्ययन, लागत विश्लेषण एवं नियन्त्रण, सांख्यिकी, प्रबन्धकीय सम्प्रेषण, कम्प्यूटर प्रणाली, क्रियात्मक अनुसंधान विपणन प्रबन्ध एवं अनुसंधान तथा निर्णयन आदि सम्मिलित होते हैं।

3. मानवीय सम्बन्ध: इसकें अन्तर्गत मानवीय व्यवहार की समझ, अभिप्रेरण, समूह गतिविधियाँ, अधिकार, विचार, धारणायें प्रशिक्षण एवं विकास, नेतृत्व उत्तरदायित्व, भर्ती प्रक्रियायें एवं चयन प्रणालियाँ, कार्य एवं निष्पादन मूल्यांकन, सम्प्रेषण, सलाह एवं सुझाव योजनायें, शिकायतें एवं परिवेदना निवारण पद्धति, अनुशासनात्मक प्रक्रिया, श्रम अर्थशास्त्र, सामूहिक सौदेबाजी तथा औद्योगिक सम्बन्ध आदि सम्मिलित होते हैं।

4. तकनीकी ज्ञान एवं निपुणतायें: इसमें कार्य संचालन तकनीक, क्रिया, शोध, कम्प्यूटर तकनीक, आधारभूत गणित, साधन–नियन्त्रण तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नवीन तकनीक आदि सम्मिलित होते हैं।

5. सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण : इसके अन्तर्गत व्यवसाय का ज्ञान, आर्थिक प्रणाली, सरकार–उद्योग सम्बन्ध, उद्योगों के सामुदायिक सम्बन्ध, उद्योगों के सामाजिक उत्तरदायित्व तथा राजनीतिक प्रणाली आदि सम्मिलित होते हैं।

6. मानवीय निपुणतायें: इसमें भाषण, प्रतिवेदन–लेखन, सम्मेलन–नेतृत्व तथा दैनिक–कार्य संचालन आदि सम्मिलित होते हैं।

6.6 विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के लिए प्रबन्ध विकास कार्यक्रम की विषय–वस्तु

विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के लिए प्रबन्ध विकास कार्यक्रम की विषय–वस्तु एक समान नहीं हो सकती है। प्रबन्ध विकास कार्यक्रम का प्रारूप प्रबन्धकों के स्तर, उनकी योग्यताओं तथा उनके कार्य–क्षेत्र आदि पर निर्भर करता है। इनको ध्यान में रखते हुए ही विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के लिए विकास कार्यक्रमों को निर्धारण किया जाना उपयुक्त होता है। प्रबन्ध विकास कार्यक्रम को प्रभावी बनाने हेतु प्रबन्धकों के तीन प्रमुख स्तरों से सम्बन्धित कार्यक्रमों की विषय–वस्तु निम्नलिखित प्रकास से हैः

1. उच्च स्तरीय प्रबन्धकों के लिएः इस स्तर के प्रबन्धकों के लिए विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अर्थशास्त्र, वित्त, संगठन के सिद्धान्त, नीति निर्धारण, प्रशासकीय नियन्त्रण, व्यवसाय के क्रियाकलाप, व्यवसास के सामाजिक उत्तरदायित्व, मानवीय सम्बन्ध तथा श्रम–सम्बन्ध आदि विषय सम्मिलित किये जाते हैं।

2.मध्य स्तरीय प्रबन्धकों के लिएः मध्य स्तरीय प्रबन्धकों के लिए तकनीकी एवं प्रबन्धकीय ज्ञान आवश्यक होता है। इसलिए उनके विकास कार्यक्रम में उत्पादन योजना एवं नियंत्रण, मजदूरी एवं वेतन सम्बन्धी समस्यायें, मानवीय सम्बन्ध, नेतृत्व, अभिप्रेरण, कार्य संचालन तथा लागत–विश्लेषण आदि से सम्बन्धित समस्यायें सम्मिलित की जाती है।

3. अवर स्तरीय प्रबन्धकों के लिए : इस स्तर के प्रबन्धकाो के लिए विकास कार्यक्रम व्यवसाय क्रियाओं मानवीय सम्बन्धों, उत्पादन नीति तथा मानवीय निपुणताओं आदि विषयों तक ही सीमित रहते हैं, क्योंकि उन्हें अपेक्षाकृत कम प्रशासकीय कार्य करना होता है। चूँकि, इनका कार्य मूल रूप से अधीनस्थ कर्मचारियों से निर्धारित नीतियों के अनुरूप कार्य करवाना होता है, इसलिए इनके विकास कार्यक्रम का स्वरूप अन्य स्तरों के प्रबन्धकों की अपेक्षा सीमित होता है।

6.7 प्रबन्ध विकास की विधियाँ

प्रबन्ध विकास की विधियों को प्रमुख रूप ये दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जिनके द्वारा किसी संगठन के प्रबन्धक ज्ञान, निपुणतायें एवं मनोवृत्तियों को अर्जित करते हैं तथा स्वयं को सक्षम प्रबन्धकों के रूप में स्थापित करते हैं इन विधियों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से हैः

- कार्य पर प्रयुक्त विधियाँ
- कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ

6.7.1 कार्य पर प्रयुक्त विधियाँ

इन विधियों के अन्तर्गत, प्रशिक्षार्थियों को नियमित कार्यों पर नियुक्त करके उचित मार्गदर्शन, पर्यवेक्षण एवं परामर्श के द्वारा कार्य की बारीकियों एवं प्रणालियों के विषय में

व्यापक जानकारी प्रदान करते हुए उन्हें दक्ष बनाया जाता है। कार्य के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी केवल सुनने अथवा अवलोकन करने अथवा पुस्तकों एवं पाठ्य–सामग्री का अध्ययन करने से ही प्राप्त नहीं हो सकती है, बल्कि इसके लिए वास्तव में कार्य सम्पादन का अनुभव भी आवश्यक है। कार्य के वास्तविक अभ्यास के द्वारा कार्य सम्बन्धी व्यावहारिक कठिनाइयों की जानकारी तथा उन्हें दूर करने के उपायों के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। यही कारण है कि प्रबन्ध विकास के प्रत्येक कार्यक्रम में कार्य पर प्रयुक्त विधियों को व्यवस्था की जाती है। कार्य पर प्रयुक्त होने वाली कुछ प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैः

1. कोचिंग : इस विधि के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थी को उसके वरिष्ठ अधिकारी के अधीन नियुक्त कर दिया जाता है, जो एक प्रशिक्षक के रूप में कार्य करता है तथा प्रशिक्षार्थी को कार्य सम्बन्धों ज्ञान एवं निपुणतायें सिखाता है। वह प्रशिक्षार्थी को यह स्पष्ट करता है कि वह उससे क्या करने की अपेक्षा करता है तथा वह कार्य किस प्रकार सम्पादित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वह प्रशिक्षार्थी द्वारा काय्र सम्पादित करने के दौरान उसका अवलोकन भी करता है। इसका उद्देश्य अध्यापक ही नहीं, बल्कि प्रशिक्षार्थी को इस प्रकार कार्य से परिचित कराना होता है कि वह शीघ्र ही उस विशिष्ट क्षेत्र में विकास कर सके।

2. कार्य चक्रानुक्रमण : इस विधि में प्रबन्धकों का एक पद से दूसरे पद तथा एक विभाग से दूसरे विभाग में व्यविस्थत ढंग से स्थानान्तरित किया जाता है जब किसी प्रबन्धक हो इस प्रकार के एक कार्यक्रम में भाग के रूप में नये पद पर नियुक्त किया जता है, तो यह केवल एक कार्य–परिचय नहीं होता है। उसे उस पद का पूर्ण उत्तरदायित्व ग्रहण करना होता है। तथा उसके सभी प्रकार के कर्तव्यों का निर्वाह करना होता है इसका उद्देश्य उनके प्रबन्धकीय अनुभव में वृद्धि करना तथा उसनकी सामान्य पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करना होता है। इस विधि से प्रबन्धकों को विभिन्न पदों एवं विभागो का कार्यकारी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उनमें प्रबन्धकीय परिपक्वता विकसित होती है। उनका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है तथा उनमें प्रबन्धन की बहुआयामी समस्याओं को हल करने की योग्यता का विकास होता है।

3. बहुपद प्रबन्धन : इस विधि में दो प्रबन्ध मण्डलों का गठन किया जाता है, एक कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल तथा दूसर वरिष्ठ प्रबन्ध मण्डल कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल में मध्य एवं अवर स्तरीय प्रबन्धक तथा वरिष्ठ प्रबन्ध मण्डल में उच्च स्तरीय प्रबन्धक सम्मिलित होते हैं। कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल, संगठन एवं कार्य सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करके वरिष्ठ प्रबन्ध मण्डन को अपने सुझाव भेजता है। वरिष्ठ प्रबन्ध मण्डल उन सुझावों पर विचार करके अन्तिम निर्णय लेता है। कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल में प्रबन्धकों का चयन एक निश्चित समयावधि के लिए ही किया जाता है तथा तत्पश्चात् उसके स्थान पर दूसरे प्रबन्धकों का चयन किया जाता है। इस प्रकार कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल के सदस्य समस्याओं के अध्ययन विश्लेषण, समाधान तथा निर्णयन में दक्षता प्राप्त करते रहते हैं।

6.7.2 कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ

कार्य पर प्रयुक्त विधियों के माध्यम से प्रबन्धकों द्वारा प्राप्त किया गया विकास सदैव ही पर्याप्त नहीं हो सकता है। ऐसे अनेक पहलू शेष रह सकते हैं जिनके ज्ञान के बिना प्रबन्धकों का पूर्ण विकास नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन विधियों के कुछ अपने दोष भी होते हैं इसी कारण से, कार्य से पृथक प्रयुकत विधियों का उपयोग किया जाता है। इन विधियों के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थियों को कार्य से पृथक कुशल प्रशिक्षकों की देख रेख में एक पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार विकसित किया जाता हैं ऐसी कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ इस प्रकार से हैः

1. **केस स्टडी :** इस विधि के अन्तर्गत वास्तविक व्यावसायिक समस्याओं अथवा परिस्थितियों के आधार पर केस को तैयार किया जाता है, जो कि विभिन्न संगठनों में घटित होती है। इस केस को प्रशिक्षार्थियों के समूह के सम्मुख विचार–विमर्श करने तथा उसके विषय में किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए रखा जाता है। प्रशिक्षार्थी केस के विषय में विचार–विमर्श करते हैं, उसके समाधान के लिए विकल्पों को प्रस्तुत करते है, उसका विश्लेषण करते हैं, उनकी तुलनात्मक उपयुक्तता का निर्धारण करते है, तथा अन्ततः सर्वसम्मति से श्रेष्ठ विकल्प के सम्बन्ध में निर्णय करते है। इसमें प्रशिक्षक विचार–विमर्श का निर्देशन करता है जिससे कि कोई असंगतता न उत्पन्न हो तथा कोई महत्वपूर्ण बिन्दु विचार–विमर्श से छूटने न पाये। यह विधि प्रशिक्षार्थियों में विश्लेषणात्मक चिन्तन तथा समस्या समाधान की योग्यता को विकसित करती है। साथ ही यह खुले चिन्तन, सकारात्मक दृष्टिकोण धैर्यपूर्वक सुनने दूसरों के दृष्टिकोण के प्रति सम्मान तथा विभिन्न विषयों के ज्ञान के एकीकरण पर बल देती है।

2. **घटना विधि :** यह विधि 'केस स्टडी' का एक भिन्न रूप है। इस विधि में विशेषज्ञ प्रशिक्षक, प्रशिक्षार्थी को किसी घटना का विवरण देता हैं तथा उससे यह घटना से सम्बन्धित एक समस्या का हल पूछता हैं प्रशिक्षार्थी उस घटना के तथ्यों के आधार पर समस्या का समाधान करने का प्रयास करता हैं इसके पश्चात् प्रशिक्षक स्वयं भी उस समस्या का हल प्रस्तुत करता है। प्रशिक्षार्थी, प्रशिक्षक के समाधान के आधार पर अपने समाधान का मूल्यांकन करके अपनी त्रुटियों को दूर कर लेता है। इसका उद्देश्य विशिष्ट परिस्थितियों में प्रबन्धकीय योग्यता एवं व्यावहारिक निर्णय क्षमता का विकास करना होता है।

3. **भूमिका निर्वाह विधि :** इस विधि के अन्तर्गत प्रबन्ध प्रशिक्षार्थी को एक निर्धारित भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इसमें उन्हें एक विशिष्ट प्रकार का कार्य सौंपा जाता है। मानवीय सम्बन्धों के प्रति प्रयोगात्मक जानकारी दी जाती हैं तथा

विभिन्न परिस्थितियों को अपने स्तर पर समझने, समस्याओं का निवारण करने तथा निर्णय करने का अवसर प्रदान किया जाता है। प्रबन्धकीय भूमिका निर्वाह के अन्तर्गत कर्मचारी चयन, परिवेदना निवारण, अभ्यर्थियों का साक्षात्कार करना तथा कर्मचारियों का निर्देशन एवं अभिप्रेरण आदि कार्य हो सकते हैं।

4. **इन–बास्केट विधि** :यह विधि प्रबन्धकीय तथा निर्णय करने की निपुणताओं का विकसित करने के लिए प्रयोग की जाती है। इसमें प्रशिक्षार्थी को संगठन के विषय में आधारभूत सूचनायें एवं सामग्री उपलब्ध करा दी जाती हैं यह सूचनायें संगठन, इसके उत्पादों अथवा सेवाओं कर्मचारियों तथा संगठनात्मक संरचना से सम्बन्धित होती हैं। इसके पश्चात् प्रशिक्षार्थी को अनेक प्रशासनिक कार्य, जैसे– स्मरण–पत्र तैयार करना, टिप्पणी बनाना, कार्यों का प्रत्योजन करना, सभायें बुलानर पत्रों का उत्तर देना तथा अन्य प्रशासनिक कार्यों को निपटाना आदि करने होते हैं तथा साथ ही विभिन्न निर्णय लेने होते हैं। इस विधि के द्वारा जिन योग्यताओं का विकास किया जाता है, वे हैं: (i) परिस्थितिगत निर्णय लेना, जिसमें विवरण एवं प्राथमिकतायें निर्धारित करना, विभिन्न कार्यों में अर्न्तसम्बन्ध स्थापित करना तथा सूचनाओं की आवश्यकता का निर्धारण करना सम्मिलित है;

(ii) सामाजिक संवेदनशीलता

(iii) निर्णय लेना एवं उसे कार्यान्वित करना

5. **सम्मेलन विधि :** सम्मेलन विधि में सामूहिक विचार–विमर्श के द्वारा सूचनाओं एवं विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है। इसका उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव से सभी को लाभान्वित करना होता है। इसमे विभिन्न विषयों पर आपसी विचार–विमर्श के द्वारा सीखने पर बल दिया जाता है। सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रशिक्षार्थी अपने विचारों, ज्ञान एवं दृष्टिकोणों को प्रकट करने के लिए स्वतंत्र होते हैं इसमें प्रशिक्षार्थी केवल सुनने वाले नहीं होते हैं, बल्कि विचार विमर्श में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

6. **व्याख्यान विधि :** यह अत्यन्त ही प्राचीन विधि है। इस विधि के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ प्रशिक्षार्थियों के एक समूह को व्याख्यान देकर किसी विषय अथवा विषयों का सैद्धान्तिक ज्ञान करवाते है। विशेषज्ञ, जो कि प्रशिक्षक होते है, उन्हे व्याख्यान कला एवं विषय–वस्तु का अच्छा ज्ञान होता है। कई बार व्याख्यान का सार–संक्षेप अथवा उसके मूल बिन्दुओं को लिखित रूप में श्रोताओं को पहले से ही उपलब्ध करवा दिया जाता हैं व्याख्यान के मध्य में कभी–कभी चित्रों एवं आरेखों के प्रदर्शन द्वारा भी समझाने का प्रयास किया जाता है।

6.8 प्रबन्ध विकास की प्रक्रिया

एक आदर्श प्रबन्ध विकस प्रक्रिया के महत्वपूर्ण चरणों का विवरण निम्नलिखित प्रकार से हैं:

1. **विकास की आवश्यकता का विश्लेषण :** प्रबन्ध विकास प्रक्रिया चरण विकास की आवश्यकता का विश्लेषण करना है। इसके अन्तर्गत संगठनात्मक संरचना का अध्ययन कर यह ज्ञात किया जाता है। कि समस्त कार्य भली भाँति किये जा रहे हैं अथवा नहीं। इसके साथ ही भावी औद्योगिक विकास नीति उत्पादन तकनीकों तथा संगठन के सम्भावित आकार आदि के विषय में पूर्वानुमान लगाया जाता है। इसके पश्चात् एक वृहदृस्तरीय कार्य–विवरण, काग्र विशिष्टता तथा कार्य विश्लेषण तैयार किया जाता हैं, जो कि व्यवस्था तथा प्रत्येक कार्य के सम्पादन के लिए आवश्यक शैक्षिक योग्यता, अनुभव प्रशिक्षण तथा विशिष्ट ज्ञान एवं तकनीक आदि की जानकारी प्रदान कर सके।

2. **वर्तमान प्रबन्ध प्रतिभाओं का मूल्यांकनः** प्रबन्ध विकास प्रक्रिया का दूसरा संगठन में कार्यरत प्रबन्धकों की कार्यक्षमताओं एवं कार्य–निष्पादन का मूल्यांकन करना है। इसमें प्रत्येक उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ प्रबन्धकों का मूल्यांकन करता है। वह उनके कार्य–निष्पादन का निर्वचन करता है, उनके कार्य की तुलना पूर्व निर्धारित मानकों से करता है तथा उनकी विकास करने की क्षमताओं का अनुमान भी लगाता है।

3. **प्रबन्धकों की सूची का निर्माणः** प्रबन्ध विकास प्रक्रिया के इस चरण में प्रत्येक प्रबन्धक के विषय में विस्तृत जानकारी जैसे– नाम, आयु, लिंग, शैक्षिक योग्यता, प्रशिक्षण, पूर्व का कार्य अनुभव, वर्तमान कार्य अनुभव, स्वास्थ्य, मनोवैज्ञानिक एवं अन्य लिखित परीक्षणों के परिणाम तथा निष्पादन मूल्यांकन के आँकड़े आदि के साथ सूची का निर्माण किया जाता है। यह सूचनायें सामान्यतः व्यक्तिगत काडों पर तैयार की जाती है।

4. **व्यक्तिगत विकास कार्यक्रमों का नियोजनः** इस चरण में व्यक्तिगत विकास कार्यक्रमों को नियोजन किया जाता है। चूँकि, प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, मानसिक एवं शारीरिक स्थिति तथा भावात्मक गुण दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः, प्रत्येक प्रबन्धक के कार्य–व्यवहार का गहन, अध्ययन करना आवश्यक होता है। इसके साथ, यह भी ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। कि व्यक्ति विशेष की त्रुटियाँ अथवा कमियाँ क्या–क्या हैं? इसके पश्चात् ही उनके अनुकूल विकास कार्यक्रम निर्धारित किया जाता हैं इस प्रकार प्रबन्ध के विकास के लिए उनकी आवश्यकताओं तथा संगठन में उपलब्ध सुविधाओं के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है।

5. **विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयनः** विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व मानव संसाधन विभाग पर होता हैं। मानव संसाधन विभाग को विभिन्न प्रबन्धकों के ज्ञान एवं निपुणताओं के विद्यमान स्तरों की पहचान करते हुए उनकी सम्बन्धित कार्य अपेक्षाओं के साथ तुलना करनी होती है। इसके साथ ही वह विकासात्मक आवश्यकताओं की पहचान करता है तथा उसके आधार पर ही सुस्थापित विशिष्ट विकास कार्यक्रमों, जैसे– बिजनेस गेम्स, संवेदनशीलता विकास तथा व्याख्यान आदि को संचालित करता है।

6. **विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकनः** प्रबन्ध विकास प्रक्रिया का अन्तिम चरण विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना होता है। यह ज्ञात करना अत्यन्त आवश्यक है। कि प्रबन्ध विकास कार्यक्रमों का वास्तव में क्या परिणाम प्राप्त हो रहा है। प्रबन्ध विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन सामान्यतः इस आधार पर किया जाता है कि उनके द्वारा प्रबन्धकों के ज्ञान, निपुणताओं, तकनीकों एवं व्यवहारों में किस सीमा तक परिवर्तन उत्पन्न हुआ है तथा संगठन की अपेक्षाओं एवं हितों की पूर्ति किस मात्रा में हुई है। विकास कार्यक्रमों के मूल्यांकन का उद्देश्य उनकी सफलता को ज्ञात करना होता है। तथा साथ ही यह भी जानकारी प्राप्त करना होता हैं कि कार्यक्रमों में क्या त्रुटियाँ रहीं, जिससे कि भविष्य में उन्हें दूर किया जा सके।

6.9 सार संक्षेप

प्रबन्ध विकास एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसके द्वारा वांक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रबन्धकों की क्षमताओं में अभिवृद्धि की जाती है''अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रबन्ध विकास, वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी संगठन के प्रबन्धक कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त ज्ञान अर्जित करते है। प्रबन्ध विकास कार्यक्रम के उद्देश्यः प्रबन्ध कार्यक्रम, विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए आयोजित किये जाते है।

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबन्ध विकास की अवधारणा समझाइये।
2. प्रबन्ध विकास की आवश्यकता को लिखिये।
3. विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के लिए प्रबन्ध विकास कार्यक्रम की विषय–वस्तु की व्याख्या कीजिये।
4. प्रबन्ध विकास की विधियॉ क्या हैं।
5. कार्य पर प्रयुक्त विधियाँ क्या हैं।
6. कार्य से पृथक प्रयुक्त विधियाँ क्या हैं।
7. प्रबन्ध विकास की प्रक्रिया क्या हैं।
8. प्रबन्ध विकास के क्षेत्र क्या हैं।

6.11 पारिभाषिक शब्दावली

प्रबन्ध विकास	Management Development	विधियॉ	Tecnices
प्रबन्ध कार्यक्रम	Management Programme	मूल्यांकन	Evaluation

कार्य चक्रानुक्रमण	Work Cycle	निपुणता	Skills
अन्तः शाक्तियो	Inner:instincts	संवेदन शीलता	Senstivity

6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- मामोरिया, चतुर्भुज, सतीश मामोरिया एवं मोहनलाल दशोरा (2007) : ''सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक सम्बन्ध'', आगरा : साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स.
- डेविस, के0 : ''ह्यूमन रिलेशंस इन बिजिनेस'', PP. 439–41.
- माइकेल जे0 ज्यूसियस, ''पर्सनेल मैनेजमेण्ट'', PP/ 478–82.
- भारत सरकार (1951) : ''कोड ऑफ डिसिप्लिन इन इन्डस्ट्री'', PP. 2–3.
- योडर, डेल, ''हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट''
- पिगर्स एण्ड मायर्स, ''पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन''.
- योडर, डेल (1972), ''पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशंस
- कपूर, टी0एन0 (1986) : ''पर्सनेल एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया''.

इकाई–7

निष्पादन मूल्याकंन

PERFORMANCE APPRAISAL

इकाई की रूपरेखा

7.1 परिचय
7.2 उद्देश्य
7.3 निष्पादन मूल्याकंन की अवधारणा
7.4 निष्पादन मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषाये
7.5 निष्पादन मूल्यांकन की विशेषतायें
7.6 निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य
7.7 निष्पादन मूल्यांकन की आवश्यकता
7.8 निष्पादन मूल्यांकन की विषय–वस्तु
7.9 मूल्यांकन कौन करे ?
7.10 मूल्यांकन कितने अन्तराल पर किया जायें ?
7.11 निष्पादन मूल्यांकन की विधियॉ
7.11.1 परम्परागत विधियाँ
7.11.2 आधुनिक विधियाँ
7.12 निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया
7.13 निष्पादन परामर्श
7.14 साक्षात्कार
7.15 एक प्रभावी निष्पाद मूल्यांकन कार्यक्रम की अनिवार्यतायें
7.16 सार संक्षेप
7.17 अभ्यास प्रश्न
7.18 पारिभाषिक शब्दावली
7.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 परिचय

संगठनों के अन्तर्गत विभिन्न कार्यों के लिए कर्मचारियों को चयनित एवं प्रशिक्षित कर लेने के साथ–साथ समय की एक कालावधि तक उनके द्वारा कार्य सम्पन्न कर लेने के पश्चात् उनके निष्पादन का मूल्यांन किया जाना आवश्यक होता है। निष्पादन मूल्यांकन यह निर्णय करने की प्रक्रिया है कि कर्मचारी किस प्रकार अपना कार्य करते है? यह सूचित करता है

कि कोई कर्मचारी कितना अच्छी तरह से कार्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। इस प्रकार, निष्पादन मूल्यांकन किसी कर्मचारी का उसके कार्य सम्पादन करने में सापेक्षिक महत्व एवं योग्यता का निर्णय करने का एक सुव्यवस्थित एवं निष्पक्ष ढंग है। यह एक संगठन के अन्तर्गत में कर्मचारी जो कि अपना निर्धारित कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न कर रहे हैं, वे कर्मचारी जो अच्छी तरह से सम्पन्न नहीं कर रहे हैं तथा ऐसे निष्पादनों के कारणों का पता लगाने में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त मूल्यांकन अनेक प्रबन्धकीय कार्यों, जैसे – चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण तथा मजदूरी एवं वेतन प्रशासन आदि के विषय में निर्णय–निर्माण के लिए अनिवार्य होता है। अतः निष्पादन मूल्यांकन, मानव संसाधन प्रबन्धन के आधारभूत कार्यों में से एक होता हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित को जान सकेगें:–

- निष्पादन मूल्याकंन की अवधारणा
- निष्पादन मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषाये
- निष्पादन मूल्यांकन की विशेषतायें
- निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य
- निष्पादन मूल्यांकन की आवश्यकता
- निष्पादन मूल्यांकन की विषय–वस्तु
- मूल्यांकन कौन करे
- मूल्यांकन कितने अन्तराल पर किया जायें ?
- निष्पादन मूल्यांकन की विधियॉ
- निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया
- निष्पादन परामर्श
- साक्षात्कार
- एक प्रभावी निष्पाद मूल्यांकन कार्यक्रम की अनिवार्यतायें

7.3 निष्पादन मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषायें

निष्पादन मूल्यांकन के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है, जैसे–कर्मचारी मूल्यांकन, कर्मचारी निष्पादन,समीक्षा,कार्मिक मूल्यांकन, निष्पादन मूल्यांकन तथा कर्मचारी मूल्यांकन आदि। ये सभी शब्द समानार्थक हैं। निष्पादन मूल्यांकन की कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित प्रकार से है:

1. डेल एस. बीच के अनुसार, '' निष्पादन मूल्यांकन किसी व्यक्ति का कार्य पर उसके निष्पादन तथा उसके विकास की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में व्यवस्थित मूल्यांकन है।'' (1980 पृ० 290)

2. माइकल आर. कैरेल एवं फ्रैन्क ई. कुजमिट्स के अनुसार, ''निष्पादन मूल्यांकन कार्य स्थल पर कर्मचारियों के व्यवहारों का मूल्यांकन करने की एक पद्धति है, सामान्यतः इसमें कार्य–निष्पादन के परिणात्मक तथा गुणात्मक दोनों पहलू सम्मिलित होते हैं।''

7.4 निष्पादन मूल्यांकन की विशेषतायें

उपरिलिखित विवरण के अध्ययन से निष्पादन मूल्यांकन की जो विशेषतायें प्रकट होती हैं, उनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है:

1. निष्पादन मूल्यांकन, कर्मचारियों के कार्यों के सम्बन्ध में उनकी क्षमताओं एवं कमजोरियों का मूल्यांकन करने तथा व्यवस्थित एवं निष्पक्ष विवरण प्रस्तुत करने की प्रक्रिया है।
2. निष्पादन मूल्यांकन के द्वारा यह पता लगाने कि कोई कर्मचारी कितनी अच्छी तरह से कार्य–निष्पादन कर रहा है तथा भविष्य में उसके सुधार हेतु एक योजना का निर्माण करने का प्रयास किया जाता है।
3. निष्पादन मूल्यांकन नियमित अन्तराल पर एक निश्चित योजना के अनुसार आयोजित किये जाते हैं।
4. निष्पादन मूल्यांकन से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कर्मचारियों के प्रशिक्षण, विकास, अभिप्रेरण, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण आदि के विषय में निर्णय लिये जाते है।
5. निष्पादन मूल्यांकन उद्देश्यपूर्ण निर्णय करने की एक प्रक्रिया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि निष्पादन मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी संगठन के कर्मचारियों का उनके वर्तमान कार्यों के सन्दर्भ में क्षमताओं, परिणामों एवं भविष्य की सम्भावनाओं का व्यवस्थित मूल्यांकन किया जाता है, जिससे कि इनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कर्मचारियों के प्रशिक्षण, विकास, पदोन्नति, स्थानान्तरण, वेतन निर्धारण तथा अभिप्रेरण आदि के सम्बन्ध में निर्णय लिये जा सकें।

7.5 निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य

कर्मचारियों के निष्पादन मूल्यांकन से सम्बन्धित सूचनायें विभिन्न उद्देश्यों के लिए अभिलिखित, अनुरक्षित तथा उपयोग की जाती हैं, ये उद्देश्य है:

1. कर्मचारियों के निष्पादन के एक सन्तोषजनक स्तर को स्थापित करना तथा उसे बनाये रखना।
2. योग्यता तथा निष्पादन पर आधारित पदोन्नतियों के विषय में निर्णय लेना।

3. कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं विकास की आवश्यकताओं का निर्धारण करना।
4. चयन परीक्षणों एवं साक्षात्कार तकनीकों का परीक्षण करना तथा उनकी प्रमाणिकता को सिद्ध करना।
5. कर्मचारियों को उनेक कार्य निष्पादन परिणामों से अवगत कराना तथा उनके विकास के उद्देश्य का ध्यान में रखते हुए रचनात्मक समालोचना तथा निर्देशन के द्वारा सहायता प्रदान करना।
6. वरिष्ठ अधिकारियों को उनके अधीनस्थों के विषय में समुचित जानकारी रखने में सहायता प्रदान करना।
7. निष्पादन पर आधारित निष्पक्ष एवं न्यायोचित पारिश्रमिक के निर्धारण को सरल बनाना।
8. संगठनात्मक प्रभावशीलता को सुनिश्चित करने हेतु कर्मचारियों की कार्य क्षमताओं में सुधार करना तथा कर्मचारी व्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन के लिए सुझाव देना।
9. कर्मचारियों को उनकी कार्यक्षमताओं के अनुरूप नये कार्यों पर नियुक्त करना।
10. कर्मचारियों को उनके कार्य निष्पादन परिणामों के अनुरूप अभिप्रेरित करना।
11. जबरी छुट्टी एवं छँटनी के सम्बन्ध में निर्णय लेने हेतु सूचनायें प्रदान करना।
12. मानव संसाधन अनुसंधान करना।

7.6 निष्पादन मूल्यांकन की आवश्यकता

निष्पादन मूल्यांकन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से अनुभव की जाती है:

1. वेतन निर्धारण, पदौन्नति, स्थानान्तरण तथा पद अवनति आदि के सम्बन्ध में जो निर्णय लिये गये हैं, उनके आधार पर निष्पादन श्रेणियों के विषय में सूचनाओं की प्राप्ति हेतु।
2. वेतन–वृद्धि तथा लाभांश के अनुपान के निर्धारण के लिए उचित आधार हेतु कार्य निष्पादन परिणामां के विषय में सूचनाओं की प्राप्ति हेतु।
3. वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थों की उपलब्धि के स्तरों तथा व्यवहारों के विषय में प्रतिपुष्टि सूचनाओं की प्राप्ति हेतु। यह सूचनायें अधीनस्थों के निष्पादनों की समीक्षा करने, निष्पादन की कमियों को सुधारने तथा यदि आवश्यक हो तो, नवीन मानकों को निर्धारित करने में सहायता प्रदान करती है।
4. वे सूचनायें जो कि अधीनस्थों को परामर्श देने में सहायता प्रदान करती हैं, उनकी प्राप्ति हेतु।
5. ज्ञान एवं निपुणताओं के सम्बन्ध में कर्मचारियों की कमियों का निदान करने, प्रशिक्षण एवं विकासात्मक आवश्यकताओं का निर्धारण करने, कर्मचारी–विकास के साधनों को

विहित करने तथा कार्य पर नियुक्तियों को ठीक करने के लिए आश्यक सूचनाओं की प्राप्ति हुेत।

5. परिवीक्षाधीन कर्मचारियों के स्थायीकरण के लिए उनके कार्य निष्पादन सम्बन्धी सूचनाओं की प्राप्ति हेतु।

7. परिवेदनाओं तथा अनुशासनहीनता की गतिविधियों का निवारण करने हेतु।8.8. विभिन्न कर्मचारियों के मध्य उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि करने के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करने हेतु।

7.8 निष्पादन मूल्यांकन की विषय–वस्तु

प्रत्येक संगठन को निष्पादन मूल्यांकन के कार्यक्रम के अनुमोदन से पूर्व मूल्यांकन की जाने वाली विषय–वस्तु के विषय में निर्णय करना होता है। सामान्यतः मूल्याकंन की जाने वाली विषय–वस्तु का निर्धारण कार्य विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। मूल्यांकन की जाने वाली विषय–वस्तु संगठनात्मक उद्देश्यों (मानकों) जैसे– उत्पादन, लागत–बचत तथा पूँजी पर प्रतिलाभ आदि के प्रति योगदान के रूप में हो सकती है। मूल्यांकन के अन्य मानक इन पर आधारित होते हैं: (i) व्यवहार जो कि दर्शनीय शरीरिक क्रियाओं एवं गतिविधियों का मापन करता हैं (ii) उद्देश्य, जो कि कार्य सम्बन्धी परिणामों, जैसे– जमा धन की कुल राशि का सचल होना, का मापन करते है। तथा (iii) लक्षण, जो कि कर्मचारियों के कार्य–क्रियाकलापों में दर्शनीय व्यक्तिगत विशेषताओं के रूप में मापे जाते है। प्रायः एक अधिकारी के निष्पादन मूल्यांकन के प्रारूप के अन्तर्गत विषय–वस्तु के रूप में निम्नलिखित बातों का समावेश किया जा सकता है:

1. उपस्थिति की नियमितता
2. आत्माभिव्यक्तिः मौखिक एवं लिखित
3. दूसरों के साथ कार्य करने के योग्यता
4. नेतृत्व शैली तथा योग्यता
5. पहल शक्ति
6. तकनीकी निपुणतायें
7. तकनीकी योग्यता/ज्ञान
8. नवीन बातों को ग्रहण करने की योग्यता
9. तर्क करने की योग्यता
10. मौलिकता तथा सूझ–बूझ
11. रचनात्मक निपुणतायें
12. रूचि का क्षेत्र

13. उपयुक्तता का क्षेत्र
14. निर्णयन की निपुणतायें
15. सत्यनिष्ठा
16. उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने की क्षमता
17. अधीनस्थों द्वारा स्वीकार किये जाने का स्तर
18. ईमानदारी एवं सद्भाव
19. कार्य एवं संगठनात्मक ज्ञान में सम्पूर्णता
20. कार्य–प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं का ज्ञान
21. सुधार के लिए प्रस्तुत सुझावों की गुणवत्ता

7.9 मूल्यांकन कौन करे

मूल्यांकनकर्ता, कोई भी वह व्यक्ति हो सकता है, जो कि कार्य विषय वस्तु मूल्याकंन की जाने वाली विषय–वस्तुओं एवं विषय–वस्तुओं के मानकों आदि के विषय में पूरी जानकारी रखता हो तथा जो कर्मचारी को कार्य निष्पादन के दौरान ध्यान से देखता हो। मूल्यांकनकर्ता को, क्या अधिक महत्वपूर्ण है तथा तुलनात्मक रूप से क्या कम महत्वपूर्ण है, उसका निर्धारण करने के समर्थ होना चाहिए। उसे प्रतिवेदनों को तैयार करना तथा बिना पक्षपात के निर्णय करना चाहिए। विशिष्ट मूल्यांकनकर्ता होते हैः पर्यवेक्षक, समकक्ष कर्मचारी, अधीनस्थ, स्वयं कर्मचारी, सेवाओं के उपभोक्ता तथा परामर्शदाता। इन सभी पक्षकारों द्वारा किया गया निष्पादन मूल्यांकन, 360^0 निष्पादन मूल्यांकन कहलाता है।

पर्यवेक्षक : पर्यवेक्षकों में कर्मचारियों के वरिष्ठ अधिकारी, अन्य वरिष्ठ अधिकारी जो कि कर्मचारियों के कार्यों के विषय में जानकारी रखते हैं तथा विभागाध्यक्ष अथवा प्रबन्ध सम्मिलित होते हैं। सामान्यतः निकटतम वरिष्ठ अधिकारी निष्पादन का मूल्याकन करते है। जिसकी पुनः विभागाध्यक्षों अथवा प्रबन्धकों द्वारा समीक्षा की जाती है। ऐसा इसलिए कि पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थों का संचालन करने के लिए उत्तरदायी होते है। तथा उनके पास अधीनस्थों का निरन्तर अवलोकन निर्देशन तथा नियन्त्रण करने का अवसर होता है।

समकक्ष कर्मचारी : समकक्ष कर्मचारियों द्वारा मूल्यांकन उस स्थिति में विश्वसनीय हो सकता है, यदि कार्य समूह यथोचित रूप से एक दीर्घ अवधि से अधिक तक के लिए स्थिर हो तथा उन कार्यों को सम्पन्न करता हो जिनके लिए अन्तःक्रिया आवश्यक हों। तथा इस सम्बन्ध में उपयुक्त जानकारी प्रदान कर सकते है।

अधीनस्थ : आजकल अधीनस्थ द्वारा वरिष्ठ अधिकारियों के मूल्यांकन की अवधारणा अधिकांश संगठनों में उपयोग में लायी जाती है, विशेष रूप से विकसित देशों में इस प्रकार की नवीन पद्धति, वरिष्ठ अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य सौहार्दपूर्ण है। इस प्रकार के

मामलों में, अधीनस्थों का मूल्यांकन, समक्ष वरिष्ठ अधिकारियों की पहचान करने में उपयोगी हो सकता है।

कर्मचारी स्वयं : यदि कर्मचारी को संगठन द्वारा उनसे अपक्षित उद्देश्यों एवं उन मानकों जिनके द्वारा उनको मूल्यांकन किया जाना है उनकी पूर्ण जानकारी होती है, तो वे अपने स्वयं के निष्पादन के मूल्यांकन के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थिति होती है। चूँकि कर्मचारी विकास का अर्थ आत्म–विकास भी होता है। अतः वे कर्मचारी जो कि अपने स्वयं के निष्पादन का मूल्यांकन करते हैं वे अधिक अभिप्रेरित हो सकतों हैं

सेवाओं के उपभोक्ता : सेवा प्रदान करने वाले संगठनों में, व्यवहारों, उचित समय, कार्य सम्पन्न करने की गति तथा परिशुद्धता आदि से सम्बन्धित कर्मचारी मूल्यांकन का उनकी सेवाओं के उपभोक्ताओं द्वारा बेहतर तरीके से निर्णय किया जा सकता है।

7.10 मूल्यांकन कितने अन्तराल पर किया जायें ?

अनौपचारिक निष्पादन मूल्यांकन तब आयोजित किये जाते है, जब कभी भी पर्यवेक्षक अथवा मानव संसाधन प्रबन्धक अनुभव करते है कि ऐसा करना अनिवार्य हो गया है। परन्तु व्यस्थित एवं योजनाबद्ध निष्पादन मूल्यांकन नियमित रूप से आयोजित किये जाते हैं। मूल्यांकन का समय–अन्तराल काफी सीमा तक प्रबन्धकीय दर्शन पर निर्भर करता है। सामान्यतः विभिन्न संगठनों में मूल्याकंन कार्यक्रम वर्ष में एक बार आयोजित किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विचारणीय बातें भी हैं, जो कि निम्नलिखित प्रकार से हैः

1. मूल्यांकन का समय अन्तराल कार्य के उद्देश्यों के अनुकूल होना चाहिये। यदि मूल्यांकन चयन प्रक्रिया के लिए किया जाना हो, जो कि वर्ष में दो बार की जाती है तो मूल्यांकन कार्यक्रम भी वर्ष में दो बार आयोजित किया जाना चाहिए।
2. नये कर्मचारियों तथा नये कार्यों के लिए मूल्यांकन का समय अन्तराल कम होना चाहिए, अर्थात इसे कई बार आयोजित किया जाना चाहिए।
3. मूल्यांकन के लिए संगठन की सुविधानुसार जो भी समय अन्तराल निर्धारित किया जाये उसका कठोरता से पालन किया जाना चाहिये।

7.11 निष्पादन मूल्यांकन की विधियाँ

कर्मचारी–मूल्यांकन व्यवस्था की उत्पत्ति एवं विकास के साथ–साथ निष्पादन मूल्यांकन की अेनक विधियाँ अथवा तकनीकें विकसित की गयी है। इन विधियों को दो भागों में विभाजित करके निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है।

7.11.1 परम्परागत विधियाँ

1. आरेखील मूल्यांकन पैमाना विधि

यह निष्पादन मूल्यांकन की अत्यन्त प्राचीन एवं सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली विधि है। इसमें मूल्यांकनकर्ताओं को प्रत्येक कर्मचारी के लिए एक के हिसाब से छपे हुए

प्रपत्र दे दिये जाते हैं तथा उनसे इन पर कर्मचारियों के विषय में अपना मत व्यक्त करने की अपेक्षा की जाती है। इन प्रपत्रों में मूल्यांकन किये जाने वाले कुछ निश्चित गुणों , जैसे –कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता, कार्य ज्ञान, सहयोग की भावना, विश्वसनीय , पहल शक्ति, कार्य क्षमता, कार्य के प्रति रूचि एवं मनोवृत्ति आदि (कर्मचारियों के मामलों में) तथा विश्लेषणात्मक योग्यता, निर्णय क्षमता, रचनात्मक योग्यता, पहल शक्ति, नेतृत्व के गुण एवं संवेगात्मक स्थिरता आदि के लिए एक आरेखीय मूल्यांकन पैमाना बना होता है। इन पैमाने की सहायता से ही मूल्यांकन किया जाता हैं ये अरेखील मूल्यांकन पैमाने दो प्रकार के होते है। निरन्तर मूल्यांकन पैमाना तथा विच्छिन्न मूल्यांकन पैमाना।

निरन्तर मूल्यांकन पैमाने में कर्मचारी के प्रत्येक मूल्यांकन किये जाने वाले गुण तथा उसके स्तर को प्रदर्शित करने वाली संख्याये जैसे–1,2,3,4,5,6,7.....आदि लिखी होती है। इन संख्याओं को कर्मचारी में उन गुणों के सम्भावित स्तर की सीमा के आधार पर विभिन्न श्रेणियों, जैसे– कार्य में अरूचि, लापरवाही, कार्य में रूचि तथा इसी प्रकार अन्य में बाँट दिया जाता है। असमें मूल्यांकनकर्ता निरन्तरता के रूप में कही भी निर्धारित चिह्न द्वारा निशान लगाकर किसी कर्मचारी के विशिष्ट गुणों के स्तरों पर अपने विचार व्यक्त करता है।

आरेखीय मूल्यांकन पैमाना विधि के अन्तर्गत प्रत्येक गुण के सम्बन्ध में कर्मचारी के निष्पादन को मूल्यांकनकर्ता द्वारा दिये गये अंको द्वारा ज्ञात किया जाता है। मूल्यांकनकर्ता द्वारा प्रत्येक गुण के लिए दिये गये अंको को, सम्पूर्ण निष्पादन ज्ञात करने के लिए जोड़ लिया जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक कर्मचारी के निष्पादन का मूल्यांकन हो जाता है।

यह निष्पादन मूल्यांकन की अत्यन्त ही सरल विधि है, जिससे बहुत से कर्मचारियों का शीघ्रतापूर्वक मूल्याकंन किया जा सकता है। परन्तु इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें मूल्यांकनकर्ता के पक्षपातपूर्ण होने की सम्भावना रहती है।

2. श्रेणीयन विधि : इस विधि के अन्तर्गत कर्मचारियों का कुछ विशेषताओं के लिए सर्वोत्तम से लेकर बुरे तक मूल्यांकन किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम, मूल्यांकन किये जाने वाले कार्य सम्बन्धी विशिष्ट गुणों का निर्धारण कर लिया जाता हैं जो कि इस प्रकार हो सकते हैं, जैसे– कार्य ज्ञान, कार्य की मात्रा, कार्य की गुणवत्ता, सहयोग विश्वसनीयता, पहल शक्ति, निर्णय क्षमता तथा नेतृत्व आदि। इसके पश्चात् इन चयनित विशिष्ट गुणों के लिए कुछ महत्वपूर्ण श्रेणियाँ बना ली जाती है तथा उन्हें कोड प्रदान कर दिये जाते है। जैस–अ–सर्वोत्तम; ब–उत्तम; स– अच्छा; द– औसत; य– बुरा; तथा र–बहुत बुरा। जैसा कि चित्र संख्या 10.3 से स्पष्ट हैं

क्रम सं.	गुण	सर्वोत्तम (अ)	उत्तम (ब)	अच्छा (स)	औसत (द)	बुरा (य)	बहुत बुरा (र)
1	कार्य ज्ञान		√				
2	कार्य की मात्रा		√				
3	कार्य की गुणवत्ता			√			
4	सहयोग	√					
5	विश्वसनीयता				√		
6	पहल शक्ति		√				
7	निर्णय क्षमता				√		

इस प्रकार से छपे हुए प्रपत्र को मूल्यांकनकर्ता को दे दिया जाता हैं वह कर्मचारियों के निष्पादनों का अवलोकन करके कर्मचारियों को कार्य सम्बन्धी प्रत्येक विशिष्ट गुण के विषय में सर्वोत्तम से लेकर बुरे तक के लिए स्तर प्रदान करने हेतु किसी भी स्थान पर निर्धारित चिह्न द्वारा निशान लगाकर अपना मत व्यक्त कर सकता है।

3. जाँच सूची विधि : यह एक बहुप्रचलित विधि है। इस विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम कार्य–निष्पादन के लिए आवश्यक गुणों की एक सूची तैयार कर ली जाती है। वस्तुतः यह प्रश्नों की सूची होती है। ये प्रश्न कर्मचारी के कार्य–व्यवहार के विषय में होते है। इसी सूची को जाँच सूची कहा जाता है। मूल्यांकनकर्ता इस सूची में दिये गये प्रश्नों के आधार पर प्रत्येक कर्मचारी के निष्पादन का मूल्यांकन करता है। मूल्यांकनकर्ता मूल्यांकन के लिए जो गुण कर्मचारी में विद्यमान हैं, उनके लिए 'हाँ' तथा जो गुण कर्मचारी में विद्यमान नहीं है। उनके लिए 'नहीं' के कोष्ठक में निर्धारित चिह्न द्वारा निशान लगाकर अपना मत व्यक्त कर देता है। इसके पश्चात् समस्त गुणों पर लगे चिह्नों के आधार पर कर्मचारी के निष्पादन को मूल्यांकन किया जाता हैं

क्रम सं.	प्रश्न	हाँ	नहीं
1	क्या कर्मचारी की कार्य पर उपस्थिति सन्तोषजनक है?		
2	क्या कर्मचारी की अपने कार्य में रूचि रखता है?		
3	क्या कर्मचारी को कार्य का तकनीकी ज्ञान है?		
4	क्या कर्मचारी द्वारा आदेशों का पालन किया जाता है?		
5	क्या कर्मचारी अपना कार्य निर्धारित समय में पूर्ण कर लेता है?		

जाँच सूचियाँ भारित अथवा अभारित हो सकती है। भारित जाँच सूचियाँ में विभिन्न प्रश्नों को उनके महत्व के अनुसार भार प्रदान किया जाता है। इस विधि में मूल्यांकन का कार्य कर्मचारी के निकटतम वरिष्ठ अधिकारी द्वारा किया जाता है। क्योंकि वह कर्मचारी के कार्य एवं गुणों से परिचित होता है। परन्तु निष्पादन मूल्यांकन का अन्तिम निर्णय मानव संसाधन विभाग के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। यह एक सरल विधि है तथा इसके द्वारा पक्षपात रहित मूल्यांकन किया जा सकता है। परन्तु इस विधि में महत्वपूर्ण दोष यह है कि कर्मचारी में किसी गुण के विद्यमान होने के विभिन्न स्तरों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं होता, केवल गुण के विद्यमान होने अथवा नहीं होने का ही उल्लेख होता है।

4. निर्णायक घटना विधि : इस विधि के अन्तर्गत कर्मचारियों का मूल्यांकन महत्वपूर्ण घटनाओं एवं परिस्थितियों में उनके द्वारा प्रदर्शित प्रत्युत्तरों के अधार पर किया जाता है। इसमें पर्यवेक्षक निरन्तर कर्मचारियो के व्यवहारों का अवलोकन करते हुए महत्वपूर्ण घटनाओं के विषय में उनके निष्पादनों को (सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों) अभिलिखित करते रहते हैं। एक कर्मचारी के कार्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित घटनायें निर्णायक अथवा महत्वपूर्ण हो सकती हैं, जो कि उसके निष्पादन मूल्यांकन में सहायक होती हैः 1. प्रक्रिया एवं निर्देशों को सीखना एवं उन्हें याद रखना 2. निर्णय क्षमता एवं बुद्धि 3. यन्त्रों एवं उपकरणों की जानकारी 4. उत्पादकता 5. विश्वसनीयता 6. पर्यवेक्षण को स्वीकार करना; 7. पहल शक्ति 8. उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना; तथा 9. कार्य में सुधार हेतु सुझाव आदि।

इस विधि का एक प्रमुख लाभ यह है कि इसमें कर्मचारी का मूल्यांकन व्यक्तिपरक न होकर महत्वपूर्ण घटनाओं सम्बन्धी साक्ष्यों पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त, कर्मचारी के निष्पादन के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों के अभिलेख उपलब्ध होने से उसके प्रशिक्षण एवं विकास में सहायता प्राप्त होती है। परन्तु इस विधि के कुछ कमियाँ भी हैं जो कि इस प्रकार हैं पहली कार्य से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण घटनाओं का सार्वभौमिक रूप से निर्धारण करना कठिन हैं दूसरी कार्य स्थल पर होने वाली समस्त घटनाओं को अभिलिखित कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। तीसरी पर्यवेक्षक द्वारा घटनाओं के अभिलेखन से कर्मचारियों की कार्य क्षमता पर विपरीत पड़ता है।

5. क्षेत्र समीक्षा विधि : निष्पादन मूल्यांकन के लिए इस विधि का भी काफी प्रयोग किया जाने लगा हैं इस विधि के अन्तर्गत मानव संसाधन विभाग का एक प्रशिक्षित एवं कुशल अधिकारी कार्य स्थल पर जा कर प्रत्येक पर्यवेक्षक से उसके अधीनस्थ कर्मचारियों के निष्पादन के विषय में विशिष्ट सूचनायें एकत्रित करता है। यह अधिकारी पर्यवेक्षक से प्राप्त सूचनाओं को लिपिबद्ध करके एक प्रतिवेदन तैयार करता है। इसके पश्चात वह उस प्रतिवेदन को पर्यवेक्षक के पास समीक्षा करने, परिवर्तन करने तथा अनुमोदित करने हेतु भेज

देता है। अनुमोदनोपरान्त उसे अन्तिम रूप से स्वीकार्य मान लिया जाता है। चूँकि इस विधि में एक विशेषज्ञ द्वारा पर्यवेक्षक के साथ परामर्श करते हुए मूल्यांकन प्रक्रिया को सम्पन्न किया जाता है। इसलिए मूल्याकंन अधिक विश्वनीय होता है। परन्तु इस विधि का एक महत्वपूर्ण दोष यह है कि इसकी सफलता कुशल एंव प्रशिक्षित विशेषज्ञ पर निर्भर करती हैं, क्योंकि यदि वह योग्य होता है तो ही कर्मचारियों के विषय में उपयुक्त सूचनायें प्राप्त कर सकता हैं।

7.11.2 आधुनिक विधियाँ

1. मूल्यांकन केन्द्र विधि : यह स्वयं में निष्पादन मूल्यांकन की एक विधि नहीं है। वस्तुतः यह एक व्यवस्था अथवा संगठन है, जहाँ भिन्न–भिन्न कर्मचारियों का मूल्यांकन विभिन्न विशेषज्ञो द्वारा अनेक विधियाँ के प्रयोग के माध्यम से किया जाता है। इन विधियेां में इस अध्याय में पूर्व में वर्णित विधियों के अतिरिक्त इन–बास्केट रोल–प्लेइंग केस स्टडीज तथा ट्रान्सऐक्शनल ऐनालिसिस आदि विधियाँ सम्मिलित होती हैं।

इस विधि के अन्तर्गत विभिन्न विभागों के कर्मचारियों को साथ–साथ लाया जाता है। जिससे कि वे ऐसा व्यक्तिगत अथवा सामूहिक कार्य करते हुए दो अथवा तीन दिन व्यतीत करें, जैसा कि वे अपनी पदोन्नति होने के बाद कार्य करेंगे। मूल्यांकनकर्ता प्रत्येक प्रतिभागी के निष्पादन को योग्यता के उचित क्रम में श्रेणीबद्ध करते है। इसके पश्चात् उनके द्वारा कर्मचारियों के निष्पादन मूल्यांकन का प्रतिवेदन तैयार किया जाता हैं चूँकि मूल्यांकन केन्द्र मूल रूप से पदोन्नति प्रशिक्षण एवं विकास के लिए विचार करने हेतु कर्मचारियों की सम्भावनाओं के मूल्यांकन का माध्यम हैं, अतः ये मूल्यांकन प्रक्रियाओं के वस्तुनिष्ठ तरीके से संचालन करके उत्कृष्ट साधनों को प्रस्तुत करते हैं। इस विधि में प्रत्येक कर्मचारी को अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने का समान अवसर प्राप्त होता है। इसके साथ ही इसमें मूल्याकंनकर्ताओं के द्वारा पक्षपात करने की सम्भावना नहीं होती है। परन्तु इसमें दोष भी है। जो इस प्रकार हैः पहला इसमें बहुत अधिक समय, धन एवं श्रम लगता है; दूसरा यह विधि वास्तविक कार्य परिणामों की अपेक्षा कर्मचारियों की अन्तः शक्तियों पर अधिक बल देती है।

1. **मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन विधि :** मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन, कर्मचारी–सम्भावनाओं का मूल्याकंन करने के लिए आयोजित किये जाते है। मनोवैज्ञानिक मूल्यांकनों में गहन साक्षात्कार मोवैज्ञानिक परीक्षण, कर्मचारी के साथ विचार–विमर्श एवं परामर्श, वरिष्ठों –अधीनस्थों–समकक्ष कर्मचारियों के साथ विचार–विमर्श तथा अन्य मूल्यांकनों की समीक्षा आदि सम्मिलित होते हैं। यह मूल्यांकन जिन बिन्दुओं एवं विषयों के लिए आयोजित किया जाता है, वे हैः

1. कर्मचारी की प्रतिभा सम्पन्नता
2. संवेगात्मक स्थिरता
3. अभिप्रेरणात्मक प्रत्युत्तर
4. तर्कशक्ति एवं विश्लेषणात्मक योग्यता
5. विवेचन एवं निर्णयन की निपुणता
6. सामाजिकता
7. कर्मचारी की अभिव्यक्त करने की क्षमता।

मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन के परिणाम कर्मचारियों की कार्य पर नियुक्ति प्रशिक्षण एवं विकास तथा वृत्ति नियोजन एवं विकास के सम्बन्ध में निर्णय–निर्माण के लिए उपयोगी होते हैं।

7.12 निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया

निष्पादन मूल्यांकन का आयोजन एक व्यवस्थित प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण सम्मिलित होत है।

1 पहले चरण में , कार्य विवरण एवं कार्य विशिष्टता पर आधारित निष्पादन–मानकों को स्थापित किया जाता है। इन मानकों का स्पष्ट एवं वस्तुनिष्ट होना तथा इसमें सभी घटकों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है

2. दूसरे चरण में, मूल्यांकन कर्ता सहित सभी कर्मचारियों को इन मानकों के विषय में जानकारी प्रदान की जाती है।

3. तीसरे चरण में मूल्याकन कर्ता द्वारा मूल्याकंन के लिए निर्धारित निर्देशों का पालन करते हुए अवलोकन, साक्षात्कार, अभिलेखन तथा प्रतिवेदन तैयार करने के माध्यम से कर्मचारी निष्पादन का मापन किया जाता है।

4.चौथे चरण में , मानकों, कार्य–विश्लेषण तथा आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियें में आवश्यक परिवर्तनों के लिए सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं।

5. पाँचवे चरण में, कर्मचारी के वास्तविक निष्पादन की तुलना अन्य कर्मचारियों के वास्तवित निष्पादनों के साथ की जाती है। इससे यह ज्ञात होता है कि कर्मचारी के निष्पादन का स्तर क्या है। यदि सभी कर्मचारियों के निष्पादनों को उच्च अथवा निम्न स्तर पर श्रेणीबद्ध किया जाता है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि मानकों एवं कार्य विश्लेषण में कोई त्रुटि है।

7.13 निष्पादन परामर्श

किसी कर्मचारी के निष्पादन का मूल्यांकन हो जाने के पश्चात् वरिष्ठ अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह उसे उसके निष्पादन के स्तर, उसके कारणों उसके लिए आवश्यकताओं तथा निष्पादन में सुधार के तरीकों के विषय में सूचित करें। वरिष्ठ अधिकारी द्वारा कर्मचारी को उसके निष्पादन तथा उसमें सुधार के तरीकों के विषय में परामर्श देना चाहिए।

निष्पादन परामर्श किसी ऐसे कर्मचारी के जीवन में एक नियोजित एवं सुव्यस्थित हस्तक्षेप है, जो कि लक्ष्यों का चयन करने तथा अपने स्वयं के विकास का निर्देशन करने के योग्य होता है। इस प्रकार निष्पादन परामर्श का उद्देश्य कर्मचारी को उसके निष्पादन, उसकी क्षमताओं एवं कमियों, निष्पादन में विकास के लिए उपलब्ध अवसरों तथा प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के रूप में आशंकाओं की जानकारी प्राप्त करनें में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त निष्पादन परामर्श वरिष्ठ अधिकारी एवं कर्मचारी के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध की स्थापना में सहायक होता है तथा कर्मचारी की सम्पूर्ण संगठन के प्रति निष्ठा एवं अपनत्व की भावना को विकसित करता है।

7.14 साक्षात्कार

अधिकांश संगठनों द्वारा मूल्यांकन के पश्चात् साक्षात्कार को मूल्यांकन प्रक्रिया के एक अतिआवश्यक अंग के रूप में माना जाता है। यह साक्षात्कार कर्मचारी के लिए प्रतिपुष्टि सूचना तथा मूल्यांकनकर्ता के लिए उसे कर्मचारी से उसके मूल्यांकन एवं मूल्यांकन हेतु विचार किये गये उसके लक्षणों एवं व्यवहारों को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करता है। यह कर्मचारी को भी उसकी श्रेणी, मानकों अथवा लक्ष्यों, मूल्यांकन पैमाने निष्पादन के निम्न स्तर के लिए आन्तरिक एवं बाह्य कारकों तथा निष्पादन के लिए उसके उत्तरदायी संसाधनों आदि के विषय में विचारों को प्रकट करने का अवसर प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह दोनों पक्षों को मानकों की समीक्षा करने एवं वास्तविक घटकों पर आधारित नये मानकों को निर्धारित करने तथा मूल्यांकन कर्ता के लिए उसके द्वारा कर्मचारी का उसकी प्रगति के लिए सुझाव, सहायता मार्गदर्शन एवं शिक्षा देने में सहायता प्रदान करता है।

7.15 एक प्रभावी निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम की अनिवार्यतायें

प्रत्येक संगठन को कर्मचारियों के निष्पादन मूल्यांकन हेतु कार्यक्रम को पूर्व निर्धारित कर लेना चाहिए। एक प्रभावी निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम में निम्नलिखित बातों का सामवेश किया जाना आवश्यक होता है।

1. निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम को आयोजित किये जाने से पूर्व इसके उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से निर्धारण कर लिया जाना चाहिये।
2. मूल्यांकन हेतु आवश्यक कार्य–गुणों एवं निष्पादन मानकों का निर्धारण तथा उनकी स्पष्ट रूप से व्याख्या की जानी चाहिए।
3. संगठन द्वारा एक वर्ष में किये जाने वाले कुल मूल्यांकनों की संख्या एवं उनकी अवधि को भी निर्धारित कर देना चाहिये।
4. प्रत्येक संगठन को अपने व्यवसाय, कार्य–प्रणालियों तथा कर्मचारियों के स्तरों को ध्यान में रखते हुए ही मूल्यांकन की विधियों का चयन करना चाहिए। इस सम्बन्ध में

प्रतिस्पर्धी संगठनों में प्रचलित मूल्यांकन विधियों का भी समुचित अध्ययन कर लिया जाना चाहिये।

5. मूल्यांकन हेतु ऐसी विधियों का चयन किया जाना चाहिए जो कि सही परिणाम दे सकें तथा जिससे कर्मचारियों में संगठन के प्रति विश्वास का सृजन हो सके।
6. मूल्यांकन कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों, मूल्यांकन की प्रक्रिया तथा इसकी विधियों आदि के विषय में कर्मचारियों को पूर्ण रूप से अवगत कराना चाहिए।
7. सम्पूर्ण मूल्यांकन प्रक्रिया निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण होनी चाहिए
8. मूल्याकंन के परिणामों की सूचना भी सम्बन्धित कर्मचारियों को दी जानी चाहिये, जिससे कि वे उनके विषय में अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त कर सकें तथा यदि आवश्यक हो तो, अपने निष्पादन में सुधार कर सके।
9. मूल्यांकन कार्यक्रम की समय–समय पर समीक्षा की जानी चाहिये, जिससे कि उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सके।
10. मूल्यांकन का कार्य योग्य एवं निष्पक्ष मूल्यांकन कर्ताओं को सौंपा जाना चाहिये, जो कि उद्देश्यपूर्ण रूप से एंव विवेक के आधार पर अच्छी तरह से सोच–विचार कर निर्णय कर सके।

7.16 सार संक्षेप

साधारण शब्दों में निष्पादन मूल्यांकन से तात्पर्य कमचारियों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यो के विषय में सुव्यवस्थिति, निष्पक्ष एवं तुलानात्मक मूल्यांकन से है, जो उनकी निपुणताओं, क्षमताओं तथा परिणामों का अध्ययन करता है। इसमें किसी कर्मचारी के निष्पादन को कार्य ज्ञान, उत्पादन की गुणवत्ता एवं मात्रा, पहल शक्ति, नेतृत्व योग्यता, पर्यवेक्षण, विश्वसनीयता, सहयोग, निर्णय क्षमता, परिवर्तनशीलता तथा स्वास्थ्य आदि घटकों के आधार पर मापा जाता है। यह मूल्यांकन केवल पूर्व के निष्पादन तक ही सीमित नहीं होता बल्कि इसमें किसी कर्मचारी के भविष्य की निष्पादन के सम्भावनाओं का भी मूल्यांकन किया जाता है।

यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कर्मचारी मूल्यांकन के लिए पूर्व प्रचलित शब्द 'योग्यता अंकन' के स्थान पर निष्पादन मूल्यांकन शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। 1950 के बाद से ही निरन्तर इस नये शब्द का प्रयोग बढ़ता चला गया हैं इसका कारण है कि वर्तमान समय में कर्मचारी की व्यक्तिगत विशेषताओ एवं क्षमाओं के स्थान पर कर्मचारी निष्पादन मूल्यांकन पर अधिक बल दिया जाने लगा है। इन दोनों शब्दों के बीच किये जाने वाले कुछ अन्तर इस प्रकार हैं पहला, योग्यता अंकन के द्वारा किसी कर्मचारी की योग्यता एवं गुणों का मूल्यांकन में यह ज्ञात किया जात है। कि कर्मचारी क्या है' ? जबकि

निष्पादन मूल्यांकन में यह ज्ञात किया जाता है कि 'कर्मचारी क्या करता है' ? दूसरा योग्यता अंकन में कर्मचारियों की सापेक्षिक योग्यताओं की तुलना करके उन्हें श्रेणीबद्ध किया जाता हैं तीसरा योग्यता अंकन में किसी कर्मचारी के 'व्यक्ति के रूप में महत्व' का मूल्यांकन किया जाता है, जबकि निष्पादन मूल्यांकन में उसके 'कार्य का मूल्यांकन' किया जाता हैं

अब कर्मचारी मूल्यांकन का आधार एवं केन्द्र–बिन्दु कर्मचारी का 'निष्पादन' हो गया है, न कि उसकी 'योग्यता'। किन्तु वास्तव में, निष्पादन मूल्यांकन में योग्यता अंकन भी सम्मिलित हो जाता है, क्योंकि कोई भी कर्मचारी व्यक्तिगताओं द्वारा ही कार्य–निष्पादन करता है। अतः निष्पादन मूल्यांकन के द्वारा योग्यता का भी मूल्यांकन स्वतः हो जाता है। स्पष्ट है कि निष्पादन मूल्यांकन, योग्यता अंकन की अपेक्षा अधिक व्यापक शब्द है।

7.17 अभ्यास प्रश्न

1. निष्पादन मूल्याकंन की अवधारणा को समझाइये।
2. निष्पादन मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषायें लिखिये।
3. निष्पादन मूल्यांकन की विशेषतायें क्या हैं।
4. निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिये।
5. निष्पादन मूल्यांकन की आवश्यकता पर चर्चा कीजिये।
6. निष्पादन मूल्यांकन की विषय–वस्तु समझाइये।
7. मूल्यांकन कौन करें,समझाइये।
8. मूल्यांकन कितने अन्तराल पर किया जायें ?
9. निष्पादन मूल्यांकन की परम्परागत विधियाँ क्या हैं।
10. निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियों की व्याख्या कीजिये।
11. निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को लिखिये।
12. निष्पादन परामर्श से आप क्या समझते हैं।
13. निष्पादन मूल्याकंन के पश्चात साक्षात्कार की प्रासंगिकता को समझाइये।
14. एक प्रभावी निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम की अनिवार्यतायें बताइये।

7.18 पारिभाषिक शब्दावली

परामर्श	Counselling	कार्यक्रम	Programme
विषय–वस्तु	Scope	निष्पादन मूल्यांकन	Job-Evaluation
साक्षात्कार	Interview	कर्मचारी	Employee

मूल्याकंन	Evaluation	अन्तराल	Interval

7.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, इन्द्रजीत **श्रमिक विधियाँ** , सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, (पृष्ठ सं0– 266, 277, 301–303)
2. मामोरिया डॉ0 चतुर्भज, मामोरिया डॉ0 सतीश, दशोरा डॉ0 मोहनलाल, सेविवर्ग प्रबन्धक एवं औधोगिक सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, (पृष्ठ सं0 –162, 163, 323–326, 475–483, 488–490, 519, 520, 527, 528, 655–659)
3. सक्सेना, डॉ0 एस0 सी0, **''श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा''** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ(पृष्ठ सं0 : 659.660)
4. सुब्बारात, (चतुर्थ संस्करण 2010) परसोनेल एण्ड ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट। हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. सी.वी. मामोरिया (2009) सेविवर्ग प्रबंध एवं औद्योगिक सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
6. सी.वी. मामोरिया ए.वी. गानकर (2010) श्री ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद, लखनऊ।

इकाई –8

औद्योगिक सम्बन्ध

Industrial Relation

इकाई के रूपरेखा

8.1 परिचय
8.2 उद्देश्य
8.3 औद्योगिक संबंध की अवधारणा एवं प्रकृति
8.4 औद्योगिक सम्बन्ध की परिभाषा
8.5 औद्योगिक सम्बन्ध के भागीदार
8.5.1 श्रमिक व उनके संगठन
8.5.2 प्रबन्धक व उनके संगठन
8.5.3 राज्य अथवा सरकार की भूमिका
8.6 औद्योगिक सम्बन्ध के उद्देश्य
8.7 औद्योगिक सम्बन्धों के निर्धारक कारक
8.8 औद्योगिक सम्बन्धों का विषय क्षेत्र
8.9 सार संक्षेप
8.10 अभ्यास प्रश्न
8.11 पारिभाषिक शब्दावली
8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 परिचय

मानव एक गतिशील प्राणी है। यह गतिशीलता मानव सम्बन्धों को जटिल बनाती है। अतएव 'औद्योगिक सम्बन्ध' एक गतिशील अवधारणा है जो निरन्तर विकासमान एवं परिवर्तन/परिवर्धन/परिशोधनशील है।कारखाने अथवा कार्यस्थल पर सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्ध एक उद्देश्यपूर्ण, लक्ष्य केन्द्रित एवं उत्पादकतावर्धक वातावरण के सृजन की पूर्व शर्त है। औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे होने पर श्रमिकों एवं अन्य कार्यकर्ताओं में कार्य के प्रति समर्पण की भावना का विकास स्वतः ही हो जाता है, जिससे वे मनोवैज्ञानिक रूप से अधिक आतुरता व गहनता से अपनी जिम्मेदारी निभाने की ओर प्रेरित होते हैं; और इससे औद्योगिक प्रतिष्ठान की उत्पादकता व अधिक लाभ अर्जन की सम्भावना बढ़ जाती है। इस प्रकार उद्योग की सफलता अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों पर निर्भर है।

श्रम सम्बन्धों से अभिप्राय श्रमिकों एवं नियोक्ता/प्रबन्धन के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों के जाल से है। श्रम, श्रम संघों एवं नियोक्ता के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्धों की सीमा निर्धारित करना यद्यपि संभव नहीं हैं, औद्योगिक सम्बन्ध को प्रबन्धन के उस भाग के रूप में समझा जा सकता है, जो उद्योग में कार्यरत मानव शक्ति से सम्बन्धित है।

8.2 इकाई का उद्देश्य :

इस इकाई को अध्ययन करने से पाठकों को निम्नलिखित बातों की जानकारी हासिल होगी–

- औद्योगिक संबंध की अवधारणा, प्रकृति व उसका अर्थ क्या है ?
- औद्योगिक संबंध के भागीदार कौन से हैं ?
- औद्योगिक संबंध के उद्देश्य क्या हैं ?
- औद्योगिक संबंधों के निर्धारक कारक कौन से हैं ?
- औद्योगिक संबंधों का विषय क्षेत्र क्या हैं ?

8.3 औद्योगिक संबंध की अवधारणा एवं प्रकृति

औद्योगिक श्रम, वास्तव में, वृहत् समाज का ही एक अंग है। श्रमिक के रूप में वह उत्पादन का सक्रिय साधन है, किन्तु साथ ही, वह उपभोक्ता भी है। समाज में भी उसकी प्रतिष्ठा व भूमिका है। अस्तु, उसे उद्योग, परिवार व बृहत् समाज के अंग के रूप में एक ही साथ भूमिका का निर्वाह करना होता है। तीनों ही स्तरों पर मानवीय सम्बन्धों का समुचित स्तर बना रहना व इन भूमिकाओं में एक प्रकार का सामंजस्य भी बना रहना अनिवार्य है। कार्य स्थल श्रमिकों के लिए मानसिक तनाव व मनोवैज्ञानिक दबाव का कारण न बनें, तभी यह 'भूमिकाओं का सामंजस्य' श्रमिक प्राप्त कर सकेगा। श्रमिकों पर प्रबन्धकों का दबाव, फलतः होने वाली प्रतिक्रियाएँ एवं असंतोष ही श्रमिक अशांति के रूप में सामने आते हैं।

पाश्चात्य देशों में औद्योगिक क्रांति (जिसका बाद में पूर्वात्य देशों में भी विस्तार हुआ) के पश्चात् लम्बे समय तक मानव को भी मशीन के समान समझा गया व मानवीय भावनाओं, संभावनाओं एवं सम्बन्धों की अवहेलना तथा श्रमिक वर्ग के हितों की अनदेखी की जाती रही। फलस्वष्प, वैश्विक स्तर पर औद्योगिक अशांति फैली एवं अनेक देशों में साम्यवादी क्रांति का सूत्रपात हुआ। कालान्तर में सुधारवादी प्रबन्धकों एवं व्यवहारवादी प्रबन्ध वैज्ञानिकों ने श्रम समस्याओं पर नये सिरे से चिन्तन किया तथा औद्योगिक सम्बन्धों को उत्तम बनाने के लिए प्रबन्धन, प्रशासन, श्रमिक एवं श्रम संघों के सम्मिलित प्रयासों को महत्व दिया जाने लगा।

औद्योगिक शांति के वातावरण में कार्य उपलब्धि सुगम होती है व संगठन की सुचारू प्रगति व उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित होने की संभावना बढ़ जाती है। औद्योगिक शांति श्रमिक–नियोक्ता के मध्य सम्बन्धों में समुचित सुधार के द्वारा ही हासिल की जा सकती है। इस प्रकार औद्योगिक सम्बन्धों के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग व नियोक्ता (प्रबन्धन) वर्ग के मध्य

स्थापित होने वाले सामूहिक सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें विभिन्न लोगों के मध्य पनपने वाले व्यक्तिगत सम्बन्ध शामिल नहीं है। किन्तु प्रसिद्ध प्रबन्ध शास्त्री डेल योडर के विचार से औद्योगिक सम्बन्ध वे सम्बन्ध है जो नियोजन की दशाओं में तथा रोजगार के क्षेत्र में ही पाये जाते हैं। इसके अन्तर्गत व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों का बृहत् क्षेत्र तथा मानवीय सम्बन्ध सम्मिलित किए जाते हैं, जो आधुनिक उद्योग में स्त्रियों व पुरुषों के सम्मिलित कार्य करने की प्रक्रिया में उत्पन्न होते हैं।'

8.4 औद्योगिक सम्बन्ध की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने औद्योगिक सम्बन्ध की अवधारणा को निम्न प्रकार परिभाषित किया है :

- **अग्निहोत्री (1970:1) के विचार से,** ''औद्योगिक सम्बन्ध शब्द श्रमिकों/ कर्मचारियों व प्रबन्धकों के मध्य उन सम्बन्धों को व्यक्त करता है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से श्रम संघ तथा नियोक्ता के बीच सम्बन्धों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।''
- **वी. बी. सिंह (1971 : 9) के अनुसार,** "औद्योगिक सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण भाग है, जो आधुनिक उद्योग में नियोक्ता व श्रमिकों में पाया जाता है, जिनका नियमन राज्य द्वारा विभिन्न अंशों में किया जाता है तथा जो सामाजिक तत्वों व अन्य संस्थाओं द्वारा क्रियान्वित किए जाते हैं। इसमें राज्य के कार्यकलापों का अध्ययन, वैधानिक प्रणाली, श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के संगठन (संख्यात्मक स्तर पर) तथा आर्थिक स्तर पर पूँजीवादी व्यवस्था, औद्योगिक संगठन, श्रम शक्ति नियोजन तथा बाजार सम्बन्धी घटक सम्मिलित होते हैं।''
- **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (1961 : 297)** में औद्योगिक सम्बन्ध की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि ''औद्योगिक सम्बन्ध का विचार राज्य तथा नियोक्ताओं के सम्बन्धों और श्रमिक एवं उनके संगठनों तक विस्तृत है। इस प्रकार, इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्बन्ध, सामूहिक सुझाव प्रणाली (श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के बीच), सामूहिक सम्बन्ध (नियोक्ताओं एवं श्रम संघों के बीच), तथा राज्य द्वारा की गयी आवश्यक व्यवस्था आदि को सम्मिलित किया जाता है।''
- **प्रो0 सी0 बी0 कुमार के अनुसार,** "औद्योगिक सम्बन्ध में श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के मध्य मजदूरी तथा अन्य रोजगार सम्बन्धी शर्तो की सौदेबाजी सम्मिलित की जाती है; सयंत्र में दिन प्रतिदिन के संबंध इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।''
- **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार,** ''औद्योगिक सम्बन्ध या तो राज्य एवं नियोक्ताओं तथा श्रम संघों के बीच अथवा विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के मध्य सम्बन्ध हैं।''

इस प्रकार, औद्योगिक सम्बन्ध की अवधाराणा के अन्तर्गत औद्योगिक इकाइयों में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत श्रम शक्ति एवं नियोक्ता तथा उसके प्रबन्ध तंत्र के मध्य स्थापित गुणात्मक सम्बन्धों को सम्मिलित किया जा सकता है जिनका सीधा असर श्रमिकों की उत्पादकता व उनके कार्य संतोष पर पड़ता है। भारत के औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 (यथा संशोधित 1984) के अन्तर्गत परिवाद निवारण प्रक्रिया की सम्पूर्ण वैधानिक विधि तथा सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया एवं मशीनरी को औद्योगिक सम्बन्ध के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

8.5 औद्योगिक संबंध के भागीदार

जॉन डनलप (1951) के विचार से, ''औद्योगिक समाज निश्चित रूप से औद्योगिक सम्बन्धों को जन्म देता है, जिन्हें श्रमिकों, प्रबन्धकों तथा सरकार के अन्तर्संबंध कहा जाता है।'' ये तीनों ही पक्ष एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा औद्योगिक सम्बन्धों का ढ़ाचा निर्मित करते हैं। तीनों भागीदारों का विवरण निम्न प्रकार है :

A. श्रमिक एवं उनके संगठन – इसके अन्तर्गत श्रमिकों के वैयक्तिक गुण, सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, शैक्षिक स्तर, योग्यता, कुशलता, कार्य के प्रति रूचि, एवं उनके नैतिक चरित्र पर अधिक बल दिया जाता है। श्रमिक संगठन यदि सही नेतृत्व वाला हो तो औद्योगिक इकाई में असहयोगात्मक वातावरण का सृजन हो सकता है, जिसमें श्रमिक अपने अधिकारों एवं दायित्वों के मध्य संतुलन स्थापित कर उत्पादकता में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

B. प्रबन्धक एवं उनके संगठन – प्रबन्धकों के संगठन एवं कार्य समूह औद्योगिक सम्बन्धों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसमें संगठनों की प्रकृति, विशिष्टता, उनके उद्देश्य, आंतरिक संप्रेषण, प्रस्थिति एवं अधिकार प्रणाली, इन संगठनों/समूहों के अन्य संगठनों एवं समूह के साथ सम्बन्ध आदि पर जोर दिया जाता है। प्रबंधकों के संगठन एवं समूहों के साथ नियोक्ता के किस प्रकार के सम्बन्ध है तथा नियोक्ता एवं प्रबन्धकों के संगठन मिलकर राज्य (यानी सरकार) से किस प्रकार के सम्बन्ध रख पाते हैं, इसका प्रभाव भी औद्योगिक सम्बन्धों की संरचना पर पड़ता है। अच्छे नियोक्ता व प्रबन्ध संगठन सामाजिक दायित्वों का समुचित अनुपालन करके तथा वैधानिक नियमों का सम्यक् निर्वहन करके सरकार से अच्छे सम्बन्ध बना सकते हैं, जिसका सकारात्मक प्रभाव औद्योगिक सम्बन्धों पर पड़ता है।

C. राज्य अथवा सरकार की भूमिका –राज्य के कार्यक्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के औद्योगिक सम्बन्ध के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा पारित प्रस्तावों व निर्देशों व अन्य अंतर्राष्ट्रीय तथा द्विपक्षीय संधियों के अनुरूप नीति निर्धारण

करके बेहतर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना समाहित है। इसके अतिरिक्त सरकार के द्वारा ही विभिन्न कानून बनाए जाते है, इनमें संशोधन व सुधार किया जाता है तथा बेहतर औद्योगिक महौल बनाने के लिए उपयुक्त मशीनरी, प्रक्रियाओं व न्यायिक ढाँचे का निर्माण भी किया जाता है। इस प्रकार, श्रमिकों व उनकी कार्यदशाओं में सुधार एवं उनके हितों की रक्षा करने में राजकीय सहयोग, नियमन व नियंत्रण तथा सरकारी हस्तक्षेप का औद्योगिक सम्बन्ध के क्षेत्र में बड़ा महत्व होता है। विधि व्यवस्था, पंच निर्णय, न्यायाधिकरणों व न्यायालयों के निर्णय, समझौतों,रीतियों व परम्पराओं का अनुपालन सामूहिक रूप से औद्योगिक व्यवस्था को दिशा देते हैं। इसी प्रकार सार्वजनिक उपक्रमों में श्रमिक कल्याण के विभिन्न उपायों को लागू करके तथा विभिन्न कानूनी प्रावधानों को अमली जामा पहनाकर राज्य निजी क्षेत्र के समक्ष औद्योगिक वातावरण को बेहतर बनाने के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता है।

8.6 औद्योगिक सम्बन्ध के उद्देश्य

कुछ अमेरिकी विद्वानों का मत है कि औद्योगिक सम्बन्धों का उद्देश्य व्यक्ति का अधिकतम विकास करना, श्रमिकों व नियोक्ताओं के मध्य वांछित कार्यकारी संबंध स्थापित करना तथा भौतिक संसाधनों की अपेक्षा मानव संसाधनों को इच्छित गति प्रदान करना है। वैसे, औद्योगिक सम्बन्धों का मूल उद्देश्य दो पक्षों, अर्थात् श्रमिकों एवं प्रबन्धकों, के मध्य अच्छे तथा स्वस्थ सम्बन्धों का विकास करना है ताकि औद्योगिक शांति एवं उत्पादकता को बढ़ावा दिया जा सके। औद्योगिक सम्बन्धों के विशिष्ट उद्देश्य निम्न प्रकार है :

1. श्रमिक तथा नियोक्ता दोनों के हितों की रक्षा करना; इसके लिए दोनों पक्षों में एक दूसरे के दृष्टिकोण के प्रति समझ व आदर भाव उत्पन्न करना।
2. औद्योगिक विवादों की रोकथाम करना ताकि अधिक उत्पादन के राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति हो सके।
3. पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न करने के लिए अधिकतम रोजगार एवं अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य हासिल करना।
4. श्रम बदली व अनुपस्थिति की दर में कमी करना।
5. औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना करना; इसके लिए नीति निर्धारण व प्रबन्धन में श्रमिक वर्ग की सहभागिता सुनिश्चित करना।
6. श्रमिकों को सिविल सोसायटी का अंग बनाना, ताकि उनका व्यवहार तर्क आधारित तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप हो सके।
7. हड़ताल, तालाबन्दी, घेराव आदि में कमी लाने का प्रयास करना; इसके लिए श्रमिकों को उपयुक्त मजदूरी, अच्छी कार्य दशाएँ, अच्छी रहन सहन की दशाएँ तथा अन्य

अनुषंगी लाभ सुनिश्चित कराना। साथ ही, श्रमिकों को कार्य के प्रति अधिक समर्पित बनाना।

8. औद्योगीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न सामाजिक असन्तुलन को दूर करना तथा आस–पास के वातावरण को शांतिपूर्ण बनाना। इसमें औद्योगिक सम्बन्धों की महत्वपूर्ण भूमिका होता है; इसके लिए राज्य को भी आवश्यक हस्तक्षेप करना चाहिए।
9. कुल सामाजिक लाभ में बढ़ोत्तरी करना।
10. श्रमिकों व प्रबन्धकों के बीच अविश्वास की खाईं पाटकर उनमें सम्पर्क सेतु कायम करना।
11. औद्योगिक विवादों को यथासम्भव टालना व मधुर सम्बन्ध बनाना।
12. उत्पादन प्रक्रिया में श्रमिकों की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित कर देश के विकास को बढ़ावा देना।

इस प्रकार, औद्योगिक सम्बन्धों का उद्देश्य औद्योगिक व्यवस्था में स्पर्धा, संघर्ष व हितों का टकराव टालकर प्रबन्धन व श्रमिक वर्ग के मध्य परस्पर हित का संरक्षण करने वाली कार्यकारी व सही समझ उत्पन्न करना है, ताकि उनमें सहयोगात्मक व विश्वसनीय सम्बन्धों का विकास किया जा सके।

8.7 औद्योगिक संबंधों के निर्धारक कारक

औद्योगिक सम्बन्ध शून्य में विकसित नहीं होते। ये उस वातावरण से प्रभावित होते रहते हैं, जिसमें श्रमिक रहते व कार्य करते हैं। इन कारकों को दो वर्गो में विभक्त कर सकते हैं :
(अ) संस्थागत कारक (ब) आर्थिक कारक

➢ **संस्थागत कारकों के अन्तर्गत** राजकीय नीति, श्रम कानून व विनियम, श्रमिक संघ, नियोक्ता संघ तथा सामाजिक संस्थाएँ (जैसे कि समुदाय, जाति, संयुक्त परिवार, धार्मिक विश्वास, सामाजिक मूल्य, परंपरायें, आदि) सम्मिलित हैं। इसमें कार्य के प्रति अभिरूचि व रूचि, शक्ति के आधार, स्तर व अनुप्रेरण, औद्योगिक प्रणाली आदि भी सम्मिलित है।

➢ **आर्थिक कारकों के अन्तर्गत** आर्थिक विचारधारा (जैसे कि पूँजीवादी या साम्यवादी), औद्योगिक ढाँचा (जैसे कि पूँजीवादी ढ़ाँचा), आर्थिक संस्थान, व्यक्तिगत, कम्पनी तथा सरकारी स्वामित्व, पूँजीगत ढ़ाँचा (तकनीकी सहित), श्रम शक्ति की प्रकृति और उसका गठन, बाजार की शक्तियों का स्वरूप, बाजार में श्रम की माँग एवं आपूर्ति की स्थिति आदि सम्मिलित है।

डॉ0 वी0 बी0 सिंह के विचार से, "किसी देश में औद्योगिक सम्बन्धों का वातावरण उस समाज पर निर्भर करता है, जिससे इनकी उत्पत्ति हुयी है। यह केवल औद्योगिक

परिवर्तनों की उत्पत्ति ही नहीं है, वरन् सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तनों का परिणाम है जिससे औद्योगिक समाज की रचना हुयी है। इसका आधार समाज की विभिन्न संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं के घटने बढ़ने या स्थिरता का असर औद्योगिक सम्बन्धों पर भी पड़ता है। इस प्रकार, औद्योगिक सम्बन्धों की प्रक्रिया का संस्थागत शक्तियों से गहरा सम्बन्ध है, जो किसी निश्चित समय पर आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों को आकार प्रदान करती हैं।

आर0 ए0 लेस्टर ने श्रम व प्रबन्धन के मध्य सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए तीन घटक बताए हैं :

1. आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व राजनीतिक शक्तियाँ, जो एक ओर नीति निर्धारण तथा प्रबन्ध की कार्यवाही की तथा दूसरी ओर श्रम संघ के पदाधिकारियों व सदस्यों की कार्यवाही को प्रभावित करती है ;
2. प्रबन्धकों व श्रमिकों के बीच शक्ति सम्बन्धों का ढाँचा, तथा
3. श्रम एवं प्रबन्धन के बीच शक्ति का संतुलन।

लेस्टर प्रथम प्रकार के कारकों को मूल कार्य घटक तथा शेष दो प्रकार के कारकों को शकित ढाँचा घटक कहते हैं। इन सभी घटकों में समन्वय इस प्रकार स्थापित किए जाने की आवश्यकता है कि औद्योगिक शांति को आगे बढ़ाया जा सके, ताकि उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों में सुधार के द्वारा पूर्ण रोजगार की स्थिति, औद्योगिक प्रजातंत्र का विकास तथा लाभ एवं निर्णय में श्रम एवं प्रबन्धन की सहभागिता के बृहत्तर लक्ष्यों को हासिल किया जा सके।

8.8 औद्योगिक सम्बन्धों का विषय क्षेत्र

औद्योगिक सम्बन्ध कोई असाधारण सम्बन्ध नहीं हैं, बल्कि यह एक क्रियात्मक अंतनिर्भिरता है, जिसमें ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, जैविक, तकनीकी, व्यावसायिक, राजनैतिक, वैधानिक तथा अन्य चरणों का अध्ययन किया जाता है।

वी0 पी0 माइकल (1984 : 5) के शब्दों में, ''यदि हम औद्योगिक विवादों (अर्थात् अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों का अभाव) को किसी वृत्त का केन्द्र बिन्दु मानें तो वह वृत्त विभिन्न भागों में बँट जाएगा। उदाहरणार्थ, कार्य की दशाओं का अध्ययन मुख्यतः मजदूरी के स्तर तथा रोजगार की सुरक्षा आदि के सम्बन्ध में किया जाता है, जोकि **आर्थिक क्षेत्र** में आती हैं। विवादों का उद्‌गम तथा विकास **इतिहास के क्षेत्र** में आता है; उससे होने वाला सामाजिक विघटन **समाजशास्त्र के क्षेत्र** में ; श्रमिकों, नियोक्ताओं एवं सरकार तथा समाचार पत्रों आदि के विचार **समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र** में ; उनकी सांस्कृतिक अंतक्रियाएँ सांस्कृतिक **नृगत्व शास्त्र के क्षेत्र** में ; सरकार की नीति जो विवादों के मामलों में अपनाई जाती है, **राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र** में ; विवाद के वैधानिक तत्व **विधि के क्षेत्र** में ; श्रमिकों एवं

नियोक्ताओं के मध्य सम्बन्ध के बारे में अंतराष्ट्रीय सहयोग एवं संधियाँ **अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र** में ; विवादों के प्रभाव (जिनमें श्रम नीति पर प्रशासन शामिल हो) **लोक प्रशासन के क्षेत्र** में ; और तकनीकी विषय (जैसे ताप नियंत्रण तथा विवेकीकरण की विधियों का उपयोग) **तकनीकी क्षेत्र** में ; तथा लाभ अथवा हानि का ऑकलन गणित के क्षेत्र में आता है।

उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक सम्बन्धों का विषय क्षेत्र विभिन्न विज्ञानों एवं ज्ञान क्षेत्रों की अंतर्निभरता का प्रमाण है। ये सम्बन्ध आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, व्यवसायिक तकनीकी आदि कई प्रकार के कारकों से प्रभावित होते हैं।

➢ औद्योगिक सम्बन्ध मानवीय धारणाओं और कार्य प्रक्रियाओं का मिश्रण होते हैं। सम्बन्ध अच्छे होंगे या बुरे, यह व्यक्तिगत भावनाओं और कार्य प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।

➢ **धारणाओं के अन्तर्गत** विश्वास एवं पहचान, भावुकता, एवं कार्यपरिणति के लिए संकल्प भावना सम्मिलित होती है। इन्हें समझना मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय है।

➢ **कार्य प्रक्रियाओं में**, प्राथमिकता निर्धारण, चयन प्रक्रिया, निर्णय, आदेश पालन, सुझाव एवं सुधार प्रक्रिया, कार्य गहनता, अनुसंधान प्रक्रिया आदि सम्मिलित हैं। इनमें सुधार से संगठन एवं उसके सामाजिक दायित्व की पूर्ति होती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने 'सहयोग की स्वतंत्रता तथा सहयोग के अधिकार की रक्षा, संगठित होने के सिद्धान्त की क्रियान्विति, सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार, सामूहिक समझौता, मध्यस्थता, पंचनिर्णय, तथा अधिकारियों एवं व्यापारियों के संगठनों के बीच सहयोग को श्रम सम्बन्धों के अन्तर्गत सम्मिलित किया है।'

➢ **डेल योडर के विचार से,** ''औद्योगिक सम्बन्धों के अन्तर्गत भर्ती, चयन, श्रमिकों का शक्षण सेविवर्गीय प्रबन्ध, सामूहिक सौदेबाजी सम्बन्धी नीतियाँ सम्मिलित की जाती।'' इस प्रकार, औद्योगिक सम्बन्धों का क्षेत्र काफी व्यापक है। इसके विषय क्षेत्र के अन्तर्गत उपरोक्त के साथ ही, निम्न बातों को भी सम्मिलित किया जाता है :–

1. औद्योगिक क्षेत्र से जुड़े सभी व्यक्तियों के बीच अच्छे सम्बन्धों का निर्माण एवं उनका संधारण।
2. मानवीय विकास को प्रोत्साहन
3. कर्मचारियों में टीम भावना का निर्माण एवं उनमें संगठन के प्रतिनिष्ठा उत्पन्न करना।
4. आपसी सम्मान, भाईचारा एवं औद्योगिक संस्थान में कौटुम्बिक सम्बन्धों का विकास।
5. औद्योगिक संस्थान में शांति का वातावरण निर्मित करना।
6. औद्योगिक उत्पादन एवं राष्ट्रीय विकास को प्रोत्साहन।

7. समाज कल्याण को बढ़ावा।
8. परिष्कृत नियमावली एवं कार्य प्रणाली का निर्धारण।
9. उत्पादक – उपभोक्ता – सरकार के मध्य विश्वास व सद्भाव का वातावरण निर्मित करना। स्कॉट क्लोदियर व स्प्रीगल (1977) के अनुसार, ''औद्योगिक सम्बन्धों के अच्छे होने पर (अ) व्यक्ति का अधिकतम विकास (ब) कर्मचारी–नियोक्ता सम्बन्धों का अधिकतम विकास (स) कर्मचारियों के मध्य आपसी भाईचारा, तथा (द) भौतिक साधनों के अधिकतम उपयोग के लिए मानव संसाधनों का अधिकतम विकास होता है।''

8.9 सार संक्षेप

औद्योगिक संबंध एक गतिशील अवधारणा है, जो कारखाने या कार्यस्थल पर बेहतर मानवीय सम्बन्धों की स्थापना पर जोर देती है, ताकि एक लक्ष्य–केन्द्रित, उत्पादकतावर्धक एवं उद्देश्यपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जा सके।

औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिए श्रमिक–नियोक्ता अथवा श्रमसंघ– प्रबन्धन के मध्य समुचित कार्यकारी एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का होना अति आवश्यक होता है। इस प्रकार, औद्योगिक सम्बन्ध के अन्तर्गत ऐसे सम्बन्धों को शामिल किया जाता है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से श्रम संघ तथा नियोक्ता के बीच उत्पादन प्रक्रिया के फलस्वरूप स्थापित होते हैं। औद्योगिक विवादों के निपटारे से सम्बन्धित सभी वैधानिक उपायों को औद्योगिक सम्बन्धों के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। औद्योगिक सम्बन्धों की इस प्रक्रिया में श्रमिक व उनके संगठन ; प्रबन्धक व उनके संगठन ; तथा सरकार के विभिन्न अभिकरण सम्मिलित होते हैं।

औद्योगिक सम्बन्ध का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों व नियोक्ताओं के मध्य वांछित स्वस्थ सम्बन्धों का विकास करना है, ताकि औद्योगिक शांति एवं उत्पादकता को बढ़ावा दिया जा सके। ये औद्योगिक सम्बन्ध विभिन्न संस्थागत तथा आर्थिक कारकों द्वारा प्रभावित होते हैं। औद्योगिक सम्बन्ध विभिन्न विज्ञानों व ज्ञान क्षेत्रों की अंतर्निभरता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। ये औद्योगिक सम्बन्ध विभिन्न मानवीय धारणाओं तथा कार्य प्रक्रियाओं पर निर्भर होते हैं। औद्योगिक सम्बन्धों के अन्तर्गत भर्ती, चयन, श्रमिकों का प्रशिक्षण, सेविवर्गीय प्रबन्ध, सामूहिक सौदेबाजी संबंधी नीतियाँ भी सम्मिलित की जाती हैं। इस प्रकार, औद्योगिक सम्बन्धों के अध्ययन के द्वारा उन उपायों, उपागमों, नीतियों, सिद्धान्तों व कार्यप्रणालियों तथा वैधानिक उपायों का अध्ययन किया जाता है, जो औद्योगिक माहौल को शांतिपूर्ण व उत्पादकता प्रेरक बनाते हैं।

8.10 अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक सम्बन्ध की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. औद्योगिक सम्बन्ध को परिभाषित कीजिए।
3. औद्योगिक सम्बन्ध के उद्देश्य बताइए।
4. औद्योगिक समबन्धों के भागीदार कौन से हैं ?
5. औद्योगिक सम्बन्धों के निर्धारक कारकों के बारे में बताइए।
6. औद्योगिक सम्बन्धों के विषय क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
7. औद्योगिक सम्बन्ध से आप क्या समझते हैं ? औद्योगिक सम्बन्ध के उद्देश्यों व विषय क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।

8.11 पारिभाषिक शब्दावली

औद्योगिक सम्बन्ध	Industrial Relation	आर्थिक कारक	Economic Factors
समाज कल्याण	Social Welfare	नियोक्ता	Employer
अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन	International Labour Organisation(I. L. O.)	राष्ट्रीय न्यायाधिकरण	National Tribunals

8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- मामोरिया, चतुर्भुज, सतीश मामोरिया एवं एम0एल0 दशोरा (2007) : 'सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक सम्बन्ध', आगरा : साहित्य भवन.
- माइकल, वी0पी0 (1984) : 'इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इन्डिया एण्ड वर्कर्स इलवाल्वमेंट इन मैनेजमेंट', दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस.
- सेठी, के0सी0 (1978) : 'वर्कर्स पार्टिसिपेशन एण्ड इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया : सम रेफलेक्शन्स', **डिसीजन**, वाल्यूम 5, नं0 3, (जुलाई).
- योडर, डेल (1960) : 'पर्सनेल मैनेजमेण्ट एण्ड इंडस्ट्रियल रिलेशन्स'

ईकाई–9

प्रबंधकीय औद्योगिक संबंध

Managing Industrial Relation

इकाई की रूपरेखा

9.1 परिचय
9.2 उद्देश्य
9.3 औद्योगिक सम्बन्ध – विनियामक का मार्गदर्शक तंत्र
9.4 कर्मचारी अनुशासन
9.5 औधोगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946
9.6 कर्मचारी परिवेदन एवं निपटारा
9.7 परिवेदना निवारण प्रक्रिया
9.8 परिवेदना निवारण के सिद्धान्त
9.9 अन्तराष्ट्रीय श्रमिक संघ तथा भारत
9.10 अन्तर्राष्टीय श्रम संगठन के कार्य
9.11 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की संरचना
9.12 भारतीय श्रम सन्नियम पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव
9.13 सार संक्षेप
9.14 अभ्यास प्रश्न
9.15 पारिभाषिक शब्दावली
9.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 परिचय

औद्योगिक संबंध में विनियामक का मार्गदशक तंत्र, कर्मचारी अनुशासन, स्थायी आदेश, निलंबन, छंटनी एवं सेवा सामाप्ति क विषय में जानकारी आवश्यक होती है। प्रस्तुत अध्याय में आप

9.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रबंधकीय औद्योगिक संबंध को जानेंगे।
- औद्योगिक संबंघ को सुदृढ करने के विनियामक के मागदर्शक तंत्र के महत्व को जान सकेंगे।

- कर्मचारी अनुशासन के महत्व को जानेंगे।
- स्थायी आदेश के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- निलंबन, छंटनी एवं सेवा समाप्ति की प्रक्रिया के बारे में जानेंगे।
- कर्मचारी परिवेदना के बारे में जान सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उददेश्य एवं कार्यो के बारे में जानेंगे तथा साथ ही साथ इस संगठन का भारत के श्रम सन्नियम प्रभाव को जानेंगे।

9.3 औद्योगिक सम्बन्ध – विनियामक का मार्गदर्शक तंत्र

विनियामक तंत्र को उन तीन भागों में बॉटा जा सकता है, जो औधोगिक सम्बंधों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते है।

1.स्वस्थ श्रमिक प्रबन्ध सम्बन्धों का विकास :श्रमिक एवं प्रबन्ध में स्वस्थ सम्बन्धों के लिए आवश्यक है कि–

(अ) सुदृढ़, सुव्यवस्थित, प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली पर आधांरित तथा उत्तरदायी श्रम संघ एवं उघोग में श्रमिक सहयोग उपलब्ध हो। ये संगठन कार्य सुरक्षा प्रदान करने निर्णय लेने में अधिक श्रमिकों को सहमगिता दिलाने तथा कर्मचारी रोजगार की दशाओं में सुधार करने के प्रयास करते है। समाज में श्रमिक की स्थिति सुधारने का भी प्रयत्न करते है। ये श्रम संघ आपसी विचार विमर्श सौदेबाजी के लिए भी भूमिका तैयार करते है।

(ब) सामूहिक सौदेबाजी की भावना तथा ऐच्छिक निर्णय लेने के विचार का विकास होता है। सामूहिक सौदेबाजी की भावना से ही समानता के स्तर का बोघ होता है आपसी विश्वास की भावना जागृत होती है। विचार–विमर्श, वाद–विवाद, सौदेबाजी, उघोग एवं श्रम दोनों के लिए रूचि का विषय है।

(स) सरकार के अतिरिक्त श्रम संघ एवं नियोक्ता भी अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने की दृष्टि से कल्याणकारी कार्य करते है।

(2) औद्योगिक शान्ति की स्थापना : स्थायी तौर पर आद्योगिक सहयोग एवं षान्ति स्थापित करने के लिए निम्नांकित बातों का होना आवश्यक है।

(i)- औधोगिक विवाद निवारक प्रणाली का प्रयोग पाँच प्रकार से किया जाता हैः

(अ) वैधानिक तथा प्रशासकीय नियम लागू करके (जैसे, श्रमसंघ अधिनियम, औधोगिक विवाद अधिनियम, आदि)।

(ब) कार्य समितिया बनाकर

(स) समझौता अधिकारी तथा सलाहकार बोर्ड स्थापित करके

(द) श्रम न्यायालय, औधोगिक अधिकरण, राश्ट्रीय अधिकरण, जांच न्यायालय स्थापित करके,

(य) ऐच्छिक पंच–निर्णय द्वारा।

(ii)- सरकार का न्यायाधिकरण तथा हस्तक्षेप की शक्तियाँ अर्थात जब कभी श्रमिक/श्रम संघ तथा नियोक्ता/नियोक्ता संघ किसी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ होते है तथा दिये गये निर्णय से श्रमिक वर्ग असन्तुष्ट हो तो सरकार द्वारा निष्पक्ष फैसला किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। जब औधोगिक अशान्ति फैल रही हो तो देश को आर्थिक संकट से बचाने के लिए सरकार को अधिकार होना चाहिए कि सभी प्रकार की हड़तालों तथा तालाबन्दियों पर वैधानिक रोक लगायी जा सके।

(iii)- परिवाद निवारण हेतु द्विपक्षीय तथा त्रिपक्षीय व्यवस्था होनी चाहिए। इसे व्यवस्था में अनुशासन संहिता, परिवाद निवारण प्रणाली तथा नियोक्ता द्वारा श्रम संघों को ऐच्छिक मान्यता प्रदान करना सम्मिलित किये जाते है। ये उपाय श्रमिकों एवं नियोक्ताओं में सन्तोष की भावना को विकसित करते है।

(iv)- मूल्यांकन तथा क्रियान्वित समितियाँ स्थापित करना जो नियमों के उल्लघंन की जानकारी रखे तथा नियमों के पालन का उत्तरदायित्व निभायें।

उपरोक्त सभी उपाय शान्ति एवं व्यवस्था की दिशा में उचित वातावरण तैयार करने में सहायक होते हैं।

3. औधोगिक प्रजातन्त्र :– इस व्यवस्था में निम्नलिखित पर चर्चा होती है–

(i)- संयुक्त प्रबन्ध समितियाँ कार्य करती है। ये समितियाँ श्रमिकों की कार्य तथा आवासीय दशाओं और उत्पादन में सुधार, कर्मचारियों में सुझाव प्राप्त करने, नियमों एवं समझौतों को लागू करने का उत्तरदायित्व, श्रमिक तथा प्रबन्धकों के बीच बातचीत, श्रमिको में सहभागिता की भावना जाग्रत करना आदि कार्य करती है। ये सभी प्रवृत्तियाँ शान्ति स्थापित करने की दिशा में सतत प्रयत्नशील रहती हैं।

(ii)- उद्योग में माननवीय सम्बन्ध की धारणा से यह स्पष्ट होता है कि श्रमिक एक व्यापार की वस्तु नहीं वरन एक गतिशील प्रणाली है जिसमें आत्मानुभूति, स्वाभिमान तथा कार्य करने की इच्छा उसके स्वयं के वशीभूत होती है अतः प्रबन्धक को चाहिए कि उसके साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखे। श्रमिकों के साथ मानवीय व्यवहार करना औधोगिक प्रजातंत्र का मूल आधार है।

(iii)- लाभ विभाजन द्वारा श्रमिकों को कार्य के प्रति अधिक प्रेरित करना तथा अच्छे सम्बन्धों में वृद्धि करना, जिससे अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। अभिप्रेरक तत्व वित्तीय तथा गैर–वित्तीय दोनों ही प्रकार के हो सकते है। उनमें अधिक मज़दूरी, अच्छे कार्य की सराहना, पदोन्नतियां, लाभ सहमागिता योजनायें, व्यक्तिगत एवं सामूहिक कार्य निष्पादन के

लिये पुरस्कार, नौकरी की सुरक्षा, आदि तथ्य सम्मिलित किये जाते है। इससे औधोगिक सम्बन्धों में सुधार होता है।

9.4 कर्मचारी अनुशासन

जीवन के हर क्षेत्र में अनुशासन आवश्यक है विशेषकर औधोगिक क्षेत्र में क्योंकि किसी देश के विकास और समृद्धि में उधोगों का बड़ा ही महत्व है। उघोग में अनुशासन कैसे कायम रखा जाये यह एक गम्भीर प्रश्न है। नियोजकों तथा कर्मकारों के बीच कुछ बातों को लेकर विवाद उठना स्वाभाविक है। उसके समाधान के लिए कानूनी उपायों, कार्य समिति समझौता गिवान्स सेटलमेन्ट जाँच न्यायालय पंच निर्णय के साथ ही न्याय निर्णयन मशीनरी श्रम न्यायालय, अधिकरण और राष्ट्रीय अधिकरण कर्मकारों को रोकने के लिये उधोगों के अपने नियम है। कर्मकार के मन में इस बात का डर रहता है कि गलती, दुराचार। अपराध करने पर उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। कौन सा दण्ड दिया जाना समुचित होगा, इस बात पर निर्भर करता है कि कदाचार गम्भीर प्रकृति का है या माइनर है प्रत्येक मिल, फैक्ट्री, प्रतिष्ठान में अनुशासन कायम रखने के लिए प्राधिकारी नियुक्त होते है जो 'वाचडाग' की भाँति सारी गतिविधियों पर नज़र गडाए रहते है। अनुशासनहीनता किसी कीमत पर कोई भी नियोक्ता बर्दास्त नहीं करना चाहता। अनुशासन की संस्कृति से कई लाभ होते हैं। एक तो उत्पादन प्रतिकलतः प्रभावित नहीं होती, दूसरे सम्बन्धित प्रतिष्ठान को गुडविल/क्रेडिट और लोकप्रियता में वृद्धि होती है। अनुशासन की तलवार लटकती रहती है, इसे समझते हुए कर्मकार ऐसा कोई काम नहीं करे जिससे अनुशासन हीनता के लिए उन्हें दण्डित किया जाये। अनुशासन के पीछे मूल धारणा यह रहती है कि किसी भी संगठन के सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों पर नियन्त्रण रखें और मिलकर सामूहिक हित के लिए कार्य करें।

अनुशासनहीनता के दण्डों में निलम्बन आर्थिक दण्ड, वेतनवृद्धि में रोक बरर्खास्तगी सेवोन्मोचन छँटनी आदि सम्मिलित है। अवैध ढंग से किये जाने वाले घेराव, धरना, प्रदर्शन, जान, हड़ताल, तोड़–फोड़, सामानें की चोरी, और उन्हें नुकसान पहुँचाना आगजनी, आपस में मारपीट गाली गलौज और प्रतिष्ठान के अधिकारियों से ऐसा ही अमद्र व्यवहार, ऐसे कारक है जो अनुशासनहीनता की परिधि में आते है। उनके रोकने के उन उपायों का नियोजक सहारा ले सकता है जो स्थायी आदेशों समेत अन्यान्य विधियों और अधिनियमों में उल्लिखित है।

उच्चतम न्यायलय ने इस आशय का स्पष्ट निर्णय दिया है कि सेवारत कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया जा सकता है, सेवा निवृत्ति के बाद कतई नहीं। बशर्ते इस सम्बन्ध में कोई विशिष्ट नियमन हो। एक समय या जब मजदूरों से काम लेने और उन्हें जब चाहें भगाने

का नियोजको का विशेषाधिकार था जिसका इस्तेमाल वे बखूबी करते थे। द्वितीय विश्व के बाद अधिकाधिक उधोगों की स्थापना हुई। उनमें बहुत से मजदूर रखे गये और ग्रामीण क्षेत्रों से लोग उन शहरों की और भागने लगे जहाँ–जहाँ उधोग स्थापित थे। समय बीतने के साथ उनमें अपने श्रम के महत्व और मूल्य की परख होने लगी। उनमें जाग्रति आई। नियोजकों द्वारा किये जाने वाले दुर्व्यवहार/अपमान, एक झटके से मनमानी तौर पर होने वाली बर्खास्तगी निराधार आरोप और दण्ड से निजात पाने का उन्होंने उपाय ढूँढना शुरू किया। ''एकता में बल है'' इसका उन्हें एहसास होने लगा। संघों का गठन करके वे अपनी माँगों के मनवाने पर नियोजकों पर दवाब बनाना शुरू कर दिये। मनमानापन रोकने के लिये सरकार ने भी कदम उठाये। स्टैंडिंग आर्डर एक्ट 1946 इसी उद्देश्य से पास किया गया कि "Hire and Fire" को प्रासंगिक बनाया जा सके।

9.5 औधोगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946

सन् 1946 के पहले ऐसा कोई भी अधिनियम भारत में लागू नहीं था जिसमे औधोगिक प्रतिष्ठानों में कर्मकारों के लिये नियमावली रही हो। उनके कार्य की शर्ते नियोजक के विवेक के ऊपर निर्भर करती थी। श्रमिकों को इस बात का ज्ञान नहीं रहता था कि उनके लिये क्या नियम है और उनके उल्लंघन का क्या परिणाम होगा। इसलिए वे नियोजकों के मनमानी शोषण अत्याचार एवं स्वेच्छाचारिता के शिकार हुआ करते थे। छोटी सी गलती पर भी उन्हें बहुत बड़ी हानि का सामना करना पड़ता था, क्योंकि नियोजक की जबान ही कानून थी। उनकी दशा सुधारने के लिये नियुक्त आयोग ने यह सुझाव दिया कि प्रतिष्ठानों में निष्चित नियमावली लागू करने से मजदूर वर्ग का काफी हित होगा और वे नियोजक द्वारा किये जाने वाले मनमाने अत्याचार से बहुत हद तक मुक्त होंगे तथा उन्हें नियमों की पूर्ण जानकारी करा देने पर वे जानबूझकर उनका उल्लेघन नहीं करेंगे। इससे महत्वपूर्ण बात यह होगी कि प्रतिष्ठानों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने के साथ ही नियोजक और कर्मकार के सम्बन्ध भी सौहार्दपूर्ण रहेंगे। इसी बात को ध्यान में रख करके और Labour Investigation Committed की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से यह अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा बदलते हुये औधोगिक जगत के लिए निम्नलिखित संस्तुतिया की गई थी।

''कर्मकार को यह जानने का पूरा अधिकार है कि उन्हे किन शर्तों तथा उपबन्धों के अधीन नियोजित किया गया है और किन अनुशासन नियमों का पालन करना है। भारतीय उधोगों में सेवा–नियमों को सुनिश्चित नहीं किया गया रहता। यदि वे रहते भी है, तो बड़े ही लोचदार तथा नियोजक की सुविधाओं के अनुरूप यह नियोजक एवं नियोजिती के दैनिक सम्बन्धों को शासित करता है। ऐसे स्थायी आदेश एकपक्षीय होते है, क्योंकि उन्हे बिना

कर्मकार या उनके संगठनों या सरकार के परामर्श से बनाया जाता है। इन आदेशों के बनाने से पहले, सभी विवादयोग मामलों में वे नियोजको को ऊँचा स्थान देते है। इसलिये इसे नियोजन की शर्ते को स्पश्ट रूप से परिभाषित करना चाहिये और सेवाच्युत, सेवा–विमोचन, अनुशासनात्मक कार्यवाही, सार्वजनिक छुटिटयों तथा अवकाश को थी।

यदि कोई कर्मकार इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन बनाए गए स्थायी आदेशों के आधार पर सेवा में बने रहने के अधिकार का दावा करता है तो वह औधोगिक विवाट अधिनियम, 1947 के अधीन दावा करता है। ऐसे प्रश्न पर विचार करने के लिये सिविल न्यायालय की अधिकारिता आवश्यक विपक्ष द्वारा उस दशा को छोड़कर अन्यथा वर्जित है जबकि वादी अपने नियोजक द्वारा अपनी सेवाओं को जो कि उसके और उसके नियोजक के बीच मालिक और सेवा के सम्बन्ध से अदूभुत होती है, संदोष समाप्ति के लिए नुकसानी का दावा करता है।

उद्देश्यः भूमिका ही स्पष्ट होता है कि इसके पारित करने का उददेश्य औधोगिक प्रतिष्ठानों में लागू नियमों में एकरूपता लाना है तथा समान रूप से लागू करना है। इसका मुख्य उद्देश्य सेवा शर्ते के सम्बन्ध में एक रूप एवं निश्चित नियमों को लागू करना है जिससे कर्मकार एवं नियोजक उनके अनुसार अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर सके। इस नियमों को लागू किये जाने से कर्मकार नियोजकों की स्वेच्छाचरिता मनमानी पूर्ण कार्य प्रणाली से बच सकते है, तथा दोनों पक्षों के बीच तनाव की सम्भावना में कमी हो सकती है।

स्थायी आदेश की वेधता–अधिनियम पूर्णत : संविधान सम्मत है। नियोजकों के अधिकारों पर किंचित, निषेध लोकहित में है। उससे नियोजकों के वृत्ति, व्यापार एवं पेशा करने की स्वतन्त्रता के मूल अधिकार का अतिलंघन नहीं होता। एच0 के0 शेषाद्रि बनाम एच0 ए0 एल0 एवं अन्य में कर्नाटक उच्चत न्यायालय के विनिश्चयानुसार यदि कोई स्थायी आदेष अधिनियम की अनुसूची में सम्मिलित किया हुआ है तो उसे केवल इस आधार पर घोषित नहीं किया जा सकता कि स्थायी आदेश के कतिपय उपबन्ध आदर्श स्थायी आदेश नहीं है। इसमें अनु0 14 के अतिलंघन के आधार पर चुनौती दी गई थी जिसके अर्न्तगत कम्पनी परिसर की सीमा में उधार पर रूपया देने के कारोबार को, दुराचरण माना गया था।

अधिनियम के लागू होने की कसौटी :–नियमों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि औधोगिक प्रतिष्ठानों में लागू करने की दो कसौटियां हैं–

1. एक निश्चित निर्धारित संख्या।
2. उपयुक्त सरकार का आदेश

अधिनियम कहाँ लागू नहीं होता–

धारा 13 (ब) उपबन्धित करती है कि यह अधिनियम–

1. फन्डामेन्टल एण्ड सप्लेमेन्टरी रूल्स
2. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियन्त्रण और अपील) नियम
3. भारतीय रेल स्थापन संहिता,
4. सिविल सर्विसेज रेगुलेशन्स
5. रिवाइज्ड लीव रूल्स
6. रक्षा सेवाओं के सिविलियन्स (वर्गीकरण, नियन्त्रण और अपील) नियमों पर या
7. किसी ऐसे उधोग में जहाँ बम्बई औधोगिक सम्बन्ध अधिनियम, 1946 के उपबन्ध लागू होते है लागू नहीं होगा।
8. किसी ऐसे औधोगिक संस्थान में जहाँ मध्य प्रदेश औधोगिक नियोजन आदेश 1961 के उपबन्ध लागू होते है लेकिन उसमें किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम के उपबन्ध केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण के अधीन सभी औधोगिक संस्थानों पर लागू होंगे।

निलम्बन : कर्मचारी को यदि किसी अपराध के अधीन जांच –पड़ताल पर रखना आवश्यक हो और यह समझा जाये कि जाँच – पड़ताल के समय उसे कार्य पर रखने से वह आलेख में कुछ गड़बड़ी कर सकता है अथवा तथ्यों को तोड़ – मरोड़ सकता है तो उसे निलम्बित कर दिया जाता है। निलम्बन कोई दण्ड नहीं है, किन्तु दण्ड से पूर्व की स्थिति माना जाता है। साधारण अपराध करने वाले को निलम्बित करके जांच नहीं की जाती। निलम्बन से अपराध की गम्भीरता का अनुमान लगता है। यदि जाँच के बाद निलम्बित काल का पूरा वेतन, वेतन–वृद्धि तथा सभी लाभ दिये जाने चाहिए तथा उसे निरन्तर सेवा में ही जाना चाहिए। निलम्बन के समये कर्मचारी को जीवन निर्वाह भत्ता दिया जाना आवश्यक है।

अपदस्थता अथवा पदच्भुत : ''पदच्युत करने का अर्थ किसी व्यक्ति को उसकी त्रुटि या दुर्व्यवहार के कारण दण्ड–स्वरूप नौकरी से निकाला जाना है।'' व्यक्ति को निकाले जाने से पूर्व उसे दोष के बारे में यदि कोई स्पष्टीकरण देना हो तो उसका अवसर उसे दिया जाता है। दोष की पर्याप्त जांच की जाती है तथा व्यक्ति के दोष सिद्ध होने पर ही उसे दण्ड दिया जाता है। दोषी व्यक्ति को दण्ड देते समय प्राकृतिक न्याय को ध्यान में रखना चाहिए अर्थात दण्ड दोष की तुलना में अधिक नहीं होना चाहिए। वर्कमेन ऑफ मीनाक्षी मिल्स लि0 और अन्य बनाम मीनाक्षी मिल्स लि0 में उच्चतम न्यायालय ने कहा है, कर्मकारों की छँटनी करने के नियोजक के अधिकार पर प्रतिबन्ध उचित है और संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ह) एवं (6) का उल्लंघन नहीं है।

नीति निर्देशक तत्वों को सर्वाधिक एवं क्रियान्वित करने का प्रभाव करने वाला ऐसा प्रतिबन्ध लोकहित में सुविधा उचित है। यह सुस्थापित विधि है कि जहाँ तक जबरी छुटटी या छँटनी

का सम्बन्ध है नियोजक का यह प्रतिबन्धकीय विवेकाधिकार है कि वह जो ढंग अच्छा समझे उसी ढंग से अपने कारोबार को व्यवस्थित करे और कर्मकार तब तक उसके औचित्य को चुनौती नहीं दे सकता जब तक वह उचित ढंग है।

छँटनी से अभिप्राय साधारण अर्थ में काम पर से कर्मकारों को हटाने से है। धारा 2 (ण ण) में छटनी इस प्रकार परिभाषित है – ''छँटनी से नियोजक द्वारा किसी कर्मकार की सेवा का ऐसा पर्यवसान अभिप्रेत है, जो अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही के रूप में दिये गए दण्ड से भिन्न किसी भी कारण से किया गया हो किन्तु उसके अन्तर्गत निम्नलिखित नहीं आते–

(क) कर्मकार की स्वेच्छा से निवृति, अथवा

(ख) अधिवार्षिकी आयु का हो जाने पर कर्मक्रार की उस दशा में निवृत्ति जिसमें नियोजक और संयुक्त कर्मकार के बीच हुई किसी नियोजक संविदा में उस निमित्त कोई अनुबन्ध अन्तर्विष्ट हो: अथवा

(ग) इस आधार पर कर्मकार की सेवा का पर्यवसान कि उसका स्वास्थ बराबर खराब रहा हो।

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि बारीकियों और शब्दशास्त्र के अलावा नियोजक द्वारा किसी भी कारण किसी कर्मकार की सेवा का पर्यवसान स्वंय धारा में अपवादित (अपवर्जित) मामलों के सिवाय छँटनी होता है। उससे अभिपेत है अन्त होना समाप्त होना बन्द होना। इस बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सेवा का ऐसा पर्यवसान किसी भी कारण से पद के अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार की सेवा का पर्यवसान आता है किन्तु वे इसके अन्तर्गत नहीं आते जो अधिनियम के अन्य उपबन्धें द्वारा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित नहीं है, जैसा कि धारा 25 चच और धारा 25 चचच में है। हिन्दुस्तान स्टील लि0 बनाम ए0के0 राय और अन्य में अभिनिर्धारित हुआ कि बहाली मन्जूर करने के पहले सभी तथ्यों को नाप तौल लेना चाहिये कि प्रतिकार का आदेश उचित होगा। विधिक कारण से नियोजक द्वारा कर्मकारों को सेवा विरत करने को छँटनी कहते है। हर प्रसाद शंकर बनाम शुक्ला ए0 डी0 दिवेकर में कहा गया कि ''बिना कारण के टरमिनेशन को छँटनी नहीं कहा जायेगा।'' छँटनी का कारण अवश्य होना चाहिये।

राजस्थान राज्य और अन्य बनाम रामेश्वर लाल गहलौत में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से विनिश्चित किया है कि निश्चित अवधि के लिए की गई नियुक्ति धारा 2 (00) (इ) द्वारा कवर्ड है। सेवा समाप्ति छँटनी अवैध नहीं मानी जाएगी बशते यह मलाफाइडी न हो।

छँटनी के कारण : जैसे उद्योग निरन्तर घाटे में चलता रहना, दैवीय आपत्ति आ जाना, मशीन का टूट जाना, प्रतिष्ठान का भंयकर अग्निकॉड का शिकार बन जाना, कच्चे माल का निरन्तर अभाव, नियोक्ता के नियन्त्रण के परे परिस्थितियाँ जैसे– दैवीय घटना ईश्वरीय

कार्य या शत्रु कार्य, मितव्ययिता, आर्थिक सुधार अभिनवीकरण अथवा श्रम बचाने वाले किसी यांत्रिकी प्रक्रिया आदि के नाम पर छँटनी की जा सकती है। उक्त 5 कारणों के अलावा कारण कुछ भी हो सकते है। यह नियोजक की इच्छा पर है कि वह अपने उधोग का संचालन किस प्रकार करे।

निम्न कारणों पर नियोजक छँटनी कर सकता है–

1. कर्मकारों का बाहुल्य।
2. किसी विभाग का समाप्त हो जाना
3. नयी मशीनरी का स्थापन
4. स्थापन या उधोग का निरन्तर घाटे में चलता रहना।
5. कच्चे माल का आभाव

छँटनी का उचित ढंग : अधिनियम की धारा 2 (ढ, ढ) छँटनी को परिभाषित करते हुये स्पष्ट किया है कि ''नियोजक उसमें वर्णित चार कारणें के अतिरिक्त अन्य किसी भी आधार पर श्रमिक की छँटनी कर सकता है। लेकिन उसके लिये सेवा मुक्ति से पूर्व उसे धारा 25 (च) में उल्लिखित शर्तो का पालन करना होगा। मनमाने ढंग से छँटनी रोकने के उददेश्य से धारा 25 (च) में परमादेश प्रावधान है। धारा 25 (च) में यह उपबन्ध है कि किसी उद्योग में नियोजित किसी कर्मकार की जो नियोजक के अधीन कम से कम 1 वर्ष के लिये निरन्तर सेवा में रह चुका है छठनी उस नियोजक द्वारा तब तक नहीं कि जायेगी जब तक कर्मकार को लिखित आपेक्षित सूचना न दे दी गयी हो और छँटनी के समय विनिर्दिष्ट दर पर प्रतिकर न दे दिया गया हो और विहित रीति में सूचना राज्य सरकार या समुचित प्रधिकारी तामिल न कर दी गयी हो। धारा 25 वहा लागू होती है जहाँ कर्मकार की छँटनी की गयी है। छँटनी कितनी की जाये और कब इसका निर्णय नियोजक पर ही निर्भर करता है उसमें अधिकरण या अन्य न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेंगे लेकिन आमान्वय एवम् आवच्छित ढंग से छटनी के तरीके को चुनौति दी जा सकती है।

9.6 कर्मचारी परिवेदन एवं निपटारा

शायद ही कोई संगठन ऐसा हो जिसमें कर्मचारी शिकायते नहीं करते हो अथवा उनमें मतभेद, लड़ाई – झगड़ा एवं असन्तोष नहीं होता हो। कभी नियोक्ता कर्मचारी अपने मालिको से परिवाद वास्तविक और काल्पनिक दो प्रकार के होते है। ये वैधानिक दृष्टि उचित भी होते है। उधोग में मनमुटाव होने से उत्पादक कर्मचारी समाज और राष्ट्र सभी को हानि उठानी पड़ती है। इससे उत्पादन कम हो जात है। अपव्यय बढ़ जाते है, संगठन के कार्य शिथिल पड़ जाते हैः अशान्ति बढ़ जाती है और अव्यवस्था का वातावरण बन जाता है तथा प्रबन्धक और कर्मचारी वर्ग एक दूसरे की आलोचना करते दिखायी देते है।

1. कैल्हून के अनुसार, ''परिवेदना कोई भी ऐसी स्थिति है जिसे कर्मचारी गलत सोचता या समझता है तथा उससे कर्मचारी की विचार धारा भंग होती है।''
2. राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार ''शिकायते जो एक या अधिक श्रमिकों के मजदूरी भुगतान अधिनियम छुट्टी स्थानान्तरण, पदोन्नति, वरिष्ठता, कार्य सौपने, कार्य की दशाएं, रोजगार संविदा का निर्वचन, पदमुक्ति तथा कार्य से निकाले जाने से सम्बन्धित हो, परिवाद की श्रेणी में आती है। किन्तु जहाँ समस्याऐ सामान्य रूप से लागू होने वाली हो या जो अधिक महत्वपूर्ण हो वे परिवेदना प्रक्रिया के अन्तर्गत नहीं आयेगी।''
3. उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अधिकारों की माँग के लिए प्रस्तुत शिकायत अथवा सामूहिक प्रदर्शन को परिवेदना कहा जाता है। सोसायइटी फॉर एडवान्समेन्ट ऑफ मैनेजमेन्ट की परिभाषा के अनुसार नियोक्ता भी परिवेदना प्रस्तुत कर सकते है किन्तु यह बहुत ही असमान्य बात है।

परिवेदना 2 तत्वों पर आधारित हैः

1. श्रमिकों द्वारा अपने अधिकारों की मांग एवं उनकी सुरक्षा तथा
2. श्रमिकों की रूचियां

परिवेदना के कारण : जब किसी व्यक्ति के हितों एवं अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है तो वह असन्तोष अनुभव करता है अपना असन्तोष व्यक्त करता है और तब वह उचित रूप से परिवाद उपस्थित करता है। साधारणतः यह स्थिति कम्पनी की नीतियों, नियमों, व्यवहारों को गलत ढंग से से लोगू करने के कारण उत्पत्र होती है। कर्मचारी परिवाद निम्न कारणों से होता हैः–

1. व्यक्तिगत मजदूरी निर्धारण एवं कर्मचारी की उचित मजदूरी के लिए मांग तथा उसका पूरा न किया जाना।
2. कार्य वितरण, अनुशासन एवं अभिप्रेरणा प्रणाली के प्रति शेष।
3. फोरमैन अथवा पर्यवेक्षकों द्वारा पक्षपात।
4. वरिष्ठता अधिकार अथवा निष्फलता।
5. वरिष्ठता अधिकार अथवा पदोन्ती क्रम में परिवर्तन।
6. अनुशासन के आधार पर कार्य से निष्कासन या जबरी छुटटी।
7. अन्य विभागों या पारियों में स्थानान्तरण
8. सुरक्षा एवं चिकित्सा की दृष्टि से अपर्याप्त प्रविधान।
9. समय पर उत्पादन सामग्री (कच्चा माल, यन्त्रादि, शक्ति) की प्राप्ति न होना।
10. सामहिक सौदेबाजी के समझौतों का उल्लंघन।

11. अविवेकपूर्ण ढंग से कार्य सौपना।
12. अनुचित कार्य की दशाएं।

प्रबन्धक भी व्यक्तिगत रूप से कर्मचारी के विरूद्ध अपनी शिकायत करते है। उनकी शिकायत के विभिन्न आरोप ये है:

1. अनुशासन हीनता
2. कार्य की धीमी गति
3. संविदा पूरा न करना
4. संधों को सफलता पूर्वक कार्य न करना।
5. संघ के सदस्यों द्वारा प्रबन्धकों पर दबाव डालने की नीति का अपनाया जाना।
6. संगठनों और श्रम संघों के हितों मं टकराव और
7. श्रम संघों द्वारा प्रबन्ध पर लगाये गये अवांछित आपेक्ष एवं प्रचार।

अमरीकी श्रम विभाग ने परिवादों को दो भागों में बाटा है:

1. श्रमिक परिवाद तथा

2- प्रबन्धक (नियोक्ता) परिवाद

9.7 परिवेदना निवारण प्रक्रिया

परिवेदना उत्पत्र होने के कई कारण है। प्रत्येक कारण की जब तक पूर्णतः जाँच–पडताल न कर ली जाय किसी भी परिवेदना का निवारण करना कठिन होता है। सेविवर्ग प्रशासन का कर्तव्य है कि वह परिवेदना के कारणें की सूक्ष्मता से खोज करे तथा निकटतम सूत्र की जांच एवं विश्लेशण करके उचित निवारण प्रक्रिया का प्रयोग करे। उसका यह भी कर्तव्य है कि रेखीय प्रबन्धको (मुख्यतः फोरमैन, परिवेक्षक, आदि) की परिवेदना निवारण की उचित प्रक्रिय के लागू करने में सहायता करे।

परिवेदना निवारण की आवश्यकता : परिवेदना निवारण की आवश्यकता निम्न कारणों से पड़ती है:

1. परिवेदनाएं कर्मचारियों को कठिनाई में डाल देती है जिससे उनका नैतिक बल, उत्पादन तथा सहयोग कम हो जाता है।
2. प्रशासन के ऊपर एक अकुश की तरह परिवेदना कार्य करती है।
3. कर्मचारी में निराशा तथा असन्तोष कम करने तथा उसके अधिकारों की रक्षा करने में।
4. इससे योजना बनाते समय तथा नितियाँ निर्धारित करते समय श्रमिक के हितों का हनन नहीं होता।
5. नियम अधिक प्रभावी हो जाते है।

9.8 परिवेदना निवारण के सिद्धान्त

माइकेल ज्यूशियस ने परिवेदना निवारण के निम्न चार सिद्धान्त बताये है–

1.**साक्षात्कार सिद्धान्त :** कई शिकांयतो अथवा परिवेदनाओं को समय रहते हल कर लेने से श्रमिक सम्बन्ध अच्छे बने रहते है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्धक कर्मचारियों के अधिक निकट रहे।

2.**कर्मचारियों के प्रति प्रबन्धकों की धारणा** : प्रबन्धकों को कर्मचारियों की शिकायत अथवा परिवेदना में रूचि दिखानी चाहिए तथा सदभावना का परिचय देना चाहिए किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि झूठी शिकायतें न किया जाये। प्रबन्धक को अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए शिकायत के औचित्य का निधारण करना चाहिए तथा अपना निर्णय काफी सोच समझ कर देना चाहिए।

3. प्रबन्धको का उत्तरदायित्व : किसी प्रकार के उचित अथवा अनुचित निर्णय के लिए प्रबन्धक उत्तर दायी होते हैं। प्रबन्धकों में कर्मचारियो का सदविश्वास ही औधोगिक शान्ति को प्रोत्साहन देता है। अतः प्रबन्धकों का दायित्व है कि वे कर्मचारियों में अपना विश्वास स्थापित करें।

4. दीर्घकालीन सिदान्त : किसी भी निर्णय से पहले प्रबन्धको को संगठन के दीर्घकालीन हित ध्यान में रखने चाहिए। कर्मचारियों की तत्व तात्कालिक प्रसन्नता से कई बार दीर्घकाल में संगठन को अत्यधिक हानि हो सकती है। एक निर्णय से गलत परम्परा स्थापित हो सकती है।

9.9 अन्तराष्ट्रीय श्रमिक संघ तथा भारत

अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना 1919 में बसरजीत की संधि के परिणामस्वरूप हुई। इस संघ का प्राथमिक उद्देश्य अन्तर–राष्ट्रीय क्षेत्र में औधोगिक शान्ति बनाए रखना था। यह भी अनुभव किया गया था कि शान्ति केवल उसी स्थिति में बनायी रखी जा रकती है जबकि वह सामाजिक न्याय पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में समाज के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र अर्थात श्रमिकों की समस्याओं पर विचार किए बिना औधोगिक शान्ति की स्थापना नहीं की जा सकती। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह आवश्यक था कि पसीना बहाकर कठिन श्रम करने वाले श्रमजीवियों के साथ भी सामाजिक न्याय किया जायें। अतः 31 जनवरी, 1919 को एक आयोग नियुक्त किया गया जिसके सदस्य ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, इटली तथा जापान थे। इस आयोग का कार्य था एक ऐसी संस्था का निर्माण करना जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सहयोग से श्रम समस्याओं के निराकरण हेतु कार्य करे। इसी आयोग के निरन्तर प्रयास के परिणामस्वरूप अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन का जन्म हुआ। प्रारम्भ में यह संगठन

संयुक्त किन्तु 1946 से यह यू0 एन0 ओ0 की एक विशेषज्ञ संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। श्रम संगठन राष्ट्र संघ के परिवार में एक प्रभावशाली तथा महत्वपूर्ण संस्था के रूप में सम्मिलित है। श्रमिक वर्ग में आर्थिक व सामाजिक उत्थान तथा उन्नयन और संरक्षण के लिए यह संस्था प्रयत्नशील है– आज सभी राष्ट्रो को तीन प्रकार से यह श्रम संगठन सहयोग व सहायता प्रदान कर रहा है–

(1) कार्य करने एवं रहने की दशाओं तथा वेतन आदि के क्षेत्रों में अन्तर राष्ट्रीय मापदण्ड निर्धारित करना।

(2) तकनीकी सहायता प्रदान करना एवं

(3) शोध व प्रचार करना।

भारत 1919 से ही इसका सदस्य है। इस संगठन ने अपने जीवन के 75 वर्ष पूरे कर लिए है। इस संघ संगठन की स्थापना के समय इसके 45 राष्ट्र सदस्य थे जबकि आज सदस्य देशों की संख्या 145 से भी अधिक है।

अन्तर–राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधारमूत सिद्धान्त : अन्तर राष्ट्रीय श्रम संघ का आधार ऐसे 9 आधारमूत सिद्धान्तों पर आधारित है जो कि श्रमिक चार्टर में दिये गये है। राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य को इन सिद्धान्तों को स्वीकार करना पड़ता है। ये सिद्धान्त अग्रलिखित है–

1. मार्गदर्शक सिद्धान्त यह होगा कि श्रम को केवल पदार्थ अथवा वाणिज्य की वस्तु नहीं समझा जाना चाहिये।
2. श्रमिक और मालिक के सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये संघ बनाने के अधिकारों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिये।
3. देश और समय के अनुसार उचित प्रकार की के जीवन स्तर को बनाये रखने के लिये कर्मचारियों को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था होनी चाहिये।
4. दिन के आठ घण्टे के कार्य और सप्ताह में 48 घण्टे के कार्य के सिद्धान्त को उन सभी स्थानों पर लागू कर देना चाहिए जहाँ ये अभी लागू नहीं है।
5. जहाँ भी सम्भव हो सप्ताह में कम से कम चौबीस घण्टे का अवकाश मिलना चाहिये। इसमें रविवार भी हो सकता है।
6. बालकों से काम लेना समाप्त कर देना चाहिये और किशोरों के रोज़गार पर भी रोकथाम होनी चाहिये, जिससे कि उनकी शिक्षा के चालू रखने के साथ–साथ उन्हें उचित रीति से शारीरिक विकास का भी अवसर मिल सके।
7. यह सिद्धान्त लागू करना चाहिये कि समान मूल के समान कार्यो के लिये स्त्री व पुरूष को समान पारिश्रमिक दिया जाये।
8. श्रमिकों के लिये किसी देश में जो भी अधिनियम बनाये जाये उनमें इस बात का ध्यान रखा जाये कि सभी श्रमिकों को चाहे वे देशवासी हो अथवा विदेशी, बराबर का अधिकार मिले।

9. प्रत्येक राज्य को निरीक्षण की ऐसी पद्धति अपनानी चाहिये, जिसमें स्त्रियाँ भी माग ले सकें, जिससे कि कर्मचारियों की सुरक्षा के लिये जो भी नियम बनाये जाये उन्हें उचित रीति से लागू किया जा सके।

अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन के उद्देश्य

अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन का उद्देश्य विश्व में कार्यरत जनसंख्या को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना है। इसका उद्देश्य श्रमिकों को काम करने के श्रेष्ट दशायें उपलब्ध कराना, रोजगार के उचित अवसर उपलब्ध कराना उचित वेतन दिलाना औधोगिक जनतन्त्र की स्थापना को प्रोत्साहित करना तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है। व्यापक दृष्टि से इस संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है–

1. प्रत्येक काम करने के योग्य श्रमिक के लिये रोजगार की व्यवस्था करना।
2. प्रत्येक श्रमिक को उसके योग्य काम में लगाना। इसका तात्पर्य यह है कि जो श्रमिक जिस कार्य के लिये उपयुक्त है उसे वहीं कार्य मिलना चाहिये। इसके साथ–साथ जो श्रमिक जिस कार्य को पसन्द करता है उसे वही कार्य मिलना चाहिये।
3. श्रमिकों की आय में वृद्धि करके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना।
4. श्रमिक की गतिशीलता की सुविधाओं में व्यस्थता उचित रूप से करना।
5. श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध करना। इस सिलसिले में स्वास्थ बढ़ोत्तरी अथवा बेरोजगारी आदि के लिये आवश्यकतानुसार सामाजिक बीमा का प्रबन्ध करना।
6. सामूहिक सौदा के अधिकार को सम्मान तथा प्रोत्सोहन देना।
7. श्रमिकों की शिक्षा तथा उसके प्रशिक्षण का प्रबन्धक करना।
8. उत्पादन क्षमता की वृदि का प्रबन्ध करना। इसके लिये श्रमिकों व सेवायेजकों के बीच आपसी सहयोग वाछनीय है।
9. श्रम अथवा अन्य प्रकार की नीतियाँ ऐसी अपनाई जायें, जिससे आर्थिक विकास में श्रमिकों का समान भाग उपलब्ध हो सके।
10. श्रमिकों के रहने के लिये उचित निवास स्थानों की समुचित व्यवस्था करना।
11. श्रमिकों के लिये मनोरंजन आदि का समुचित प्रबन्ध करना।
12. समान श्रम के लिये समान मजदूरी दिलाने की व्यवस्था करना।
13. बाल कल्याण की व्यवस्था करना।
14. बच्चों को काम में लगाने की मनाही करना। इसके साथ–साथ इस संस्था के संविधान के अनुसार नवयुवक श्रमिकों के स्वास्थ्य आदि की रक्षा हेतु बनाये गये नियमों का अनुसरण करना।

15. काम करने की दशाओं में आवश्यक व उचित सुधार करना।
16. प्रसूति संरक्षण की व्यवस्था तथा उसके लिये आवश्यक नियमों का पालन करना।
17. विश्व में शान्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण करने के लिये प्रयास करना।
18. औद्योगिक जनतत्र की भावना को प्रोत्साहित करना।

9.10 अन्तर्राष्टीय श्रम संगठन के कार्य

यदि हम अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठम द्वारा प्रकाशित पुस्तकों व पत्रिकाओं आदि का अध्ययन व विश्लेषण करे, तो इस पर संस्था के निम्नलिखित प्रभाव कार्य स्पष्ट हो जाते हैः–

1. यह संस्था अपने संसार की आर्थिक व श्रम सम समस्याओं का गहन अध्यन करती है एवं इनसे सम्बन्धित समस्याओं के निराकरणों के लिए अपने सुझाव देती है।
2. यह संस्था सामाजिक अधिनियम अथवा सामाजिक संगठन सम्बन्धी बहुमुल्य सलाह देकर उन राहों की अमुल सेवा करती है। जो इस ओर आगे बढ़ना चाहते है।
3. इस संस्था की सहायता से विभिन देशों में पायी जाने वाली आर्थिक सामाजिक व श्रम सम्बंधी समस्याओं का ज्ञान हो जाता है एवं साथ ही साथ यह भी विदित होता है कि कौन क्षेत्र अमुक समस्या को किस प्रकार हल करता है। और उसे करने में कहाँ तक सफेलता मिली है। और यदि सफलता नहीं मिली है तो क्यों?
4. अपने शिष्टमण्डल की सहायता से यह संस्था उन देशों को अपनी सहायता प्रदान करती है जो इनकी सहायता लेना चाहते है यह अपने शिष्टमण्डल उन देशों को भेजती है जो प्रार्थना करते है ये शिष्टमण्डल उस देश में जाकर वहॉ की दशाओं का अध्ययन करते है और उचित सेलाह देते है।
5. बेरोजगारी, सामाजिक सुरक्षा समाज कल्याण श्रम संगठन तथा श्रम सम्बंधी अनेक प्रकार की समस्याओं के ऊपर बहुमूल्य प्रकाशन करके यह संस्था श्रम शक्ति की विशेष रूप से सेवा करती है।
6. यह संस्था श्रम कल्याण व औद्योगिक उन्नति में हेतु अपने सदस्यों राष्ट्रों को समय–समय पर कन्वेन्शन्स एवं अपने बहुमूल्य सुझाव दिया करती है, जिससे इन्हें अधिक लाभ होता है।

9.11 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की संरचना

अन्तर्राष्ट्रय श्रम संगठन निम्नलिखित इकाइयों के माध्यम से कार्य करता है।

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय : अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय इस संगठन का स्थायी सचिवालय है। यह सचिवालय विश्व सूचना केन्द्र तथा प्रकाशन ग्रह का कार्य करता है। यह श्रम से सम्बन्धित प्रश्नों पर अध्ययन एवं अनुसंधान करने में व्यस्त रहता है। इसमें विभित्र देशों के विशेषज्ञ काम करते है जिनके ज्ञान, अनुभव और परामर्श सभी सदस्य राष्ट्रों

के लिये उपलब्ध है। इसकी शाखायें तथा प्रतिनिधि अनेक देशों में है। 1959 में इसके कर्मचारियों की कुल संख्या 793 थी। जेनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के कार्यालय में लगे भारतीयों की संख्या 14 थी। इनमें से एक भारतीय अधिकारी सहायक निदेशक जनरल के पद पर आसीन है एक परामर्शदादा है, एक सदस्य विभाग का अध्यक्ष है तथा एक महाअध्यक्ष के कार्यालय में कार्यकारिणी सहायक है। यह कार्यालय "International and Labour Review" के नाम से एक मासिक पत्रिका 'Industry of Labour'के नाम से एक पाक्षिक पत्रिका तथा अन्य कई पत्र–पत्रिकाओं का भी प्रकाशन करता है। भारत सहित नौ देशों में इसकी शाखायें खुली हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भारतीय शाखा दिल्ली में भी है, जिसके कर्मचारियों में एक–डायरेक्टर श्री बी.के.आर. मेनन के अतिरिक्त अन्य पाँच अधिकारी भी है। यह सरकार तथा मालिकों एवं श्रम संगठनों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखते है तो श्रम संघ भी सूचनाओं को देने के लिये एक समाशोधन ग्रह का कार्य करता है।

2. अन्तरंग सभा : अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की अन्तरंग सभा इस संगठन की कार्यकारिणी परिषद् है। यह कार्यालय के कार्य का सामान्य पर्यवेक्षण करती है, इसके बाजारों का निर्माण करती है तथा प्रभावात्मक कार्यो के लिये नीति बनाती है और अन्तरंग विशेषज्ञ समितियों आदि की स्थापना करने का भी इस पर उत्तरदायित्व है। वर्ष में साधारण इसकी तीन बैठके होती है। आजकल इसके चालीस सदस्य है जिनमें बीस सरकारों के प्रतिनिधि, दस सेवायोजकों के प्रतिनिधि तथा दस श्रमिकों के प्रतिनिधि है। कनाडा, चीन, फांस, भारत, इटली, जापान, सोवियत संघ, इंगलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी जर्मनी दस स्थायी सदस्य है। इस प्रकार भारत शुरू से ही इसका स्थायी सदस्य है।

3. अन्तर–राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन : अन्तर–राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन श्रम और सामाजिक प्रश्नों के लिये एक विश्व संसद का कार्य करता है। इसका सम्मेलन साधारणतः वर्ष में एक बार होता है। प्रत्येक सदस्य राज्य चार प्रतिनिधि भेजता है जिनमें दो सरकार के एक सेवायोजकों तथा एक श्रमिकों का प्रतिनिधि होता है। सरकार सेवायोजकों एवं श्रमिकों के प्रतिनिधियों को मत देने की पूर्ण सुविधा रखती है। इस सम्मेलन का मुख्य कार्य यह है कि अभिसमय और सिफारिशों के रूप में अन्तर राष्ट्रीय सामाजिक स्तर बनाये जायें।

9.12 भारतीय श्रम सन्नियम पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव

भारत में श्रम–सन्नियम पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव एवं अप्रत्यक्ष दोनों तरह से पड़ा है। विशेषतः प्रारम्भिक अवस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्तावों ने श्रम सन्नियम के निर्माण की दशा में पहल करने पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला था, जो कि इस बात से प्रकट है कि भारत द्वारा स्वीकृत उसके 21 प्रस्तावों में से 11 प्रस्ताव इस अवधि में

स्वीकार किये गये थे। प्रारम्भिक स्वीकृत प्रस्तावों में एक प्रस्ताव कार्य के घण्टों से सम्बन्धित था और अन्तर–राष्ट्रीय संगठन ने 1919 में उसका निर्माण किया था। इस प्रस्ताव में भारत के लिये एक विशेष वाक्य द्वारा कार्य के घण्टे कुछ अधिक (लगभग 60 घण्टे प्रति सप्ताह) रखने की अनुमति दी गई थी। इस विशेष वाक्य के आधार पर भारत सरकार प्रस्ताव का अनुमोदन कर सकी और आवश्यक सन्नियम बनाने में उसने कोई देर नहीं की। 1922 में एक कानून बनाकर कारखानों में 60 घण्टे प्रति सप्ताह से अधिक काम लेने का निषेध कर दिया गया। 1922 से यह अनुभव किया जाता रहा है कि जैसे ही कठिनाइयाँ दूर हो जायें वैसे ही विशेष वाक्य को भी समाप्त कर देना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि रॉयल कमीशन की सिफारिशों पर इस सीमा को घटाकर 54 घण्टे प्रति सप्ताह, तथा अन्त में 1946 में 48 घण्टे प्रति सप्ताह कर दिया गया, जो कि प्रस्ताव में दी हुई सामान्य सीमा है। कारखाना (संशोधन) अधिनियम 1922 ने भी दो अन्य प्रस्तावों को लागू किया, जिन्हें अन्तर–राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में स्वीकार किया गया था।

(1) रात्रि–कार्य (महिलायें) प्रस्ताव 1919 और

(2) नवयुवक रात्रि–कार्य (उधोग) प्रस्ताव 1919, उक्त अधिनियम के अन्तर्गत कारखानें में कार्य के प्रतिमाह 60 घण्टे रखे गये, पुरूष श्रमिकों के लिये दैनिक कार्यशील घण्टों की संख्या 11 रखी हुई, बालकों के कार्यशील घण्टों की संख्या 11 रखी हुई, बालकों के कार्यशील घण्टों पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया, विश्राम का मध्यान्तर बढ़ता गया, बालकों को काम पर रखने की न्यूनतम आयु सीमा ऊँची की गई। उस समय न्यूनतम आयु (उधोग) सम्बन्धी प्रस्ताव 1919 को स्वीकार नहीं किया जा सका, क्योंकि कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ थी लेकिन इस अधिनियम और भारतीय खान अधिनियम 1923 में ऐसे नियम बना दिये गये जिन्होंने 12 वर्ष से कम आयु के बालकों को कारखानों में और 13 वर्ष से कम आयु के बालकों कों खानों में काम पर रखने का निषेध कर दिया। श्रमिकों को रात्रि विश्राम के लगातार 11 घण्टे अवश्य दिये जाये। यह नियम रात्री सम्बन्धी उक्त प्रस्तावों के अनुरूप ही था।

अन्य सन्नियम, जिन पर अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्तावों का प्रभाव निम्नलिखित है–

(1) इण्डियन पोर्ट्रस एक्ट 1908 को 1922 में न्यूनतम आयु (अधोग) प्रस्ताव 1919, को कार्यान्वित करने के लिये संशोधित किया गया।

(2) 1937 में न्यूनतम आयु के प्रस्ताव में संशोधन होने पर केन्द्रीय विधान सभा में एक बिल 1938 में रखा गया जिसका उद्देश्य उक्त प्रस्ताव के संशोधन को कार्यान्वित करना था।

(3) 1946 से 1948 तक की बीच की अवधि में कारखाना अधिनियम में जो विभिन्न संशोधन किये गये वे अन्तर–राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्ताव का प्रभाव सूचित करते है।

(4) इण्डियन रेल्वेज एक्ट में भी एक संशोधन 1930 में अपनाया गया। जिसका उद्देश्य कार्य के घण्टों से सम्बन्धित प्रस्ताव 1919 एवं साप्ताहिक अवकाश प्रस्ताव 1921 को जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकार कर दिया था, रेलो में कार्यान्वित करना था।

(5) इण्डियन डॉक लेबरर्स एक्ट, 1934 ने तो 1935 के दुर्घटना (डॉकर्स) प्रस्ताव (संशोधित) के आदेशों को विशेष रूप से कार्यान्वित कराने का प्रयत्न किया और उसमें माल लादने वाले श्रमिकों की सुरक्षा के नियम सम्मिलित थे।

(6) सामुद्रिक सेवा के कर्मचारियों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने स्वीकृत किये थे उनका प्रभाव भी भारत में सामूद्रिक सेवा से सम्बन्धित श्रम सन्नियमों पर स्पष्ट दिखाई देता है।

9.13 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में प्रबन्धकीय औद्योगिक संबंध क्या है? इसको बताया गया है। इस ईकाई में औद्योगिक संबंध विनियामक के मांगदशर्क तंत्र का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। कर्मचारी अनुशासन, स्थायी आदेश के महत्वूपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। इस ईकाई में निलंबन, छंटनी एवं सेवासमाप्ति की प्रक्रिया के बारे में बताया गया है। कर्मचारी परिवेदना क्या है? इसके महत्व को बताया गया है। इसके अतिरिक्त इस ईकाई में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और भारतीय के श्रम सन्नियम पर इसके प्रभाव का वर्णन किया गया है।

9.14 अभ्यास प्रश्न

1. स्थायी आदेश के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
2. कर्मचारी परिवेदना क्या है ?
3. औद्योगिक सम्बन्ध – विनियामक का मार्गदर्शक तंत्र
4. कर्मचारी अनुशासन
5. औधोगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946
6. कर्मचारी परिवेदन एवं निपटारा
7. परिवेदना निवारण प्रक्रिया
8. परिवेदना निवारण के सिद्धान्त
9. अन्तराष्ट्रीय श्रमिक संघ तथा भारत
10. अन्तर्राष्टीय श्रम संगठन के कार्य
11. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की संरचना
12. भारतीय श्रम सन्नियम पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव

9.15 पारिभाषिक शब्दावली

1. Industrial Relation	:	औद्योगिक संबंध
2. Regulatory machanisin	:	विनियामक तंत्र / नियामक तंत्र
3. Employe Discipline	:	कर्मचारी अनुशासन
4. Standing Orders	:	अस्थायी आदेश
5. Scispension	:	निलंबन
6. Retrenchment	:	छंटनी
7. Dismissal	:	सेवासमाप्ति / बखस्तिगी
8. Employee Brievance	:	कर्मचारी वरिवेदना
9. .I.L.O (International Labour Organigation)	:	अन्तर्राष्ट्रय श्रम संगठन

9.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, इन्द्रजीत **श्रमिक विधियाँ** , सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, (पृष्ठ सं0 – 266, 277, 301–303)
2. मामोरिया डॉ0 चतुर्भज, मामोरिया डॉ0 सतीश, दशोरा डॉ0 मोहनलाल, सेविवर्ग प्रबन्धक एवं औधोगिक सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, (पृष्ठ सं0–162, 163, 323–326, 475–483,488–490,519,520,527,528,655–659)
3. सक्सेना, डॉ0 एस0 सी0, **''श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा''** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ(पृष्ठ सं0 : 659.660)

ईकाई – 10

औद्योगिक विवाद एवं संघर्ष समाधान

Industrial Disputes & Conflict Resolution

इकाई की रूपरेखा

10.1 परिचय
10.2 उददेश्य
10.3 औद्योगिक विवाद का अर्थ
10.4 ओद्यौगिक विवादों के प्रभाव
10.5 औद्योगिक विवादों की रोकथाम एवं निपटारा
10.6. औद्योगिक शांति प्रस्ताव
10.7 औद्योगिक विवादों का निपटारा
10.8 श्रम प्रशासन की भूमिका
10.9 राज्य संगठन
10.10 सामूहिक सौदेबाजी अर्थ
10.11 सामूहिक सौदेबाजी की विषय–सूची
10.12 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
10.13 औद्योगिक विवाद के अनुभाग
10.14 औद्योगिक सम्बन्धों के लिये राज्य निगम
10.15 सार संक्षेप
10.16 अभ्यास प्रश्न
10.17 पारिभाषिक शब्दावली
10.18 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 परिचय

औद्योगिक क्रांन्ति के उपरान्त जब से मार्क्सवादी विचारों का बोलवाला हुआ है, औद्योगिक समाज में दो वर्ग पैदा हो गये है – एक पंजीपतियों का और दूसरा श्रमजीवियों का । इन दोनों विरोधी शक्तियों में निरन्तर संघर्श चलता है, जो हड़तालों और तालेबन्दियों के रूप में प्रकट होता है इस प्रकार मुख्यतः औद्योगिक संघर्ष पंजीवादी अर्थव्यवस्था की ही देन है जहां कहीं भी यह अर्थव्यवस्था देखने को मिलेगी वहां औद्योगिक संघर्ष में भी चिन्ह मिलेगे। इस विशय में डा0 राधा कमल मुखर्जी ने एक स्थान पर लिखा है कि ''पूंजीवादी उद्योग के

विकास ने, जिसका अर्थ है उत्पत्ति साधनों पर थोड़े से साहसियों के वर्ग का नियन्त्रण होना, सम्पूर्ण विष्व में प्रबन्ध और श्रम के बीच संर्घ की समस्या को सामने ला दिया है।'' जैसे–जैसे उत्पादन का पैमाना बढ़ता जाता है, श्रम पूंजी के बीच संघर्ष की समस्यायें भी बढ़ती जाती है।

10.2 उददेश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- औद्योगिक विवाद /संघर्ष क्या है ? इसको जान सकेगे।
- औद्यागिक विवाद एवं संघर्ष के कारणों एवं प्रभाव को जान सकेगें।
- औद्योगिक विवाद की रोकथाम एवं निस्तारण को समझ सकेगें।
- सामूहिक समझौता क्या है, उसकी प्रकृति, विषय को समझ सकेगें।
- सामूहिक समझौते के तौर तरीके, मुददों एवं निपुणता को समझ एवं जान सकेगें।
- औद्योगिक विवाद /संघर्ष के निस्तारण में 'श्रम प्रषासन' की विभिन्न समितियों की भूमिका को जान एवं समझ सकेगें।
- औद्योगिक विवाद अनिधिनियम 1947 के बारे में जान एवं समझ सकेगें।
- औद्योगिक संघर्ष और सहयोग की गतिशीलता के बारे में जानेगें।

10.3 औद्योगिक विवाद का अर्थ

'श्रम संघर्ष' का शाब्दिक अर्थ होता है, ''श्रम–जीवियों का झगड़ा'' परन्तु अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से श्रम संघर्ष का आशय सेवायोजक तथा श्रमिकों के बीच होने वाले मतभेदों से है, जिसके परिणामस्वरूप हड़ताले, तालाबंदी, छंटनी तथा अन्य इसी प्रकार की समस्यायें उठ खड़ी होती है '' औद्योगिक अशांति'' तथा औद्योगिक विवाद भी श्रम संघर्ष के ही पर्यायवाची है। **औद्योगिक विवाद अधिनियम, 147 की धारा (ज्ञ) के अनुसार** '' औद्योगिक विवाद वह विवाद या मतभेद है जो रोजगार देने या न देने अथवा रोजगार की षर्तो या श्रम की दषाओं के सम्बन्ध में विभिन्न सेवायोजकों के मध्य या विभिन्न श्रमिकों के मध्य या श्रमिकों और सेवायोजकों के मध्य विद्यमान है''

व्याख्या : इस परिभाषा के अनुसार केवल सेवायोजकों व सेवायुक्त के मध्य विवादों को ही औद्योगिक संघर्ष की श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया गया है। इस दृष्टि से यह वैधानिक परिभाषा अत्यन्त व्यापक व विस्तृत है।

औद्योगिक विवादों के कारण : अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से औद्योगिक विवाद के कारणों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है –

क्र0 सं0	I	II	III	IV
	आर्थिक कारण	प्रबन्ध एवं व्यवस्था	राजनीतिक कारण	मनोवैज्ञानिक कारण
1.	अधिक मजदूरी व मंहगाई की मांग	श्रम पूंजी सम्बन्ध	सरकार विरोधी हड़ताले	मानवीय व्यवहार का अभाव
2.	लाभांश की माग	श्रमिको की अशिक्षा	सहानुभूति हड़ताले	समाज में उचित स्थान आदि का अभाव
3.	कार्य दशायें	विवेकीकरण	नेताओं की गिरफ्तारी	
4.	भरती पद्वति	प्रबन्धकों का दुर्व्यवहार	राजनैतिज्ञों का प्रभाव	
5.	सुविधओं की मांग	समूहिक सौदेबाजी का अभाव	सरकारी नीतियों का विरोध	
6.	अवकाश व काम के घंण्टे	श्रम संघो को मान्यता न देना		
7.	श्रम संघ आन्दोलन	साम्यवादी विचारधारा अयोग्य नेतृत्व		

10.4 ओद्यौगिक विवादों के प्रभाव

ओद्यौगिक संघर्षो अथवा हड़तालों के परिणाम हानिकारक व लाभदायक दोनों ही होते हैं, अतः हम इनके दुष्परिणामों तथा लाभों की अलग–अलग व्याख्या करेगें।

प्रभाव : ओद्यौगिक संदर्भो का सीधा परिणाम हड़ता या तालाबंदी होता है। इनसे देश में अशान्ति का वातावरण पैदा हो जाता है फलतः ओद्यौगिकी श्रमिकों तथा जन समाज सभी को हानि उठानी पड़ती है।

श्रमिकों के लिये हानियां : ओद्यौगिक संघर्षो के कारण श्रमिकों को निम्नलिखित हानियां उठानी पड़ती है –

1. आय में कमी व पारस्परिक जीवन अस्त व्यस्त होना –श्रमिकों की आय, उनके स्वास्थ्य, रहने सहन के स्तर, पारस्परिक जीवन, आदि सभी पर हड़तालों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है कभी–कभी हड़ताल बहुत मंहगी पड़ जाती है विशेषता उस दशा में जबकि उन्हें हड़ताल के परिणाम स्वरूप पाये हुये लाभ की अपेक्षा त्याग अधिक करना पड़ता है। ऐसे

अनेक उदाहरण है जबकि श्रमिकों को हड़ताल की अवधि का पारिश्रमिक नहीं दिया गया यही नहीं, अपनी मांगों को पूरा करने के लिये उन्हे लाठियां व गोलियां भी सहन करनी पड़ती है। और कभी–कभी तो अपने प्राणों की बलि देनी पड़ती है।

2. **हड़तालों की असफलता से हांनिया :** हड़तालों की असफलता से श्रमिकों को और भी कंटकाकीर्ण परिस्थति का सामना करना पड़ता है हमारे देश में हड़तालों के असफल होने का प्रतिषत भी बहुत अधिक रहता है। 25 प्रतिशत से भी अधिक औद्योगिक संघर्ष में श्रमिको की हड़तालों से असफलता ही मिल। ऐसी दशा में श्रमिकों को अधिक हानि होती है। ऐसे निराश श्रमिक श्रम संघवाद में विश्वास खो बैठते हैं जिससे श्रम संघ आन्दोलन को गहरी चोट पहुंचती है। एकता के अभाव में मिल मालिक भी मनमानी करते है वे श्रमिकों की छटनी करने में सफल होते है। और इस प्रकार अन्यायपूर्ण छंटनी से बेकारी की समस्या और भी उग्र रूप धारण कर लेती है।

उत्पादकों के लिये हांनिया : औद्योगिक संघर्षो से उत्पादकों को भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित है –

1. **उत्पादन में कमी आना :** हड़ताल हो या तालाबंदी, इससे उत्पादन पूर्णतः रूक जाता है उत्पादन कम होने से बिक्रय भी कम होता है, बाजार छिन्न–भिन्न हो जाता है। और श्रम संघो द्वारा विरोध प्रचार से जनता उत्पादको के प्रति विश्वास घट जाता है।

2. **औद्योगिक अशान्ति :** जिस देश में छोटी–छोटी बातों पर श्रम संघ सेवायोजकों का विरोध करते है, तथा बिना पारस्परिक समझौते के एकदम हड़ताल ही कर बैठते हैं, वहां, प्रायः अशांति बनी रहती है।

3. **श्रम व पूंजी के बीच घृणा :** हड़तालों के परिणाम स्वरूप सेवायोजक श्रम–संघों का घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं जिनसे श्रम और पूंजी के बीच की खाई और गहरी हो जाती है ऐसी परिस्थिति में औद्योगिक उत्पादन प्रभावित होता है।

4. **समाज व राष्ट्र के लिये हानि :** श्रमिकों और मालिकों के अतिरिक्त जनता को भी हड़तालों की दशा में बहुत हानि उठानी पड़ती है। **अर्थशास्त्री ए0सी0पीगू के मतानुसार** ''जब किसी उद्योग में पूंजी और साधन पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से किसी हड़ताल या तालाबंदी से निष्क्रिय कर दिये जाते हैं, तो उसका प्रभाव राष्ट्रीय लाभांश पर पड़ता है, और फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में कमी आती है ''

1. **समाज में विषम वातावरण का निर्माण :** जब श्रमजीवी हड़ताल की घोषणा करते हैं, तब उन लोगों में तो विषम वातावरण ही होता है साथ ही समस्त समाज में एक अनिश्चितता का वातावरण पैदा हो जाता है। कहते हैं हड़तालें करना श्रमिकों का 'अंतिम शस्त्र होना चाहिए अच्छा हो यदि पारस्परिक समझौते से समस्या सुलझ जाये।

2. **जनसाधारण के लिये संकट :** जनोपयोगी संस्थाओं जैसे – परिवहन, बिजलीघर, वाटर वर्क्स आदि में हड़ताल होने की दशा में जन साधारण को असुविधा हो जाती है।

सुपरिणाम : औद्योगिक संघर्षों से केवल बुरे परिणाम ही नहीं निकलते है, कभी–कभी अच्छे परिणाम भी निकल आते है। औद्योगिक संघर्षो के कुछ सुपरिणामों के उदाहरण निम्नलिखित है–

1. **श्रमिकों में पारस्परिक सहयोग :** औद्योगिक संघर्षो के आशावादी दृश्टिकोण का सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि इससे उनके बीच एकता व सहयोग की भावना जागृत होती है उससे उनके श्रम संघ आंदोलन को भी काफी बल मिलता है इस प्रकार वे एक साथ मिलकर अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते है और सेवायोजकों के एकाधिकारी शासन पर रोड़े अटकाकर उसमें सुधार कर सकते है।

2. **श्रमिकों के आर्थिक हितों की रक्षाः** औद्योगिक संघर्षो का एक अन्य लाभ यह होता है कि श्रमिक अपने हितों की रक्षा करते हैं वे अपने लिए आवश्यक मजदूरी, बोनस व अन्य सुविधायें प्राप्त कर सकते हैं।

3. **कार्य करने की दशाओं में सुधार :** हड़तालों की सहायता से श्रमिक अपने काम की दयनीय दशाओं में सुधार कर लेते है।

4. **काम करने के घण्टों में कमी :** हड़तालों की ही सहायता से श्रमिक अपने काम के घंटो में कमी तथा सवेतन छुटिटयों में वृद्वि करा सकते है। इसके अतिरिक्त काम के मध्य में वे अवकाश की उचित व्यवस्था करा लेते है।

10.5 औद्योगिक विवादों की रोकथाम एवं निपटारा

औद्योगिक संघर्ष देश के किसी एक ही वर्ग के लिये अहितकर नही है, वरन इससे सम्पूर्ण देश अथवा समाज को क्षति पहुंचती है हमको तो वास्तव में ऐसे प्रयास करने चाहिए जिससे कि संघर्षों का निपटारा करने की नौबत ही न आये। अतः आवश्यकता इस बात की है कि औद्योगिक अंशान्ति को दूर करके शांति की स्थापना का कार्य सामान्य नही है वर्तमान प्रजातान्त्रिक युग में संघर्षों का निपटारा करने अथवा औद्योगिक शांति स्थापित करने में नाना प्रकार की असुविधाएं उठानी पड़ती है।

औद्योगिक विवादों की रोकथाम : औद्योगिक विवादो की रोकथाम के लिए प्रयोग में आने वाली प्रमुख विधियां निम्नानुसार है –

1. कार्य समितियां
2. स्वस्थ व सुदृढ़ संघ
3. लाभ अंशभागिता
4. सहभागिता

5. श्रम कल्याण अधिकारी ।
6. औद्योगिक शांति प्रस्ताव ।
7. त्रिपक्षीय श्रम व्यवस्था।
8. मजदूरी मण्डल
9. स्थायी आदेश
10. अनुशासन संहिता।
11. सामूहिक सौदेबाजी
12. परिवेदना निवारण पद्वति।
13. सुझाव पद्वति।

1. **कार्य समितियां :** कार्य समितियां औद्योगिक प्रजातंत्र की महत्वपूर्ण संस्थायें है। शाही श्रम आयोग ने औद्योगिक संघर्षों को रोकने तथा निपटाने के लिए एक आन्तरिक व्यवस्था के रूप में इन समितियों की महत्ता पर विशेष बल दिया था।

इनके तीन प्रमुख उददेश्य है 1. श्रम व पूंजी के बीच सहयोग हेतु व्यवस्था करना 2. औद्योगिक संघर्ष को रोकना ताकि शांतिपूर्ण वातावरण क अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादकता में वृद्वि की जा सके।

कार्य समितियों के प्रमुख कार्य निम्ननांकित है –

1. मजदूरी के सामान्य प्रश्नों को छोड़कर अन्य किसी भी मामले पर परामर्श देना, जो कि प्रबन्धकों अथवा श्रमिकों द्वारा प्रस्तुत किया जाये।
2. श्रमिको में अपनी दशाओं के प्रति, जिनमें उनका कार्य सम्पादित होता है, विस्तृत रूचि और अधिक उत्तरदायित्व पैदा करना ।
3. मान्यता प्राप्त सेवायोजक संघ और श्रमिक संगठनों के मध्य समझौते की शर्ते लागू करना ।
4. मिल मालिकों व श्रमिकों के बीच झगड़ा होने से रोकना तथा दोनों पक्षों में गलतफहमी न होने देना ।
5. दोनो पक्षों के मध्य पारस्परिक सहयोग बनाये रखने के लिये दिन प्रतिदिन की समस्याओं पर विचार विमर्श करना ।
6. श्रमिकों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिये प्रत्येक सम्भव प्रयास करना ।
7. श्रमिको की कठिनाइयों की जांच करना ।
8. श्रमिको की कठिनाइयों को प्रबन्धकों तक पहुंचाना तथा उन्हें दूर करवाने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करना।
9. श्रम न्यायालयों के निर्णय सरकारी आदेशों तथा विपत्तियों आदि के स्पष्टीकरण के विशय में प्रबन्धकों के साथ परामर्श करना।

10. कारखाने के सामाजिक जीवन का विकास करना, अस्पताल आदि के लिये धन संग्रह करना और खेलकूद व मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करना।

2. स्वस्थ व सुदृढ श्रम संगठन :औद्योगिक शांति की स्थापना में श्रम संघ भी रचनात्मक योगदान दे सकती है, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि उनका दृष्टिकोण झगड़ालू न होकर सहयोगात्मक होना चाहिए श्रम संघ के माध्यम से सामूहिक सौदेबाजी करके उपक्रम की अनेक समस्याओं को सुलझाया जा सकता हैं।

3. लाभ अंशभागिता : श्रमिकों को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त, लाभों में से कुछ पूर्व निश्चित भाग देकर भी उनके दृष्टिकोण को सहयोगात्मक बनाया जा सकता है ऐसे वातावरण में संघर्षो की आंशका भी नहीं रहती।

4. सहभागिता : सहभागिता से आशय, किसी औद्योगिक उपक्रम में, श्रमिकों को निर्णयन प्रक्रिया में भागीदार बनाना है। इस योजना के क्रियान्वयन से भी औद्योगिक संघर्षों की आशंका न्यूनतम रहती है।

5. श्रम कल्याण अधिकारी : इन्डियन फैक्ट्रीज एक्ट, 1948 के प्रावधानानुसार ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहां 500 या इससे अधिक श्रमिक कार्यरत हो, श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति करना अनिवार्य है यह अधिकारी भी औद्यागिक संघर्ष की रोकथाम करने में सहायक होता है।

श्रम कल्याण अधिकारी के प्रमुख कर्त्तव्य निम्नांकित है–

1. श्रमिकों व प्रबन्धकों के मध्य सम्पर्क सूत्र के रूप में काम करते हुए उनमें मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना।
2. श्रमिकों में व्याप्त असन्तोष तथा उसके कारणों से मालिकों को अवगत कराना एवं निवारणार्थ सुझाव देना।
3. श्रमिकों को उनके अधिकारों के साथ कर्तव्यों के प्रति भी जागरूमता पैदा करना ।
4. प्रबन्धकों व श्रमिकों के मध्य प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था बनाए रखना।
5. श्रम नीति के निर्माण में सहयोग देना।
6. औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिये प्रयास करना।
7. अवैध हड़ताल व तालावंदी को रोकने का प्रयास करना।
8. श्रम कल्याण योजनाओं की व्यवस्था में मदद करना।
9. कार्यसमिति, उत्पादन समिति तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषद आदि के निर्माण को प्रेरित करना तथा उनके कार्यो का निरीक्षण करना।
10. स्थायी आदेशों के परिपालन में सहयोग देना।

10.6 औद्योगिक शांति प्रस्ताव

भारत में औद्योगिक संघर्षो के नियंत्रण के उपायों में औद्योगिक शांति प्रस्तावों का विशेष महत्व है यहां 1942 व 1962 में दोबारा ऐसे प्रस्ताव पारित किए गए, जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है –

क–औद्योगिक शांति प्रस्ताव, 1947 : 1946 व 1947 में देश में भंयकर औद्योगिक अशांन्ति थी जिससे लगभग 17 लाख श्रम–दिवसों ही हानि हुई थी सभी क्षेत्रों में उत्पादन गिर गया था और फलतः यह नारा प्रचारित किया था कि उत्पादन करो अथवा नष्ट हो जाआगें। स्थिति से निपटने के लिये भारत सरकार ने दिसम्बर 1947 में दिल्ली में एक त्रिपक्षीय सम्मेलन आयोजित किया जिसमें नियोक्ता, श्रमिक व सरकार के प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा एक प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया जिसे औद्योगिक शांन्ति प्रस्ताव, 47 के नाम से पुकारा जाता है।

उददेश्यों की प्राप्ति हेतु संस्तुतियां : उददेश्यों की प्राप्ति के लिये सम्मेलन ने निम्नलिखित संस्तुतियां की –

1. औद्योगिक संघर्षों को एक न्यायपूर्ण व शांतिमय ढंग से सुलझाने के लिये वैधानिक व अन्य व्यवस्था का पूर्ण उपयोग किया जाये। जहां ऐसी व्यवस्था न हो वहां उसका प्रबन्ध तत्काल ही कर देना चाहिए। यह व्यवस्था सारे देश में यथा सम्भव एक सी होनी चाहिए।
2. उचित मजदूरी व कार्य दशाओं और पूंजी के लिए उचित पारितोषण का अध्ययन व निर्धारण करने के लिये केन्द्रीय, क्षेत्रीय एवं कार्यानुसार समितियां गठित की जाये, जैसे केन्द्रीय, क्षेत्रीय और इकाई उत्पादन समितियों का निर्माण करना ।
3. प्रत्येक औद्योगिक संस्था में कारखाना या कार्य समितियां गठित की जाये जिनमें प्रबन्ध और श्रमिकों के उचित रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि हो जिनका कर्तव्य, प्रतिष्ठान में मतभेद का निपटारा करना हो।
4. श्रमिकों के जीवन स्तर के सुधार की दशा में पहले कदम के रूप में औद्योगिक श्रमिकों की गृह समस्या पर तत्काल ध्यान दिया जायें इन घरों की लागत सरकार, सेवायोजक और श्रमिक उपयुक्त अनुपातों में परस्पर बांट लें श्रमिकों का भाग उनसे उचित किस्तों के रूप में वसूल किया जाये।

ख–औद्योगिक शांति प्रस्ताव 1962 : अक्टूबर, 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण के बाद देश में राष्ट्रीय सुरक्षा व उत्पादन में वृद्धि की ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया। 3 नवम्बर, 1962 को केन्द्रीय संगठनों की एक सभा हुई जिसमें उत्पादन में वृद्वि हेतु एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसे 'औद्योगिक शांति प्रस्ताव 1962 कहते हैं।

7.त्रिपक्षीय श्रम व्यवस्था : इस व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार सेवायोजकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके एक संस्था का निर्माण किया जाता है। जिसका उददेश्य औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिये विवादों की रोकथाम करना है इस हेतु श्रम समितियों की स्थापना की जाती है।

8.मजदूरी मण्डल : भारत में 1957 से मजदूरी बोर्ड की स्थापना की जाने लगी है इसमें सेवायोजकों व श्रमिकों के समान प्रतिनिधि होते हैं इसमें कुल 7 सदस्य है 2 श्रमिकों के 2 सेवायोजको के 2 स्वतंत्र तथा एक अध्यक्ष ।

प्रमुख कार्य : मजदूरी मण्डल के प्रमुख कार्य निम्नांकित है –

1. कर्मचारियों की श्रेणियां निर्धारित करना, जैसे पर्यवेक्षण सम्बन्धी, लेखन सम्बन्धी आदि।
2. उचित मजदूरी का कलेवर व उचित मजदूरी निर्धारित करना।
3. कार्यानुसार वेतन की आवष्यकता को ध्यान में रखना।
4. लाभांश के सिद्वान्तों का निर्धारण करना । भारत में आज तक लगभग 30 मजदूरी मण्डलों की स्थापना की जा चुकी है।

9.स्थायी आदेश : औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946 का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिकों की भरती, सेवा समाप्ति, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश आदि से सम्बन्धित शर्तों का नियमन करना है इसके अतिरिक्त सेवा शर्तों की सही व्याख्या करके, सेवायोजकों व श्रमिको को उनकी जानकारी देना एवं सम्मान स्तरीय कर्मचारियों की सेवा शर्तो में समानता लाना भी इसके उददेश्य हैं।

10.अनुशासन संहिता : अनुशासन संहिता का निर्माण 1958 में नैनीताल में आयोजित भारतीय श्रम सम्मेलन के 16वें अधिवेशन में किया गया था इसके 4 प्रमुख उददेश्य है –

1. मालिको व श्रमिकों में परस्पर सहयोग व सद्भावना तथा सदविश्वास उत्पन्न करने के लिये ऐच्छिक रूप से प्रेरित करना ।
2. श्रम संघो को स्वतंत्र विकास की सुविधा प्रदान करना।
3. औद्योगिक क्षेत्र में होने वाली उत्तेजात्मक कार्यवाहियों व अनुशासनहीनता को रोकना
4. जहां तक संभव हो छोटे–छोटे मोटे आंकड़ों को आपसी बातचीत, समझौते या ऐच्छिक पंच निर्णय द्वारा समाप्त करना।

11.सामूहिक सौदेबाजी : औद्योगिक संघर्षो के निपटारे का यह सरलतम व श्रेष्ठतम साधन है इसके द्वारा सेवायोजकों व श्रमिक, बिना किसी तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप के परस्पर विचार विमर्श द्वारा अपने मतभेदों विवादा को सुलझाने का प्रयास करते हैं।

12. परिवेदना – निवारण पद्वति : परिवेदना पद्वति के माध्यम से कर्मचारियों की दिन प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली परिवेदनाओं का प्रारम्भिक स्तरों पर ही सरलता व शीघ्रता से

निवारण कर दिया जाता है। इससे परिवेदना औद्योगिक विवाद का रूप धारण नहीं कर पाती।

प्रक्रिया : परिवेदन निवारण प्रक्रिया के अन्तर्गत कुछ निर्धारित सीढ़ियां होती है इसी आधार पर इस प्रणाली को सीढ़ी–दर सीढी प्रक्रिया कहते है। प्रमुख सीढ़िया इस प्रकार हैं–

1. जब किसी कर्मचारी को परिवेदना (या शिकायत) होती है तो वह (अर्थात पीडित पक्षकार) सर्वप्रथम अपने निकटतम बॉस अर्थात पर्यवेक्षक या फोर मैन के सम्मुख उसे प्रस्तुत करेगा।
2. यदि पर्यवेक्षक के निर्णय से वह सन्तुष्ट न हो तो अपील के लिये अपने विभागाध्यक्ष के पास जा सकता है।
3. फिर भी यदि संतोष न मिले, तो प्रकरण परिवेदना समिति को सौंपा जा सकता है।
4. यदि परिवेदना समिति प्रकरण को सुलझाने में असमर्थ रहती है तो शीर्ष प्रबन्ध को हस्तक्षेप करना होगा।
5. इस स्तर पर भी उचित निवारण न हो सके तो प्रकरण पंच निर्णय हेतु प्रस्तुत किया जा सकता है।

13. **सुझाव पद्वति** : इस योजना के अनुसार श्रमिकों से संस्था के उन्नयन हेतु सुझाव आमंत्रित किए जाते हैं इसका प्रमुख उददेश्य सेवायोजक व कर्मचारियों के मध्य मधुर सम्बन्धों का विकास करना होता है। जिससे औद्योगिक संघर्षो के पैदा होने की आषंका ही न रहे।

10.7 औद्योगिक विवादों का निपटारा

औद्योगिक विवाद के निपटारे की प्रमुख विधियां है तीन –

जांच पड़ताल	समझौता	पंच निर्णय
एच्छिक जांच पड़ताल	ऐच्छिक समझौता	एच्छिक पंच निर्णय
अनिवार्य जांच पड़ताल	अनिवार्य समझौता	अनिवार्य पंच निर्णय

1. **जांच पड़ताल** : किसी औद्योगिक संघर्ष का निपटारा करने से पूर्व, उससे सम्बन्धित आवश्यक तथ्यों का पता लगाना तथा उनकी जांच करना ही अनुसंधान या जांच–पड़ताल कहलाता है जांच पड़ताल हेतु सरकार द्वारा किसी बोर्ड या न्यायालय की स्थापना की जाती है। इस प्रकार के अनुसंधान को भी पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

क–ऐच्छिक जांच पड़ताल : इससे तात्पर्य उस जांच पड़ताल से है जो सेवायोजक अथवा श्रमिक या दोनों पक्षकारों की प्रार्थना पर नियुक्त मंण्डल या न्यायालय द्वारा की जाती है।

ख–अनिवार्य जांच पड़ताल : ऐसी जांच किसी सरकारी अधिकारी द्वारा सम्पन्न कराई जाती है इसके लिये सेवायोजकों या श्रमिकों को किसी प्रकार का आवेदन देने की आवश्यकता

नहीं होती । अनिवार्य जांच का उददेश्य संघर्ष से सम्बन्धित तथ्यों को ज्ञात करना तथा उनको प्रस्तुत करना होता है।

2.समझौता, मध्यस्थता या संराधन : प्रायः देखा जाता है कि सेवायोजक तथा श्रमिक अपने पारस्परिक मतभेदों को अपने आप बातचीत द्वारा अथवा श्रम समितियों व श्रम परिषदों की सहायता से दूर करने में असमर्थ रहते है। फलतः औद्योगिक शांति के भंग होने की आशंका रहती है। अतः इस स्थिति से वचने के लिये सरकार दोनों पक्षों को आपस में समझौता करने के लिये प्रेरित करती है। समझौता व्यवस्था के अन्तर्गत एक समझौता व्यवस्थापक नियुक्त कर दिया जाता है जो श्रमिकों व मालिको के बीच एक मध्यस्थ का कार्य करता है। वह सदैव इस बात का प्रयन्त करता है किसी संघर्ष से सम्बन्धित दोनों पक्ष किसी न किसी प्रकार से आपसी बातचीत के द्वारा आपस में समझौता कर लें।

ऐच्छिक समझौता : समझौता उस समय ऐच्छिक कहलाएंगा जबकि संघर्ष ग्रस्त दोनों ही पक्ष किसी तीसरे पक्ष के सम्मुख अपनी इच्छा से झगड़ा तय कराने के लिए जाते है यहां कानून किसी को बाध्य नहीं करता।

3. पंच निर्णय :अर्थ – पंच निर्णय की व्यवस्था के अन्तर्गत दो पक्षकारों के पारस्परिक मत भेदों या विवादों को किसी तीसरे निष्पक्ष पक्षकार को सौपकर औद्योगिक संघर्षो का निपटारा किया जाता है एवं शांति की स्थापना की जाती है। औद्योगिक संघर्षो को सुलझाने के लिये यह तरीका उसी परिस्थिति में अपनाया जाता है जबकि श्रमिक तथा सेवायोजक किसी मतभेद पर अपने आपसी वार्तालाप में किसी ऐसे निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ हो गए हो, जो दोनों पक्षों को मान्य हो। पंच निर्णय के अनुसार तृतीय पक्षकार जो निर्णय देता है, वह दोनों को मान्य होता है तथा न्यायालय के निर्णय के समान उसका स्वागत होता हैं

कुर्टब्राम के अनुसार "एक या अधिक वाहय पक्षकारों, जो न्यायालय के अतिरिक्त उनकी क्षमता में कार्य करने वाले न्यायिक अधिकारियों की तरह हो, के बंधनकारी निर्णय द्वारा संघर्षो का निपटारा करना पंच निर्णय कहलाता है।

पंच निर्णय के प्रकार –पंच निर्णय दो प्रकार के हो सकते हैं –

एच्छिक व अनिवार्य

ऐच्छिक निर्णय : इसमें विवाद की ऐच्छिक सुपुर्दगी पंच को दे दी जाती है ऐच्छिक पंच निर्णय के प्रमुख तत्व है।

1. ऐच्छिक पंच निर्णय के अन्तर्गत जब दो पक्षकार अपने विवादों को पारस्परिक सह–वार्ता द्वारा निपटाने में असमर्थ रहते है तब किसी मध्यस्थ या समझौता कराने वाले व्यक्ति की सहायता से उनके विवाद की किसी निष्पक्ष पंच के सुपुर्द कर दिया जाता है।

2. पंच रूप में तृतीय पक्ष की नियुक्ति संघर्षग्रस्त पक्षकारों की वास्तविक पारस्परिक सहमति या अनुबन्ध द्वारा की जाती है।

3. पंच को जांच व गवाही के बाद, निर्णय देने का अधिकार होता है।

4. अभिनिर्णय को पक्षकारी द्वारा मानना व लागू करना अनिवार्य नहीं होता हैं

5. निर्णय के विरूद्व अपील भी की जा सकती है।

2. अनिवार्य पंच निर्णय /अभिनिर्णयादेश : जब पक्षकार पारस्परिक समझौते द्वारा किसी निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ रहते है तो विवाद अनिवार्य पंच निर्णय के लिये सौंप दिया जाता है, जिसे अनिवार्य अभिनिर्णयादेश कहते है। इसके प्रमुख तत्व निम्नांकित है –

1. अनिवार्य पंच निर्णय के लिये उसी दशा में बाध्य किया जाता है जबकि विवाद के फलस्वरूप राष्ट्रीय शांति के भंग होने की आशंका हो अथवा देश में संकट कालीन स्थिति पैदा हो गयी है।

2. अनिवार्य पंच निर्णय के लिये पंच की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है।

3. अनिवार्य पंच निर्णय के समय पंच द्वारा मांगे गए सभी सबूत व साक्ष्य प्रस्तुत करने का विवाद के दोनों पक्षों का कर्त्तव्य होता है।

4. अनिवार्य पंच निर्णय के फैसले को मानना दोनों पक्षकारों का कर्त्तव्य होता है यदि कोई एक पक्षकार उसे स्वीकार नहीं करता, तो दूसरे पक्षकार को, इस निर्णय को, न्यायालय द्वारा लागू करवाने का अधिकार होता है।

10.8 श्रम प्रशासन की भूमिका

श्रमिकों की सुरक्षा के लिए बनाये गये कानूनों का उददेश्य तभी पूरा हो सकता है जबकि उनका पूरी तरह और निष्ठा के साथ पालन कराया जाए। अतः उस प्रशासनिक संगठन का बहुत महत्व होता है जो केन्द्रीय एवं राज्य के दोनों ही स्तरों पर श्रम से सम्बन्धित मामलों पर बनाये गये कानूनो आदि को लागू करने के लिये कायम किया गया है हर संगठन के कर्तव्य अलग–अलग होते हैं।

केन्द्रीय संगठन : श्रम विभाग का ढांचा व कार्य – यह विभाग औद्योगिक सम्बन्धो, मजदूरी, रोजगार, श्रमिकों के कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा आदि विषयों से सम्बन्धित है। जिनका उल्लेख भारत के संविधान की 7 वीं अनूसूची की संघ और समवर्ती सूचियों में किया गया है यह ऐसे मामलों में राष्ट्रीय नीतियां बनाने के लिए जिम्मेदार है। केन्द्रीय सूची के सम्बन्ध में भारत सरकार के श्रम एवं रोजगार विभाग की जिम्मेदारी पूरी ओर सीधे रूप में है। केन्द्रीय सूची के सम्बन्ध में भारत सरकार के श्रम एवं रोजगार विभाग की जिम्मेदारी पूरी और सीधे रूप से है समवर्ती विषयों के मामले में इस विभाग के कार्यो में नीति निर्धारण, समन्वय, नियन्त्रण एवं निर्देशन शामिल है रेलवे, खानो, तेल, क्षेत्रों, मुख्य बंदरगाहो, बैंको,

एक से अधिक राज्यों को छोड़कर जिनका उल्लेख संघ सूची में किया गया है। श्रम नीति को लागू करने के लिए राज्य सरकारें सामान्य रूप से जिम्मेदार है, किन्तु इस सम्बन्ध में उन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा समन्वय और निर्देशों का पालन करना होता है यह विभाग कर्मचारी राज्य बीमा, 1948 एवं कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध व्यवस्थाएं एक्ट 1952 के लागू करने और बीड़ी उद्योग तथा कोयला एवं दूसरी खानों में श्रमिक कल्याण कोष की व्यवस्था के लिए भी सीधे तौर पर जिम्मेदार है। केन्द्रीय सरकार में श्रम विभाग के 4 सम्बद्व कार्यालय, 10 अधीनस्थ कार्यालय, 4 स्वायत्व संगठन तथा 17 न्यायनिर्णयन निकाय है।

10.9 राज्य संगठन

सभी राज्यों ने अपने–अपने क्षेत्रों में प्रचलित श्रम कानूनों के प्रशासन और उन्हें लागू करने के लिये तथा श्रम से सम्बन्धित आंकड़ो सम्बन्धी और दूसरी रचना के इकटठा करने संकलन एवं प्रसार के लिये संगठन कायम किये है। सभी राज्यों ने अपने–अपने क्षेत्रों में श्रम कानूनों और कल्याण कार्यो के प्रषासन के आशयों के लिए श्रम कमिश्नर की नियुक्त किये है। उन्हें अपने कार्यो को करने में डिप्टी श्रम कमिश्नरों या और सहायक श्रम कमिश्नरों से मदद मिलती है। ज्यादातर राज्यों में कारखाना एक्ट 1948 का प्रशासन करने के लिये प्रधान कारखाना निरीक्षकों एवं भारतीय बायलर एक्ट 1923 के प्रशासन के लिये प्रधान वायलर निरीक्षकों की नियुक्ति भी की है श्रमिक हर्जाना एक्ट 1923 के अन्तर्गत श्रमिक हर्जाना आयुक्त एवं भारतीय श्रमिक संघ एक्ट 1926 के अन्तर्गत श्रमिक संघों के राजिस्ट्रारों की नियुक्ति भी ज्यादातर राज्यो में हो गयी है। प्रायः लेबर कमिश्नर विभिन्न अधिकारियों के कर्तव्यों को एक साथ संभालता है कुछ राज्यों में श्रम संख्यिकी को इकटठा करने के लिए खास संगठन बनाये गये है किन्तु कुछ राज्यों में ये अधिकारी ही इस कार्य को कर रहे है। विभिन्न राज्य सरकारों ने अनुसूचित रोजगार से सम्बद्व श्रमिकों को लागू होने वाले उपभोक्ता कीमत सूचकाकों का समय–समय पर पता लगाने के लिए न्यूनतम मजदूरी एक्ट 1948 के अन्तर्गत अधिकारियों की नियुक्ति किया है। निष्कर्ष के रूप में यह कह सकते है श्रम प्रषासन औद्योगिक क्षेत्र तथा औद्योगिक विकास हेतु महत्वपूर्ण है।

समझौता बोर्ड गठन : समझौता बोर्ड के गठन का पूर्ण अधिकार समूचित सरकार को ही प्राप्त है, जो इसकी घोषणा शासकीय राजपत्र में करेगी। बोर्ड के सदस्यों की संख्या या तो 3 या 5 अर्थात सदैव विषम ही होगी। नियोजक तथा कर्मकार अपने प्रतिनिधियों के चयन करने में पूर्ण स्वतन्त्र होते है। इच्छानुसार वे किसी भी एक या दो सदस्य को बोर्ड की सदस्यता के लिये भेज सकते है। स्मरण रहे कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर–2 होगी। लेकिन बोर्ड का अध्ययन किसी भी पक्ष का प्रतिनिधित्व न करने वाला पूर्ण रूप से एक स्वतंत्र व्यक्ति होगा। उसकी नियुक्ति समुचित सरकार अपने विवेक से करेगी।

दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को समझौता बोर्ड में रखने का उददेश्य यह है कि वे एक स्थान पर बैठकर उपयुक्त ढंग से अपने पक्ष का स्पष्टीकरण मतभेदों को प्रकट तथा समर्थन कर और समाधान का तरीका ढूढ निकाले।

बैठकें : आवश्यकतानुसार समय–समय पर बोर्ड की बैठक हुआ करेगी। लेकिन कोरम का पूरा होना अनिवार्य होगा। यदि बोर्ड 5 सदस्सीय है तो तीन और यदि मात्र 3 सदस्यी हो तो 2 सदस्यों की उपस्थिति कार्यवाही आगे बढाने के लिये कोरम मानी जायेगी। अध्यक्ष के अनुपस्थित रहने पर भी बोर्ड की बैठक हो सकती है किन्तु सकुंचित सरकार द्वारा बोर्ड को यह सूचना दे देने पर कि उसमें अध्यक्ष या किसी सदस्य की सेवायें प्राप्त न हो सकेगी, बोर्ड तव तक कार्य नहीं करेगा जव तक यथास्थिति नया अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त नहीं कर लिया जाता है।

बोर्ड के कार्य : धारा 13 बोर्ड के कार्यो का उल्लेख करती है बोर्ड के कार्य की प्रकृति न्यायिक नहीं होती । कोई समुचित सरकार द्वारा किसी विवाद के निर्दिष्ट करने पर ही अपना कार्य आरम्भ करेगा, विवाद के सारे तथ्यों की अविलम्ब जांच और उसके समाधान का यथाशीघ्र प्रयास करेगा, तथा दोनों पक्षों के हितों को ध्यान में रखकर उन सभी उपायों द्वारा प्रबन्ध करेगा जिससे विवाद का कोई मान्य समझौता निकलआये यदि पक्षकारों के बीच कोई मान्य सदभावपूर्ण समझौता हो सका है तो समझौता बोर्ड का यह कृत्य है कि वह तत्सम्बन्धी प्रतिवेतन समुचित सरकार को यथाशीघ्र प्रेषित करें। और प्रतिवेदन के साथ ही विवाद से सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित समझौता का ज्ञापन भी संलग्न किया जाना आवष्यक है। यदि किसी कारण से समझौता नहीं हो सका, तो प्रतिवेदन में बोर्ड अपने द्वारा किए गये प्रयासों और कारणों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए विवरण प्रस्तुत करेगा। सरकार के पास प्रतिवेदन या समझौता पत्र प्रेषित करने का समय अधिनियम द्वारा निर्धारित 60 दिनों का ही है लेकिन 60 दिनों से अधिक समय की आवश्यकता महसूस करन पर उसे बढ़ाने के लिए दोनों पक्षों की लिखित एवं हस्ताक्षरित सहमति आवश्यक होगी।

समझौता प्रक्रिया न्याय निर्णयन की पद्वति नहीं है क्योंकि जब समझौता की विफलता का प्रतिवेदन समुचित सरकार को प्रस्तुत किया जाता है तो उस आधार पर यह विवाद को श्रम न्यायालय या औद्योगिक अधिकरण को संदर्भित कर सकती है अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि समझौता अधिकारी के कर्तव्यों को न्याय कर्त्तव्यों की संज्ञा दी जाए तो वह अनुपयुक्त होगा क्योंकि इस धारणा के परिणामस्वरूप पक्षकारों में समझौता कराना सम्भव न हो सकेगा।

पंच–निर्णय : धारा 10 क सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा अपने विवाद को निर्णय हेतु निर्देशित करने का उपबन्ध करती है यह 1956 के संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ी गयी है। यह धारा नियोजक और कर्मकारों को पूरी छूट प्रदान करती है कि यदि वे चाहे तो लिखित ठहराव द्वारा पंच निर्णय हेतु विवाद को निर्देशित करा सकते है। जहां पक्षकार पंच–निर्णयार्थ विवाद को निर्दिष्ट करने के लिए सहमत हो गए है तो विवाचक मामले को निर्णीत कर सकता है व शर्ते समुचित सरकार धारा 10 के अधीन शक्ति का उपयोग नही कर रही है आस्ट्रेलिया में पंचनिर्णय का प्रवधान अनिवार्य है।

विवाचन ठहराव औद्योगिक विवाद (केन्द्रीय) नियम, 1957 के नियम संस्था 7 में यथाविदित पद्वति से प्रस्तुत किया जाना चाहिए । पंथो की लिखित सहमति सम्बन्धी अधिकारी को सुपुर्द की जानी चाहिए।

पंच निर्णय हेतु निर्देशन सम्बन्धी शर्ते :

1. औद्योगिक विवाद का अस्तित्व में होना या उसकी आशंका होना आवश्यक है।
2. पहले कोई रिफरेन्स नहीं किया गया है ।
3. विवाचकों के ठहराव में पंचों का नाम अवश्य निर्दिष्ट होना चाहिए।

विवाचक पंच की नियुक्ति : नियोजक एवं कर्मकार समझौता करके पूर्ण व्यस्क तथा स्वास्थ्य मस्तिष्क व्यक्ति को पंच बना सकते है ये पंच उन्हीं में विश्वास पात्र होगें वैसे अधिनियम में उनकी योग्यता का उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी अन्य उपबन्धों को देखते हुए यह कहना उपयुक्त होगा कि औद्योगिक मामले का ज्ञान अनुभव रखने वाले पंच चुनना श्रेयस्कर होगा। पंच निर्णय के लिये दोनो पक्षकारों की लिखित सहमति होनी आवश्यक है। उस पर स्वतः नियोजक या उसका अधिकृत अभिकर्ता हस्ताक्षर करेगा। कर्मकारों की ओर से समझौता –पत्र पर हस्ताक्षर संघ के अधिकारी करेगें या संघ के अभाव में कोई भी 5 व्यक्ति चयन या निर्वाचन कर्मकार समूह में सर्वसम्मति या बहुमत से किया है न्यायाधीशों या केन्द्रीय या राज्य सरकारों के पैनल में से किसी को पंच चुना जा सकता है। बाहरी व्यक्ति श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण को भी पंचनिर्णय का काम सौंपा जा सकता है। पक्षकारों के समझौता पत्र पर हस्ताक्षर न किये जाने पर वह अपूर्ण एवं अप्रभावकारी माना जायेगा। एक समय के जाने माने मजदूर नेता तथा भू0प्र0 राष्ट्रपति स्व0 वी0वी0 गिरि न अनिवार्य समझौते की अपेक्षा ऐच्छिक समझौते पर अधिक जोर दिया है क्योंकि अनिवार्य समझौता श्रमिको के हड़ताल अधिकार को समाप्त करता है लेकिन यह धारणा गलत है अभी अनिवार्य पंथ–निर्णय का समय नहीं आया है।

धारा 10 क (5) में उपबंध है कि इस धारा में नियुक्त विवाचक के कार्य क्षेत्र पर विवाचन अधिनियम 1940 के उपबंध लागू नहीं होगें।

पंचो की संख्या : पंचों की सख्या समझोते के ऊपर निर्भर करती है पहले यदि सदस्यों की संख्या बरावर होती थी तो पंच निर्णय देने में कभी–कभी कठिनाई होती थी क्योंकि वे समान संख्या में विभक्त हो जाते थे। अतः पक्षकार सरकार को आवेदन देने के लिये विवश होते थे कि विवाद को श्रम न्यायालय था अधिकरण को निदेशित किया जाये इस समस्या के निवारण हेतु सन् 1982 ई0 में संसोधन द्वारा धारा 10 क में धारा (1–क) जोड़ी गयी। जो उपबंध करती है कि पंच–निर्णय के समझौते से सम संख्या वाले पंचों 'अम्पायर' के रूप में एक दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति की जायेगी । जो निर्दिष्ट विवाद पर तभी निर्णय देगा जब पंच समान रूप से मत विभाजन की स्थिति में आ गये हों और अम्पायर का कांस्टिंग वोट निर्णायक एवं निर्णय प्रभावी माना जायेगा।

समझौते का प्रेषण एवं प्रकाशन :सन् 1964 से अन्य पक्षकारों के लिये समझौता की एक प्रति सरकार या क्षेत्रीय समझौता अधिकारी के पास भेजना आवश्यक है। समुचित सरकार उस प्रति को प्राप्त करने के 30 दिन के भीतर उसे राजपत्र में प्रकाशित कर देगी, ताकि सभी लोगों को इसकी जानकारी हो जाए और यदि उसी विवाद को स्वयं सरकार निर्दिष्ट करने वाली हो तो न करे समझौते का प्रकाशन अनिवार्य है।

समझौता कब मान्य होगा : धारा 10 (क) (1) से स्पष्ट है कि समझोते के आधार पर विवाद पंच या पंचों को तभी निर्णतार्थ सुपुर्द किया जा सकता है जब उपयुक्त सरकार ने ऐसा विवाद किसी श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण को निर्देशित नहीं किया है ऐसे समझौते के लिये आवश्यक नहीं है कि विवाद वास्तव में अस्तित्व में आ गया है यदि उसके लिये वातावरण उपस्थित है और उसके उत्पन्न होने की प्रवल सम्भावना दिखती है तो भी मामला पंच निर्णय के लिये सौंपा जा सकता है।

अभिनिर्णयादेष /अनिवार्य पंच निर्णय : जब पक्षकार पारस्परिक समझौते द्वारा किसी निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ रहते है तो विवाद अनिवार्य पंच निर्णय के लिये सौंप दिया जाता है। जिसे अभिर्न्णयादेष कहते है। इसके प्रमुख तत्व निम्नांकित है –

1. अनिवार्य पंच निर्णय के लिये उसी दषा में वाध्य किया जाता है जबकि विवाद के फलस्वरूप राष्ट्रीय शांति के भंग होने की आंशका हो अथवा देश में संकटकालीन स्थिति पैदा हो गयी।
2. अनिवार्य पंच निर्णय के लिये पंच की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है।
3. अनिवार्य पंच निर्णय के समय पंच द्वारा मांगे गए सभी सबूत व साक्ष्य प्रस्तुत करने का विवाद के दोनो पक्षों का कर्तव्य होता है।
4. अनिवार्य पंच–निर्णय के फैसले को मानना दोनौ पक्षकारों का कर्तव्य होता है यदि कोई एक पक्षकार उसे स्वीकार नहीं करता, तो दूसरे पक्षकारों को, इस निर्णय को, न्यायालय द्वारा लागू करवाने का अधिकार होता है।

भारत में अनिवार्य पंच निर्णय : हमारे देश में अनिवार्य पंच निर्णय की व्यवस्था अत्यन्त अलोकप्रिय है। ''विवाद का निर्णय करने के लिये किसी तृतीय पक्ष का मुहं देखना औद्योगिक शांति की दृष्टि से उचित नहीं है तथा यह संस्था की आत्म निर्णायकता को समाप्त करता है'' विगत दस वर्षों में एक भी औद्योगिक विवाद का निर्णय अनिवार्य पंच निर्णय द्वारा नहीं हुआ है।

औद्योगिक संघर्ष अधिनियम 1947 के अन्तर्गत अनिवार्य पंच निर्णय के सम्बन्ध में निम्न तीन व्यवस्थायें है –

1. **श्रम ट्रिब्यूनल :** 1956 के संशोधित औद्योगिक संघर्ष अधिनियम के अन्तर्गत सरकार औद्योगिक झगड़े तय करने के लिये एक या अधिक श्रम न्यायालयों की स्थापना कर सकती है। इस न्यायालय में एक जज होगा जो भारत के किसी न्यायालय में न्यूनतम 7 वर्ष तक जज के पद पर कार्य कर चुक हो अथवा 5 वर्ष तक अध्यक्ष रह चुका हो। यह श्रम न्यायालय निम्न मामलों पर निर्णय दे सकता है।
2. सेवायोजकों द्वारा स्थायी आदेशों के अन्तर्गत जारी किए गए आदेश की शुद्वता एवं बाद्वता।
3. किसी श्रम जीवी को निकालना तथा गलती से निकाले हुए श्रमिक को पुनः रखना तथा उसकी क्षतिपूर्ति तय करना ।
4. स्थायी आदेशों के आधार पर सेवायोजकों के किसी आदेश की वैधानिकता प्रमाणित करना ।
5. किसी प्रचलित रियायत या सुविधा को वापस लेना ।
6. हडतालों व तालाबन्दियों की वैधानिकता या अवेधानिकता को प्रमाणित करना
7. अन्य विशय ।

2. औद्योगिक ट्रिब्यूनल : इस ट्रिब्यूनल का गठन प्रादेशिक सरकारों द्वारा औद्योगिक विवादों पर निर्णय देने के लिए किया जाता है इसे निम्नांकित मामलों पर निर्णय देने का अधिकार होता हैं।

1. मजदूरी, उसके भुगतान की अवधि व नीति सम्बन्धी मामले।
2. लाभांश लाभ अंश भागिता तथा प्राविडेन्ट फण्ड सम्बन्धी मामले
3. क्षतिपूर्ति तथा अन्य भत्तों से सम्बन्धी मामले ।
4. काम के घंटे तथा विश्राम मध्यान्तर के प्रकरण
5. अनुशासन हेतु नियम सम्बन्धी मामले ।
6. अन्य मामले ।

इस ट्रिब्यूनल में वे मामले जाते है जिन संघर्षो में 100 से अधिक श्रम जीवी सम्मिलित हो इसका सभापति वही व्यक्ति हो सकता है जो किसी अन्य न्यायालय का जज रहा हो अथवा कम से कम दो वर्ष तक लेवर अपीलेट ट्रिब्यूनल या अन्य ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष रहा है।

3.राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल : जब आवश्यकता होती है, तब केन्द्रीय सरकार नेशनल ट्रिब्यूनल की स्थापना करती है इसके कार्यक्षेत्र में राष्ट्रीय महत्व के मामले अथवा ऐसे मामले जो एक से अधिक राज्यों से सम्बन्धित है, जाते है इसके सम्मुख जब कोई विवाद विचारणीय होता है, तो उस समय किसी अन्य न्यायालय या औद्योगिक ट्रिब्यूनल को निर्णय देने का अधिकार नहीं होता इसका अध्यक्ष केवल वही व्यक्ति हो सकता है जो औद्योगिक ट्रिब्यूनल का सभापति होने की योग्यता रखता हो।

केन्द्रीय उद्योग क्षेत्र के विवादों को निपटाने के लिये 10 औद्योगिक ट्रिब्यूनल एवं एक श्रम न्यायालय स्थापित किए गये है। इनमें से 3 धनवाद, 2 बम्वई और एक–एक दिल्ली, कलकत्ता, जबलपुर , चण्डीगढ व कानुपर में है। राज्यों के अपने अलग न्यायाधिकरण व श्रम न्यायालय है। कलकत्ता का ट्रिब्यूनल और श्रम न्यायाल तथा वम्बई का औद्यौगिक ट्रिब्यूनल एवं श्रम न्यायल नेशनल ट्रिब्यूनल के रूप में कार्य कर रहे हैं।

10.10 सामूहिक सौदेबाजी अर्थ

ऐतिहासिक दृष्टि से सामूहिक सौदेबाजी की अवधारणा का विकास सामूहिक सम्बन्धों के विकास के तृतीय चरण में हुआ। उत्पादन कार्य को प्रारम्भिक स्थिति में फल की प्राप्ति शक्ति के आधार पर की जाती थी दूसरी स्थिति में सामाजिक विधान के आधार पर और तीसरे तीसरी स्थिति में पारस्परिक विचार–विमर्श एवं समझौते के आधार पर सामूहिक समझौते का निर्धारण एवं फल का वितरण प्रारम्भ हुआ। यही से सामूहिक सौदेबाजी का सूत्रपात हुआ।

समूहिक सौदेबाजी – दो शब्दों की योग है – सामूहिक और सौदेबाजी सामूहिक शब्द का तात्पर्य है अनेक वर्गो या व्यक्तियों का समूह सेवायोजक या मालिकों और कर्मचारियों या श्रमिको का समूह और सौदेबाजी का अर्थ है हिला डुलाकर अनुबंध करना। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया के अन्तर्गत सेवायोजक अथवा उनके प्रतिनिधि और श्रमिक अथवा उनके संघ के प्रतिनिधि किसी विवाद के प्रकरण पर चर्चा करते है, गहन विवेचना करते है तथा समझौता करते है। वार्तालाप की इस प्रणाली के माध्यम से श्रमिक अपने हितों का संरक्षण तथा उनमें वृद्वि करने का प्रयास करते है।

परिभाषायें :

विभिन्न संगठनों, विशेषज्ञों व विद्वानों ने सामूहिक सौदेबाजी को विभिन्न ढंगो से परिभाषित किया है, कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित है।

1. **निर्माताओं का राष्ट्रीय संघ के अनुसार** –''सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रबन्ध एवं श्रमिक एक दूसरे की समस्याओं एवं दृष्टिकोण को सामने ला सकते है तथा सेवा सम्बन्धों की रूप रेखा का विकास करते है दोनों पक्ष परस्पर सहयोग, प्रतिष्ठा तथा लाभ की दृष्टि से काम करते है''

2. **एडविन फिलापों** –''सामूहिक सौदेवाजी से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत श्रम संगठनो के प्रतिनिधि तथा व्यावसायिक संगठन के प्रतिनिधि मिलते है तथा एक समझौता या अनुबन्ध करने का प्रयास करते है जो कर्मचारियों एवं सेवायोजक संघ के सम्बन्धों की प्रकृति का निर्धारण करता है''

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति को स्पष्ट किया जा सकता है –

1. सामूहिक सौदेबाजी दो पक्षकारों के मध्य विवादों को सुलझाने की एक विधि है।
2. यह प्रंबध की एक प्रणाली है।
3. औद्योगिक प्रशासन का यह एक प्रारूप है।
4. श्रम को बेचने के लिए यह अनुबन्ध करने का एक साधन है।
5. यह कि सामूहिक समानता व वैधानिक सौदेबाजी का विकल्प है।
6. सामूहिक सौदेबाजी नियम बनाने वाली प्रक्रिया है।
7. सौदेबाजी में दोनो पक्ष भाग लेते है तृतीय पक्ष नहीं।
8. यह कि सामूहिक प्रक्रिया है। जिसमें श्रमिकों व सेवायोजकों के प्रतिनिधि भाग लेते है।
9. यह एक गतिशील प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है क्योंकि व्यवसाय में प्रतिदिन नवीन चुनौतियां व समस्यायें आती रहती है एवं उनके समाधान हेतु यह प्रक्रिया सदैव चलती रहती है।
10. समूहिक सौदेबाजी से व्यावहारिक रूप से औद्योगिक जनतंत्र की भावना जागृत होती है।
11. यह अन्तर अनुशासन था स्वशासन का एक सुन्दर रूप है जो औद्योगिक संस्थाओं में पाया जाता है।
12. यह एक लोचपूर्ण प्रक्रिया है जिसमें कोई भी पक्ष अधिक कठोर रूप नही अपना सकता।
13. इस प्रक्रिया में अनेक गतिविधियों को शामिल किया जाता है एडविन फिलापों के मतानुसार, ''सामूहिक सौदेबाजी होने, मांग प्रस्तुत करने, विचार विमर्श करने, समीक्षा करने, प्रति–प्रस्ताव करने, मोलभाव करने, फुसलाने, धमकाने एवं ऐसी अनेक गतिविधियों की प्रक्रिया है''
14. इस प्रक्रिया का परिणाम श्रम अनुबन्ध नहीं, वरन एक व्यापार अनुबन्ध है।
15. इसमें बाहय हस्तक्षेप नही होता

16. समझौता दोनों पक्षकारों के सामूहिक सहयोग प्रतिष्ठा एवं लाभ की वृद्वि से किया जाता है।
17. सामूहिक सौदेबाजी दो सामान्य एवं परस्पर प्रतिकूल हित रखने वाले पक्षकारों के मध्य एकता समन्वय की प्रक्रिया है।

10.11 सामूहिक सौदेबाजी की विषय–सूची

यद्यपि ऐसी कोई खास व्यवस्था नहीं है कि सामूहिक सौदेबाजी में कौन–सी मदें शामिल की जाये और कौन सी इसके बाहर रहें, फिर भी मूल रूप में कुछ समस्यायें जैसे– प्रबन्धकीय निर्णय और नीतियां इसके क्षेत्र के बाहर रहती है। सामूहिक सौदेबाजी में श्रमिक संघो की सुरक्षा, मजदूरी प्रमोशन, ट्रांस्फर, काम के घंटे, काम की दशायें, छुटिटयां, सुरक्षा एवं स्वास्थ्य, आदि से सम्बन्धित समस्याएं शामिल की जाती है। इसमें श्रमिकों ओर सेवायोजकों के बीच बढ़ते हुए विवादों को दूर करने के ढंगों में सुधार की भी व्यवस्था है इस तरह सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत विविध विषयों को शामिल किया जा सकता है।

मुददे : प्रारम्भिक काल में सामूहिक सौदेबाजी का प्रयोग मजदूरी कार्य के घंटे एवं रोजगार से सम्बन्धित शर्तों से सम्बन्धित था किन्तु आजकल सामान्यतः सवेतन अवकाश, छुटिटयां, अधिक समय कार्य के लिये वेतन, जबरी छुट्टी का नियमन, सवेतन बीमारी अवकाश, उत्पादन प्रमाव, पेंशन, वरिष्ठता, पदोन्नतियों, स्थानान्तरण तथा अन्य मुददे सामूहिक सौदेबाजी में सम्मिलित किये जाते हैं। इसमें आनुवंशिक लाभ, बीमारी व मातृत्व लाभ आदि मुददे भी सम्मिलित किए जाते है। सामूहिक सौदेबाजी अव संस्थागत हो चुकी है द्वितीय विश्व युद्व के उपरान्त सामूहिक सौदेबाजी काफी विकसित है। डेबी के अनुसार ''सामूहिक सौदेबाजी में समझौता, प्रशासन निर्वचन, लिखित समझौता के अनुसार कार्य करना तथा उन्हें लागू करने और सामूहिक समन्वय क्रियायें सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त , मजदूरी और वेतन दर का निर्धारण, कार्य के घंटे तथा नियोजन की दशाएं आदि समस्याएं भी सामूहिक सौदेबाजी के मुददों में सम्मिलित है।

सामूहिक सौदेबाजी सम्बन्धी मुददों की संक्षिप्त सूची –

समझौता तथा इसका प्रशासन :

- प्रबन्धकीय अधिकार एवं दायित्व
- संघीय सुरक्षा एवं स्थिति
- इकरार को लागू करना
- शिकायत प्रक्रिया ।
- मध्यस्थता तथा पंच फैसला

काम की सुरक्षा, पदोन्नति तथा छंटनी :

- वरीयता का प्रावधान
- भाड़ा तथा छंटनी प्रक्रिया
- प्रशिक्षण एवं पुनः परीक्षण
- विच्छेद भुगतान
- ओवर टाइम कार्य का आवंटन

मजदूी का निर्धारण :

- मूल मजदूरी की दरें एवं मजदूरी की संरचना ।
- प्रेरणा व्यवस्था
- ओवर टाइम काम के लिए मजदूरी की दर
- दो शिफ्टों में अन्तराल
- जीवन–निर्वाह सम्बन्धी समायोजन

सीमावर्ती लाभ :

- पेंशन योजना
- स्वास्थ्य एवं बीमा योजना
- बीमारी पर छुटटी
- छुटिटयां एवं अवकाश
- लाभ में भागीदारी

कम्पनी की क्रियायें :

- काम के नियम
- अनुशासन प्रक्रिया
- उत्पादन दर एवं मानक
- सुरक्षा एवं स्वास्थ्य
- अवकाश की अवधि
- तकनीकी परिवर्तन

10.12 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947

इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम ''औद्योगिक विवाद अधिनियम'' है सन 1947 में पारित यह अधिनियम 1 अप्रैल 1947 को अमल में आया और सम्पूर्ण भारत में लागू है यह केवल धारा 2 (क) में परिभाषित औद्यागिक विवादों तक ही समिति है, अन्य प्रकार के विवादों से इसका

कोई सम्बन्ध नहीं है व्यक्ति का अभिप्राय ऐसे कर्मकार से है, जो किसी स्थापन में नियोजित है। प्राईवेट एवं पब्लिक सेक्टरों में स्थापित ओद्योगिक स्थापनों में यह समान रूप से अपना क्षेत्राधिकार तथा बाध्यता रखता है सभी औद्योगिक विवाद, जिनका सम्बन्ध ऐसे कर्मकारों से है, जो केन्द्रीय सरकार के अधीन नियोजित है, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही सुलझायें जायेगें।

औद्योगिक विवाद अधिनियम एक ऐसा विधान है जो किसी उद्योग में श्रमिकों और प्रबन्ध मण्डल के बीच शांति और सुमेल लाने के लिए आशयित है और उस प्रयोजन के लिए वह अधिनियम विवादों के अन्वेषण और समझौते के लिए उपबंध करता है। भारतीय मानक संस्थान के कर्मकार बनाम भारतीय मानक संस्थान का प्रबन्ध तन्त्र के मामले में उच्चतम न्यायालय में यह मत व्यक्त किया हैं ।–

10.12.1 औद्योगिक विवाद के आवश्यक तत्व

1. कर्मचारी तथा नियोक्ता में संविदाजनित सम्बंध विद्यमान होने चाहिए। इनमें सेवा सम्बन्धी आपसी अनुबंध होना चाहिए तथा श्रमिक वास्तव में कार्यरत होना चाहिए।
2. विवाद श्रमिकों द्वारा अथवा उनके संगठनों द्वारा प्रस्तुत किये गये हो, किन्तु नियोक्ता द्वारा उन पर विचार न किया गया है।
3. यह विवाद नियोक्ताओं के मध्य हो सकता है जैसे मजदूरी की दर में स्पर्धा श्रमिकों तथा नियेक्ताओं के मध्य हो सकता है। जैसे वर्गीकरण में उत्पन्न विवाद तथा कार्यबंटन के साथ उत्पन्न विवाद तथा श्रमिकों एवं श्रमिकों के मध्य हो सकता है।
4. विवाद नियोजन अथवा अनियोजन से सम्बन्धित भी हो सकता है तथा नियोजन की शर्तो एवं दशाओं से भी अधिकारियों एवं प्रबन्धकों में कार्य की शर्तो एवं दशाओं सम्बन्धी विवाद को औद्योगिक विवाद नहीं कहा जाता ।
5. विवाद ऐसे उद्योग में प्रस्तुत किये जाने चाहिए जो कार्यरत है।
6. अधिनियम एवं वैधानिक निर्णय के आधार पर औद्योगिक विवाद निम्न किसी भी बात को लेकर उत्पन्न हो सकते हैं।
    1. स्थायी आदेशों के औचित्य के सम्बन्ध में विवाद।
    2. छंटनी : नियोक्ता द्वारा श्रमिक को किसी दण्ड अथवा अभियोग के सेवा से प्रथक करना जो व्यवसाय वंद करने पर की जाती है व्यवसाय बंद करने का अर्थ किसी स्थान विशेष से व्यवसाय को बंद करना नहीं वरन सम्पूर्ण व्यवसाय की समाप्त से है। जबरी छुटटी (कच्चेमाल, ईधन तथा पूंजी के प्रभाव, अधिक माल जमा होना, अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारण से नियोक्ता द्वारा श्रमिक

को कार्य देने में असमर्थता प्रकट करना सम्बन्धित है। जिसके अन्तर्गत श्रमिक को कार्य मुक्त कर दिया जाता है।)

निलम्बित श्रमिक को पुनः कार्य पर लेना, उसे निकालना अथवा तत्सम्बन्धी क्षतिपूर्ति के प्रश्न को लेकर विवाह उत्पन्न हो सकता है।

3. किसी सरकारी घोषणा, निर्णय या विवाद के प्रतिफल का लाभ श्रमिक को देने से मना करने पर सामायिक नियुक्त वाले श्रमिक को सामयिक भत्ता देने से इन्कार करना, आदि ।
4. मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित करने, भुगतान विधि तथा श्रमिक के किसी अधिकार का हनन करने के प्रश्न पर ।
5. तालबंदी जब नियोक्ता श्रमिक को कार्य देने से मना कर दे तथा उन्हें कार्य स्थल पर जाने की अनुमति न दे। क्षतिपूर्ति के दावे सम्बन्धी तथा किसी हड़ताल को अवैध घोषित करने की समस्या को लेकर विवाद उत्पन्न हो सकता हैं
6. नगरपालिकाओं एवं उनके कर्मचारियों के मध्य हुए विवाद
7. प्रतिस्पर्द्धा संगठनों के मध्य विवाद ।
8. कर्मचारी एवं नियोक्ता के मध्य विवाद।

निम्न समस्याओं को विवाद नहीं कहा जा सकता है –

1. किसी श्रमिक को दण्डित करने अथवा सेवामुक्त करने सम्बन्धी निर्णय को लेकर प्रस्तुत विवाद औद्योगिक विवाद नहीं है।
2. विवाद जो किसी श्रम संघ द्वारा या संघ के अभाव में श्रमिकों के किसी समूह द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया हो।
3. किसी ऐसे संस्थान के प्रति प्रस्तुत विवाद जो कार्यारम्भ की स्थिति में भी नहीं दिया हो।
4. श्रमिक द्वारा नहीं चाही जाने वाली मांगों के लिये प्रस्तुत विवाद ।
5. औद्योगिक श्रमिको के लिये अवासीय योजनाओं को लेकर प्रस्तुत विवाद।

10.13 औद्योगिक विवाद के अनुभाग

जब कोई विवाद व्यापक रूप धारण कर लेता है तो हड़ताल की जाती है, प्रदर्शन किए जाते है, धरना दिया जाता है उस दशा में परिवाद औद्योगिक विवाद वन जाता है इस प्रकार उपरोक्त सभी तत्व औद्योगिक विवाद के अंग है।

1. हड़ताल – अस्थायी रूप से कार्य की रूकावट है जो ''श्रमिको द्वारा अपने असंतोष को व्यक्त करने, अपनी मांगे स्वीकृत करवाने तथा कार्य की दशाएं सुधारने हेतु नियोक्ता से आग्रह है''

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2( ) के अनुसार ''व्यक्तियों के समूह द्वारा, जो मिलकर कार्य करते है, सामूहिक रूप से कार्य नहीं करना अथवा एकमत होकर कार्य करने से मना करना, हड़ताल कहलाता है''

''संगठित श्रमिकों के लिये हड़ताल अत्यधिक शक्तिषाली अस्त्र है। जिसके द्वारा वे नियेक्ता को अपनी मांगे मनवाने के लिये बाध्य करते है यह श्रमिक द्वारा स्वतः कार्य मुक्ति है इसका आयोजन सामूहिक कल्याण तथा वर्तमान कार्य की दशाओं में सुधार की दृष्टि से किया जाता है।''

2. तालाबंदी – नियोक्ता के हाथ में एक अस्त्र है जिससे वह श्रमिक को तितर–बितर करने , उनके आचार दूशित करने तथा उनके सामूहिक प्रयास को असफल करने का प्रयत्न करता है वह श्रमिक की चेतना को नश्ट करने का अस्त्र है। औद्योगिक विचार अधिनियम की धारा 2 (1) के अनुसार तालावंदी की परिभाशा इस प्रकार है – ''नियोक्ता द्वारा कर्मचारियों में कार्य नहीं लेना, अथवा कार्य स्थल पर ताला लगा देना, अथवा कार्य स्थगित कर देना, आदि क्रियायें तालावंदी कही जाती है।''

जब नियोक्ता श्रमिकों के मानवीय अधिकारों पर शासन करना चाहता है तथा उन पर सम्बन्धित अधिकार का प्रयोग करना चाहता है तो वह उन्हें अपने व्यवसाय क्षेत्र से बाहर निकाल देता है एवं उन्हे कार्य करने से रोकता है –

10.14 औद्योगिक सम्बन्धों के लिये राज्य निगम

औद्योगिक विवादों का निराकरण ..... इस अधिनियम से विवादों के निराकरणार्थ निम्न यंत्र उदिष्ट किए गये है।

1. समझौता–यंत्र
2. न्यायाधिकरण यंत्र
3. पंचनिर्णय यंत्र

प्रगति तथा सामाजिक न्याया दिलाना है इस विधेयक का ज्वाइट सेलेक्ट कमेटी को सौंप दिया गया है।

हर एक यंत्र के समुचित संचालन के लिए अधिनियम में विशेष व्यवस्था की गयी है। हम निम्नलिखित व्यवस्थायें क्रमशः धारा 3, 4 व 5 में पाते हैं –

1. कार्य समिति ।
2. संराधन या समझौता अधिकारी
3. समझौता बोर्ड ।

न्यायाधिकरण यंत्र में निम्न 3 उपविभागों का उल्लेख क्रमश : धारा 7 (अ) और (ब) में किया गया है –

1. श्रम न्यायालय
2. अधिकरण
3. राष्ट्रीय अधिकरण

धारा 12 (क) नियोजक और कर्मकार भी पारस्परिक विवादों का एक ऐसे यंत्र द्वारा हल कराने का प्रयत्न कर सकते है जिसे पंचनिर्णय यंत्र कहते है।

इनके अतिरिक्त धारा–6 में जांच न्यायालय की भी विधिक व्यवस्था की गयी, जिससे औद्योगिक विवादों के निराकरण में अभीष्ट सहायता प्राप्त होती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :– प्रश्न–3 ताला बंदी क्या है ?

10.15 सार संक्षेप

प्रस्तुत ईकाई में औद्योगिक विवाद क्या है ? इसके कारण एवं प्रभाव क्या है, इसको बताया गया है। इस ईकाई में औद्योगिक विवाद की रोकथाम एवं निस्तारण की चर्चा की गयी है। और सामूहिक समझौता क्या है, उसकी प्रकृति, विषयवस्तु एवं समझौता की निपुणता के बारे में विस्तार से बताया गया है। तथा औद्योगिक विवाद के निस्तारण हेतु श्रम प्रशासन की समितियों की भूमिका के बारे में वर्णन किया गया है। तथा अन्त में औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है।

10.16 अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक विवाद क्या है ?
2. सामूहिक सौदेबाजी क्या है ?
3. औद्योगिक विवाद /संघर्ष क्या है ?
4. औद्यागिक विवाद एवं संघर्ष के कारणों एवं प्रभाव को लिखिये।
5. औद्योगिक विवाद की रोकथाम एवं निस्तारण की व्याख्या कीजिये।
6. सामूहिक समझौता क्या है, उसकी प्रकृति, विषय को समझाइये।
7. सामूहिक समझौते के तौर तरीके, मुददों एवं निपुणता की व्याख्या कीजिये।
8. औद्योगिक विवाद /संघर्ष के निस्तारण में 'श्रम प्रशासन' की विभिन्न समितियों की भूमिका का वर्णन कीजिये।
9. औद्योगिक विवाद अनिधिनियम 1947 के बारे में जानकारी दीजिये।
10. औद्योगिक संघर्ष और सहयोग की गतिशीलता के बारे में लिखिये।

10.17 पारिभाषिक शब्दावली :

1.	Industrial Disputes	औद्योगिक विवाद
2.	Prevention	रोकथाम
3.	Sattelement	निस्तारण /निराकरण /समापन
4.	Conflict	संघर्श
5.	Collaboration	सहयोग /सहकारिता
6.	Collective Baragaining	सामूहिक समझौता
7.	Negotiation Skills	बातचीत में निपुणता
8.	Conciliation	समझौता–बोर्ड
9.	Arbitration	पंच निर्णय
10.	Adjudication	अनिवार्य पंच निर्णय
11-	Strike	हड़ताल
12.	Lock – Out	ताला बंदी
13.	Lay off	जबरी छुटटी

10.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- सक्सेना, एस0सी0, *''श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा''* ,रस्तोगी पब्लिशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ, पृष्ठ–संख्या दृ 516.17ए523.531ए534ए548ए558ए550.553ए561.63
- सिंह , इन्द्रजीत, *''श्रमिक विधिया''*, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशनस, इलाहावाद–2, पृष्ठ–संख्या .139.41ए150ए51ए201ए202
- भगोलीवाल, डा0 टी0एन0 एवं भगोलीवाल प्रेमलात, *''श्रम अर्थषास्त्र एवं औद्योगिक सम्बन्ध''*, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृष्ठ–संख्या . 247.48ए495ए496ए498.99ए
- मामोरिया, डा0 चतुभ्रज, मामोरिया डा0 सतीष, दशोरा डा0 मोहनलाल *''मानव संसधन प्रबंध''*, साहित्य भवन पब्लिेषकन आगरा, पृष्ठ–संख्या .566.568

इकाई – 11

परिवेदना

Grievance

इकाई के शीर्षक

11.1 परिवेदना की अवधारणा व अर्थ
11.2 उद्देश्य
11.3 परिवेदना के कारण
11.4 परिवेदना निवारण प्रक्रिया की आवश्यकता
11.5 परिवेदना निवारण क्रियाविधि की पूर्व शर्तें
11.6 परिवेदना निवारण के प्रमुख तत्व
11.7 परिवेदना निवारण के सिद्धान्त
11.8 श्रम संघ वाले संगठन में परिवेदना निवारण प्रक्रिया
11.9 भारत में परिवेदना निवारण प्रक्रिया
11.10 आदर्श परिवेदना निवारण प्रक्रिया
11.11 व्यवस्थित परिवेदना निवारण प्रक्रिया के लाभ
11.12 सार संक्षेप
11.13 अभ्यास प्रश्न
11.14 पारिभाषिक शब्दावली
11.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 परिचय

हर संगठन में नियोक्ता, प्रबन्धन व कर्मचारी वर्ग सम्मिलित होता है। इन वर्गों के अन्दर भी गुटवाजी एवं व्यक्तियों अथवा गुटों में टकराव पाया जाता है। ये अक्सर एक दूसरे के प्रति असंतोष व्यक्त करते रहते हैं तथा एक दूसरे की अवसर पाते ही शिकायत भी करते हैं। उनमें अक्सर मतभेद, लड़ाई–झगड़ा तथा तीब्र असंतोष दिखाई देता रहता है। कभी नियोक्ता व प्रबन्धक अपने कार्मिको से असंतुष्ट होते हैं तो कभी कर्मचारी विभिन्न मुद्दों पर अपने मालिकों व प्रबन्धकों से। इन्हीं शिकायतों व परस्पर असंतोष की भावना को उद्योग जगत परिवेदना(Grievance) के रूप में पहचानता है। इन परिवेनाओं का न्यूनतम स्तर औद्योगिक शांति को बढ़ावा देता है, जबकि इनकी अधिकता औद्योगिक परिवेश को अशांति व तनाव की ओर ले जाती है।

11.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन से पाठकों को निम्नलिखित बातों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी–

- परिवेदना का अर्थ क्या है?
- परिवेदना के कारण एवं उनके निवारण की आवश्यकता क्या है?
- परिवेदना निवारण प्रक्रिया के प्रमुख तत्व व उसकी पूर्व शर्तें कौन सी हैं?
- परिवेदना निवारण के सिद्धान्त क्या है?
- परिवेदना निवारण की प्रक्रिया क्या है?
- आदर्श परिवेदना निवारण प्रक्रिया व उसके लाभ क्या है?
- भारत में कौन सी परिवेदना निवारण प्रक्रिया अपनाई जाती है?

11.3 परिवेदना की अवधारणा :

परिवाद वास्तविक व काल्पनिक, सच्चे व झूठे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ये वैधानिक दृष्टि से उचित व अनुचित भी हो सकते हैं। प्रबन्धन को इन परिवेदनाओं का समुचित संज्ञान लेकर वैधानिक व वास्तविक शिकायतों का त्वरित समाधान ढूँढ़ना चाहिए तथा अवैधानिक अथवा काल्पनिक व झूठी परिवेदनाओं का भंडाफोड़ भी करना चाहिए। ताकि इन परिवेदनाओं व शिकायतों, जो केवल लांछन लगाने व मनमुटाव उत्पन्न कर औद्योगिक वातावरण को बिगाड़ने के उद्देश्य से की जाती हों, से सभी पक्षों व समाज को अवगत कराया जा सके व उत्पादन पर उसके दुष्प्रभाव को रोका जा सके।

उद्योग में मनमुटाव होने से उत्पादक, उपभोक्ता, कार्मिक, बृहत्तर समाज व राष्ट्र सभी को हानि उठानी पड़ती है। इससे साधनों का अपव्यय बढ़ता है; औद्योगिक क्रियाकलापों में शिथिलता व ठहराव आ जाता है; अव्यवस्था व अशांति फैलती है; तथा उपादकता का ह्रास होता है। प्रबंधन व कर्मचारियों में सहयोग व समन्वय की बजाय मनमुटाव तथा तनाव घर कर जाता है। दोनों पक्ष एक दूसरे की आलोचना करते हुए दिखाई देते हैं, जिससे औद्योगिक इकाई व संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति असंभव हो जाती है। अतएव परिवेदनाओं का सम्यक् व त्वरित समाधान अति आवश्यक है।

11.3.1 परिवेदना की अवधारणा :

मोटेतौर पर, ऐसी सभी लिखित शिकायतें, जो मजदूरी, भुगतान, अधिसमय कार्य, छुट्टी, स्थानांतरण, पदोन्नति, वरिष्ठता, सेवा मुक्ति, सेवा अनुबन्ध के विवेचन, कार्य की दशाओं या किसी फोरमैन, सुपरवाइजर, मशीन व औजार, कैण्टीन एवं मनोरंजन की सुविधाओं आदि से सम्बन्धित हों, वे सभी परिवेदना के अन्तर्गत आती हैं। परिवेदना को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है :

- डेल बीच के विचार से, ''परिवेदना ऐसे असंतोष व अन्याय की भावना है, जो एक व्यक्ति अपने रोजगार की स्थिति में अनुभव करता है और जिसके लिए प्रबन्धक का ध्यान आकृष्ट किया जाता है।''
- रिचर्ड पी0 कैल्हून के अनुसार, '' परिवेदना कोई भी ऐसी स्थिति है, जिसे कोई कर्मचारी सोचता या समझता है कि वह गलत है; तथा सामान्यतया उससे कर्मचारी को भावनात्मक व्याकुलता की अनुभूति होती है।''
- माइकेल जे0 जूसियस के अनुसार, ''परिवेदना किसी प्रकार का असंतोष है, चाहे वह अभिव्यक्त किया गया हो अथवा नहीं और चाहे वह वैध हो अथवा नहीं, जिसका सम्बन्ध उसकी कम्पनी से है, तथा जिसके बारे में कर्मचारी सोचता है, विश्वास करता है या सिर्फ अनुभव करता है कि अमुक कार्य अनुचित, अन्यायपूर्ण व असमानता मूलक है।''
- पीगर्स एवं मायर्स ने लिखा है कि ''परिवेदना औपचारिक रूप से लिखित असंतोष है, जो संगठन की कार्य प्रणाली द्वारा उत्पन्न होता है। शिकायत करने वाला व्यक्ति संगठन के क्रिया कलाप को अनुचित, अन्यायपूर्ण, गलत एवं असमान समझता है।''

⇨ कुछ संगठनों ने भी परिवेदना की परिभाषा की है, जो निम्न प्रकार है :

- राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार, ''जो शिकायतें एक या अधिक श्रमिकों के मजदूरी भुगतान, अधिनियम, छुटी, स्थानांतरण, पदोन्नति, वरिष्ठता, कार्य सौंपने, कार्य की दशाओं, रोजगार संविदा के निर्वचन, पदमुक्ति तथा कार्य से निकाले जाने से सम्बन्धित हों, परिवाद की श्रेणी आती हैं। किन्तु जहाँ समस्याएं सामान्य रूप से

लागू होने वाली हों या जो अधिक महत्वपूर्ण हों, वे परिवेदना प्रक्रिया के अन्तर्गत नहीं आयेंगी।''

- सोसायटी फॉर एडवांसमेंट ऑफ मैनेजमेन्ट के अनुसार, ''परिवेदना किसी कर्मचारी, श्रम संघ या नियोक्ता द्वारा किसी आरोप के रूप में की गयी औपचारिक शिकायत है, जिसका सम्बन्ध किसी सामूहिक सौदाकारी के संविदा, कम्पनी की नीतियों अथवा अन्य किसी समझौते के उल्लंघन से हो।''

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि परिवेदना न केवल कर्मचारियों अपितु नियोक्ता अथवा प्रबन्धन द्वारा भी प्रस्तुत की जा सकती है। परिवादकर्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित शिकायत, अपने अधिकारों की मांग तथा उसके लिए प्रदर्शन आदि परिवेदना मानी जा सकती है। किन्तु, वही बात परिवेदना कहलाती है, जो कर्मचारी को गलत अथवा अन्यायपूर्ण प्रतीत होती हो तथा उससे वह परेशान अथवा तनावग्रस्त रहता हो।''

11.3.2 परिवेदना के तत्व

परिवेदना मुख्यतया निम्नलिखित तत्वों पर आधारित होती है –

(i) श्रमिकों द्वारा अपने अधिकारों की माँग;

(ii) श्रमिकों की सुरक्षा एवं कल्याण से सम्बन्धित समस्याएं; तथा;

(iii) कर्मचारियों की व्यक्तिगत एवं कार्य सम्बन्धी रूचियाँ एवं अभिरूचियाँ

11.3.3 असंतोष, शिकायत एवं परिवेदना में अन्तर

पीगर्स एवं मायर्स ने असंतोष, शिकायत एवं परिवेदना में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वस्तुतः ये परिवेदना के विभिन्न चरण हैं।

असंतोष (Dissatisfaction) कर्मचारी की कार्य के प्रति अथवा कार्य की शर्तों व दशाओं के प्रति अनुभूति है जो वह कार्यस्थल पर अपनी भूमिकाअें के निर्वहन के दौरान अनुभव करता है। कार्य की विभिन्न दशाएं व परिस्थितियाँ, कार्मिक की रूचि अथवा अपेक्षाओं अथवा प्रबन्धकों द्वारा पूर्व में दिए गये आश्वासनों के अनुरूप न होने पर असंतोष उत्पन्न होता है। यह **परिवेदना** का **प्रथम चरण** है। असंतोष जब तक कर्मचारी के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जाता तब तक वह व्यक्ति–केन्द्रित ही रहता है व उसे व्यक्तिगत असंतोष के रूप में ही लिया जाता है।

शिकायत (Complaint) असंतोष की अभिव्यक्ति का साधन है। जब कर्मचारी अपने असंतोष को मौखिक अथवा लिखित रूप में समुचित रूप से अधिकारियों व प्रबन्धकों के सम्मुख व्यक्त करता है तो वह शिकायत कहलाती है। **शिकायत** परिवेदना का **द्वितीय चरण** है। शिकायत मनगढ़न्त हो सकती है और वास्तविक भी। शिकायत कार्य की अवस्थाओं, व्यवस्थाओं या परिस्थितियों के प्रति हो सकती है तथा किसी व्यक्ति विशेष के प्रति भी।

परिवेदनाएं(Grievances) **अंतिम चरण है।** असंतोष की भाँति परिवेदना भी प्रकट (Overt) अथवा अप्रकट (Covert) हो सकती है। अप्रकट परिवेदनाओं का निवारण सम्प्रेषण के अभाव में सम्भव नहीं हो पाता, जिससे कर्मचारियों में कार्य असंतोष बढ़ता है व उनका मनोबल गिरता है। परिवेदनाओं का सम्यक् निवारण न होने पर औद्योगिक विवादों का जन्म होता है, जो औद्योगिक शांति के लिए घातक सिद्ध होता है।

अतः ऐसी प्रणाली अथवा व्यवस्था का निर्माण आवश्यक है कि कर्मचारी बिना किसी भय के अपने असंतोष, शिकायत व परिवेदनाओं का समय से प्रकटन कर सकें, ताकि इनका त्वरित समाधान खोजा जा सके।

11.4 परिवेदना के कारण

जब कभी कर्मचारी के हितों एवं अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है, तो वह असंतोष अनुभव करता है और तदनन्तर समुचित रूप से परिवाद प्रस्तुत करता है।

साधारणतया परिवेदनाएं कम्पनी की नीतियों, नियमों एवं व्यवहारों को गलत ढंग से लागू करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। अमेरिकी श्रम विभाग ने परिवेदनाओं को दो भागों में बांटा है :

10.2.1 श्रमिक परिवेदनाएं (Workers' Grievances) ; तथा

10.2.2 प्रबंधकीय(नियोक्ता) परिवेदनाए (Management Grievances)।

इन दोनों प्रकार की परिवेदनाओं के कारणों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

चार्ट से स्पष्ट होता है कि परिवेदना श्रमिकों अथवा प्रबन्धकों दोनों की हो सकती है। चूँकि परिवेदना के अनेक कारण होते हैं, इसलिए परिवेदना की प्रकृति भी कई प्रकार की होती है। परिवेदना किसी भी कार्य की विकृति (malfunctioning) का परिणाम होती है। श्रमिक का व्यवहार, आदतें व आचरण सभी प्रबन्धन की परिवेदना का कारण बन सकते हैं। इसी प्रकार प्रबन्धकों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार श्रमिकों की परिवेदना का कारण बन जाता है। परिवेदनाओं की परिणति निराशा, असंतुष्टि एवं वैमनस्य में हो सकती है, जिससे अंततः श्रमिकों की कार्यक्षमता व उद्योग की उत्पादकता पर गलत प्रभाव पड़ता है, जो कि उद्योग, श्रमिक व समाज सभी के लिए अहितकर है। अतः परिवेदनाओं का शीघ्र निवारण आवश्यक है।

11.5 परिवेदना निवारण प्रक्रिया की आवश्यकता

परिवेदना, चाहे वह श्रमिक वर्ग की हो अथवा प्रबन्धन की, उसका त्वरित निवारण होना आवश्यक है, क्योंकि :

➢ अधिकांश परिवेदनाएँ श्रमिकों के मनोबल, उत्पादकता एवं सहयोग की भावना को कम कर देती है,, जिससे श्रमिक अशांति फैलने का भी खतरा हो सकता हैं।

➢ परिवेदना निवारण प्रक्रिया प्रशासन के ऊपर एक अंकुश का कार्य करती है और प्रबन्धकों को अविवेकपूर्ण निर्णय लेने से रोकती है।

➢ कर्मचारियों में निराशा और असंतोष कम करने तथा उनके अधिकारों की रक्षा करने मे परिवेदना निवारण की एक सुनिश्चित प्रणाली एवं प्रक्रिया होने पर सफलता मिल सकती हैं।

➢ कर्मचारियों के रोष को कम करने में यह प्रक्रिया एक सुरक्षा उपकरण (Safety value) का काम करती है। क्योंकि इस प्रक्रिया से उन्हें न्याय प्राप्त करने का एक वैधानिक रास्ता मिल जाता है। यह प्रक्रिया श्रमिक समस्याओं पर विचार विनिमय का अवसर देती हैं।

➢ परिवेदना की प्रस्तुति एक ऊर्ध्व (upward) संप्रेषण है, जिससे शिखर प्रबन्धक कर्मचारियों की निराशाओं, समस्याओं, अपेक्षाओं व कल्याण सम्बन्धी आवश्यकताओं से परिचित हो जाता है। इससे कम्पनी के विस्तार आदि की योजनाएँ बनाते व नीति निर्धारण के समय श्रमिक वर्ग के हितों का संरक्षण होने की संभावना बढ़ जाती है।

11.6 परिवेदना निवारण क्रियाविधि की पूर्व शर्ते

परिवेदना निवारण प्रक्रिया की सफलता की निम्नलिखित पूर्व शर्ते हैं, जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है:–

- परिवेदना निवारण क्रियाविधि (Grievance Redressal Procedure) सरल एवं शीघ्र निर्णय लेने वाली होनी चाहिए।

- इस क्रिया विधि में कम से कम औपचारिकताएँ हों, व समस्या समाधान की समयावधि निश्चित हो।
- सम्पूर्ण प्रणाली को चरणों में विभाजित किया जाना चाहिए। प्रत्येक चरण की कार्यवाही पूर्ण करने की समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए।
- परिवेदना निवारण क्रिया विधि वास्तव में सामूहिक सौदेबाजी का ही एक रूप है। अतः इस प्रक्रिया में श्रम संघ एवं उसके प्रतिनिधियों का सक्रिय सहयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- परिवेदना प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी समस्या पर विचार विमर्श का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। उसे यह ज्ञात रहना चाहिए कि परिवेदना प्रणाली के विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार कार्यवाही की जा रही है।
- निर्णय निष्पक्ष होने चाहिए तथा इसमें परिवेदना निवारण के सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए।
- परिवेदना निवारण क्रिया विधि में सभी स्तरों पर प्रक्रियाओं एवं तथ्यों के अभिलेखन की स्पष्ट व सरल प्रणाली होनी चाहिए, ताकि निर्णयों में एकरूपता रहे व पारदर्शिता बनी रहे।

11.7 परिवेदना निवारण प्रक्रिया के प्रमुख तत्व

1. परिवेदना निवारण प्रक्रिया का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों में अच्छे सम्बन्ध बनाना है। अतः प्रक्रिया तथा प्रचलित नियमों एवं कानूनों में तालमेल होना चाहिए।
2. परिवेदना निवारण प्रक्रिया में लचीलापन होना चाहिए ताकि समय एवं परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन लाया जा सके।
3. परिवेदना प्रक्रिया सरल एवं सभी कर्मचारियों के लिए सुगम होनी चाहिए।
4. साधारणतया मामले को दो स्तरों से ऊपर नहीं ले जाना चाहिए तथा निर्णय से असन्तोष की दशा में परिवेदनाकर्ता को शिखर प्रबन्धक के पास अपील करने का अधिकार होना चाहिए।
5. परिवेदनाएँ प्राप्त करने के लिए एक सक्षम अधिकारी का नियुक्ति होनी चाहिए, ताकि कर्मचारी को यह पता रहे कि परिवेदना किसके पास प्रस्तुत करनी हैं।
6. परिवेदना निवारण समिति का आकार यथासंभव छोटा होना चाहिए, जिसमें अधिक से अधिक 4 से 6 सदस्य हो।
7. परिवेदना निवारण समिति में प्रबन्धन का प्रतिनिधित्व कम से कम विभागीय स्तर के प्रबन्धकों द्वारा ही किया जाना चाहिए।

11.8 परिवेदना निवारण के सिद्धान्त

माइकेल जे0 ज्यूसियस (Michell J. Jucius) ने परिवेदना निवारण के समय अपनाए जाने वाले 4 सिद्धान्त बताए हैं, जो निम्न प्रकार हैं :–

1. साक्षात्कार का सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह प्रतिपादित किया गया है कि अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए प्रबन्धकों को चाहिए कि वे कर्मचारियों से यदा कदा निम्न बातें पूछते रहें :–

(i) उनका हाल चाल व आराम की स्थिति
(ii) व्यक्तिगत सम्बन्धों का निर्माण एवं संधारण
(iii) कार्य के प्रति चौकसी एवं लोच

➢ साथ ही, प्रबन्धकों को कर्मचारियों से बात करते समय निम्न कार्य करने चाहिए :

अ. कर्मचारियों से अनौपचारिक ढंग से बात करना।
ब. कर्मचारियों की भावनाओं को समझना एवं उन्हें सद्भाव से सुनना।
स. समस्याओं को सही ढंग से समझना एवं समझाना।
द. बात के लिए सुविधाजनक वातावरण का निर्माण करना।
य. उनकी बात का भावार्थ समझने का यत्न करना।
र. बातचीत का निष्कर्ष निकालना।
ल. महत्वपूर्ण बातों को लेखबद्ध करना।

2. कर्मचारियों के प्रति प्रबन्धकों की मनोवृत्ति का सिद्धान्तः प्रबन्धकों को कर्मचारियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में पूर्वाग्रह या पक्षपात से काम नहीं लेना चाहिए। प्रबन्धक को अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए शिकायत का औचित्य निर्धारण करना चाहिए तथा निर्णय काफी सोच समझकर विवेकपूर्ण ढंग से करना चाहिए। एक भी गलत निर्णय प्रबन्धन की प्रतिष्ठा एवं विश्वसनीयता को हानि पहुँचा सकता है। प्रबन्धकों को कर्मचारियों की परिवेदना सुनने में रूचि दिखानी चाहिए। उनके प्रति सद्भावना का परिचय देना चाहिए। परन्तु यह भी ध्यान रहे कि झूठी शिकायतों व मनगढ़न्त बातों पर आसानी से विश्वास न करके उनकी जाँच करायी जाए। तभी यह प्रतिष्ठान के सर्वोत्तम हित में रहेगा।

3. प्रबन्धकों के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त : कर्मचारियों की परिवेदनाओं के प्रति उचित अथवा अनुचित निर्णय के लिए प्रबन्धकों का उत्तरदायित्व होता है। कर्मचारियों को यह पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि प्रबन्धक उनके लिए अहितकारी कदम कभी नहीं

उठाएँगें। प्रबन्धकों में कर्मचारियों का यह सद्विश्वास ही औद्योगिक शांति को प्रोत्साहन देता है। अतः प्रबन्धकों का यह दायित्व है कि वे कर्मचारियों में अपनी विश्वसनीयता कायम करें।

4. दीर्घकालीन सिद्धान्त : किसी भी निर्णय से पहले प्रबन्धकों को संगठन के दीर्घकालीन हितों को ध्यान में रखना चाहिए। कई बार कर्मचारियों की तात्कालिक प्रसन्नता को ध्यान में रखकर लिए गये निर्णयों से दीर्घ काल में संगठन को अत्यधिक हानि उठानी पड़ सकती है, जिससे न केवल गलत परम्परा स्थापित होगी, वरन् कर्मचारियों का भी दीर्घकालीन हित प्रभावित होगा।

इस प्रकार, यह ध्यान रखना चाहिए कि परिवेदना निवारण का अंतिम उद्देश्य औद्योगिक शांति को प्रोत्साहन देना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उचित सम्प्रेषण प्रणाली का उपयोग, कर्मचारियों से निरन्तर संपर्क एवं अनौपचारिक वार्तालाप, शिकायतों को सद्भाव पूर्वक सुनना व उनके औचित्य का पक्षपात एवं पूर्वाग्रहरहित निर्धारण तथा संगठन के दीर्घकालीन हितों को ध्यान में रखते हुए उचित निर्णय लेना आवश्यक है।

11.9 श्रम संघ वाले संगठन में परिवेदना निवारण प्रक्रिया

इन संगठनों में परिवेदना प्रक्रिया में निम्न पाँच चरण होते है, जैसा कि आगे दी गयी तालिका से स्पष्ट है :

- **प्रथम चरण** (पर्यवेक्षकीय स्तर) में तीन व्यक्ति होते हैं – कर्मचारी, पर्यवेक्षक तथा श्रम सघ का प्रतिनिधि। परिवेदना मौखिक या लिखित रूप में प्रस्तुत की जाती है। यदि पर्यवेक्षक चतुर, बुद्धिमान व समस्या निवारण में कुशल हो तो अधिकांश परिवेदनाओं का निवारण तत्काल किया जा सकता है।
- **द्वितीय चरण** (विभागीय प्रबन्धक स्तर) में उच्चस्तरीय अधिकारी, मुख्य व्यावसायिक प्रतिनिधि, अधीक्षक, औद्योगिक सम्बन्ध अधिकारी या कार्मिक प्रबन्धक हो सकता है। प्रथम चरण में परिवेदना निवारण न हो सकने पर पर्यवेक्षक द्वारा परिवेदना लिखित रूप में उच्चस्तरीय अधिकारी के पास भेजी जाती है। यह अधिकारी अपने स्तर से परिवेदना का निवारण करने में कई बार सफल हो जाता है।
- **तृतीय चरण** (समिति स्तर) – द्वितीय स्तर पर असफलता मिलने पर परिवेदना को परिवेदना समिति के पास भेजा जाता है। इस समिति में नियोक्ता व श्रम संघ दोनों के प्रतिनिधि होते हैं। परिवेदना लिखित रूप में प्रस्तुत की जाती है तथा उसका निवारण करने की यह समिति पूरी चेष्टा करती है।
- **चतुर्थ चरण** (शीर्ष प्रबन्धन स्तर) – समिति स्तर पर परिवेदना का संतोषजनक निवारण न होने पर उसे शिखर प्रबन्धक के सुपुर्द कर दिया जाता है।

➢ **पंचम चरण** (पंच निर्णय) – चतुर्थ चरण में संतोषजनक समाधान न हो पाने पर अंतिम रूप से परिवेदना को एक स्वतंत्र व निष्पक्ष व्यक्ति को पंच निर्णय के लिए सौंप दी जाती है। इस स्तर पर सरकार भी नियमानुसार हस्तक्षेप कर सकती है। पंच निर्णय को दोनों पक्षों को मानना पड़ता है।

पंचस्तरीय परिवेदना निवारण प्रक्रिया

विवाद स्तर	कर्मचारी एवं संघ प्रतिनिधि	नियोक्ता प्रतिनिधि
• प्रथम चरण विवाद उत्पन्न होते ही →	विवाद से संबंधित कर्मचारी तथा श्रम संघ प्रतिनिधि	फोरमैन ↓ मिलकर समझौते का प्रयास करते हैं
• द्वितीय चरण प्रथम चरण में समझौता नहीं होने पर परिवेदना आगे प्रस्तुत की जाती है →	संघ प्रतिनिधि	उच्च स्तरीय पर्यवेक्षक ↓ मिलकर समस्या सुलझाने का प्रयत्न करते हैं
• तृतीय चरण द्वितीय चरण में समझौता न हो पाने की स्थिति में संघ निश्चय करता है कि आगे अपील की जाय या नहीं; अपील का निश्चय होने पर →	कारखाना समिति या उप समिति	संयंत्र प्रबन्धक ↓ मिलकर परिवेदना निवारण का प्रयत्न करते हैं

• चतुर्थ चरण तृतीय चरण पर परिवेदना निवारण न हो सकने अथवा संघ/संबंधित कर्मचारी के असंतुष्ट रहने पर श्रम संघ चतुर्थ चरण के लिए अपील कर सकता है; अपील करने पर ⟶	अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के क्षेत्रीय या जिला स्तरीय प्रतिनिधि — शिखर प्रबन्धक 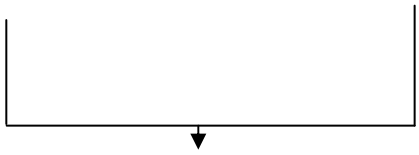 मिलकर समस्या पर गहन विचार विनिमय के उपरांत निर्णय लेने का यत्न करते हैं
• पंचम चरण चतुर्थ चरण की परिवेदना प्रक्रिया से लिए गये निर्णय से असंतोष होने पर पंच निर्णय हेतु एक निष्पक्ष व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है ⟶	(i) यह **निष्पक्ष व्यक्ति** प्रबन्धक एवं श्रम संघ द्वारा सहमति से नियुक्त किया जाता है अथवा उसे सरकार द्वारा भी नियुक्त किया जा सकता है, (ii) पहली दशा में पंच निर्णय को दोनों पक्षों को ऐच्छिक रूप से मानना होता है जब कि दूसरी दशा में पंच निर्णय को अनिवार्यतः दोनों पक्षों द्वारा मानना पड़ता है।

11.10 भारत में परिवेदना निवारण प्रक्रिया

भारतीय श्रम सम्मेलन (1928) में परिवेदना निवारण के लिए त्रिपक्षीय व्यवस्था अपनायी गयी, जो इस प्रकार है :–

(अ) प्रबन्धक तथा श्रम संघ मिलकर आपसी समझौते के आधार पर एक ऐसी परिवेदना निवारण क्रिया विधि निश्चित करेंगे, जिससे समस्या निवारण की दशा में सम्पूर्ण जाँच पड़ताल तथा शीघ्र निर्णय संभव हो सके।

(ब) वे दोनों पक्ष किसी एकतरफा निर्णय पर नहीं पहुँचेगें। वे परिवेदना निवारण प्रक्रिया का पूर्ण पालन करेंगे।

सम्मेलन में एक परिवेदना समिति के गठन का सुझाव दिया गया था। इस समिति क गठन निम्न प्रकार होगा :

1. इस समिति में 4 से 6 सदस्य होंगे।
2. इस समिति का गठन प्रत्येक उद्योग के लिए किया जाएगा।

3. जहाँ श्रम संघ को मान्यता दी गयी हो, वहाँ प्रबन्धन के 2 प्रतिनिधि, श्रम संघ का एक प्रतिनिधि, तथा परिवेदना से सम्बन्धित विभाग का एक प्रतिनिधि समिति में होना चाहिए।

4. जहाँ श्रम संघ की मान्यता न हो, वहाँ संघ के प्रतिनिधि के स्थान पर कर्मचारी कार्य समिति का एक सदस्य रखा जाता है।

5. प्रबन्धकीय प्रतिनिधि सम्बन्धित विभाग का अध्यक्ष होना चाहिए।

परिवेदना निवारण प्रक्रिया में दैनिक परिवेदनाओं को सुलझाने के लिए सामूहिक समझौता प्रणाली का उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया के तीन भाग होते है :

(i) विभागीय प्रतिनिधि
(ii) परिवेदना समिति या कार्य समिति
(iii) पंच निर्णय

उपरोक्त प्रक्रिया सेवा मुक्ति या निष्कासन के परिवाद में लागू नहीं होती। ऐसी अवस्था में निष्कासन करने वाले अधिकारी के पास निष्कासन आदेश निकलने के एक सप्ताह की अवधि में अपील की जा सकती है।

11.11 आदर्श परिवेदना निवारण प्रक्रिया

आदर्श परिवेदना निवारण प्रक्रिया की व्यवस्था सभी श्रमिकों की परिवेदनाओं के सम्यक निवारण के द्वारा उन्हें न्याय दिलाने की दृष्टि से अपनायी जा सकती है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक इकाई में यह व्यवस्था की जाती है कि एक परिवेदना निवारण मशीन ही कायम की जाये।

इस मशीनरी का गठन करने के लिए प्रत्येक विभाग (यदि विभाग छोटा हो तो विभागों के एक समूह से प्रतिनिधि चयन कर भेजे जाते हैं। प्रत्येक पारी के लिए अलग–अलग प्रतिनिधि होते हैं। ये प्रतिनिधि कम से कम एक वर्ष की अवधि के लिए कार्य करते हैं। यदि किसी संघ द्वारा सर्वसम्मति से चुने गये प्रतिनिधियों की सूची प्रबन्धकों को दे दी जाती है, तो चयन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दो या तीन विभागीय श्रम प्रतिनिधि एवं दो या तीन विभागाध्यक्ष मिलकर परिवेदना निवारण समिति करते हैं।

प्रबन्धन की ओर से प्रत्येक विभाग में मनोनीत सदस्य के पास सर्वप्रथम कोई विवाद प्रस्तुत किया जाता है। बाद में यह परिवाद विभागीय अध्यक्षों के पास प्रस्तुत किया जाता है। सेवा मुक्ति आदि मामलों में अपील के लिए प्रबन्धक द्वारा सक्षम अधिकारी का मनोनयन कर दिया जाता है। परिवेदना प्रक्रिया एवं निर्णय को लागू करने की प्रक्रिया इस प्रकार चलती है :

परिवाद निर्णय की दिशा

शीर्ष प्रबन्धक
↑
अधीक्षक
↑
पर्यवेक्षक
↑
श्रमिक

निर्णय पालन की दिशा

शीर्ष प्रबन्धक
↓
अधीक्षक
↓
पर्यवेक्षक
↓
श्रमिक

परिवेदना निवारण प्रक्रिया :

सामान्यतया परिवादों के निपटारे के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए :–

(1) एक असन्तुष्ट कर्मचारी सर्वप्रथम अपनी परिवेदना निकटस्थ सक्षम अधिकारी को मौखिक रूप से प्रस्तुत करेगा। यह अधिकारी 48 घंटे में अपना प्रत्युत्तर देगा।

(2) प्रत्युत्तर से असंतुष्ट होने या निर्धारित अवधि में उत्तर प्राप्त न होने पर वह या तो व्यक्तिगत रूप से या फिर अपने संघ के प्रतिनिधि के माध्यम से परिवेदना को संबंधित विभागाध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तुत करेगा। (इस कार्य के लिए विभाग में दिन व समय निश्चित किये जाएँ, जब कि कर्मचारी अपना परिवाद प्रस्तुत कर सके।) विभागीय अध्यक्ष अपना निर्णय परिवेदना प्राप्त होने के तीन दिन बाद देगा। यदि निर्धारित अवधि में निर्णय न दे सकेगा तो उसका कारण स्पष्ट करेगा।

(3) विभागीय अध्यक्ष से सअन्तुष्ट रहने पर परिवाद कर्ता अपनी परिवेदना को परिवेदना समिति के पास अग्रेषित करने की प्रार्थना कर सकता है। प्रार्थना पत्र प्राप्त होने से 7 दिन की अवधि में यह समिति अपनी सिफारिशें प्रबन्धन को भेज देगी। इस अवधि में सिफारिश न कर पाने पर परिवेदना समिति कारण स्पष्ट करेगी। परिवेदना समिति की सिफारिशें प्रबन्धकों द्वारा निर्विवाद रूप से लागू की जाएंगी; यदि समिति के सदस्यों में मतभेद होगा तो सभी सम्बन्धित सूचनाएँ व आलेख प्रबन्धक के सामने रखे जाएँगे, जिसका निर्णय अंतिम होगा व इस निर्णय को तीन दिन में सम्प्रेषित कर दिया जाएगा।

(4) यदि प्रबन्धक निर्धारित अवधि में अपना निर्णय न दे सके अथवा निर्णय असंतोषजनक हो तो श्रमिक इसके पुनरावलोकन हेतु निवेदन कर सकता है। इस प्रकार की अपील के समय संघ के प्रतिनिधि भी भाग ले सकते हैं। प्रबन्धकों की ओर से इस पुनरावलोकन अपील पर एक सप्ताह में निर्णय देने की व्यवस्था है।

(5) उक्त निर्णय पर असहमति होने पर श्रम संघ एवं प्रबन्धक मिलकर मामले के ऐच्छिक पंच निर्णय के लिए भेज सकते हैं। यह अग्रप्रेषण प्रबन्धक के निर्णय के उपरान्त 7 दिन की अवधि में ही किया जा सकता है।

(6) एक परिवेदना उस समय विवाद बन जाती है, जब परिवेदना निवारण की दृष्टि से प्रबन्धक द्वारा दिया गया अन्तिम निर्णय भी श्रमिक को मान्य न हो। बिन्दु 1 से 5 तक श्रमिक द्वारा की गयी कार्यवाही में समझौता संयंत्र तब तक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी, जब तक कि सभी साधनों का उपयोग करने पर भी समाधान प्राप्त न हो सका हो।

(7) यदि प्रबन्धक द्वारा लिए गये किसी निर्णय के फलस्वरूप कोई परिवेदना उत्पन्न होती है तो पहले श्रमिक आदेश का पालन करेगा, तत्पश्चात् परिवेदना प्रस्तुत कर सकेगा। यदि आदेश निकलने तथा लागू होने में कुछ अन्तर है तो परिवेदना तुरन्त प्रस्तुत की जा सकेगी, परन्तु श्रमिक को फिर भी आदेश का पालन करना पड़ेगा। प्रबन्धक को सलाह दी जाती है कि वह परिवेदना निवारण प्रक्रिया में प्राप्त मामले के सभी तथ्यों पर पूरा विचार कर ही निर्णय दे।

(8) परिवेदना समिति में श्रमिक प्रतिनिधि मामले की जाँच पड़ताल से सम्बन्धित किसी भी दस्तावेज का अवलोकन कर सकता है। किन्तु प्रबन्धकीय प्रतिनिधि ऐसी सूचना या प्रमाण उपलब्ध कराने से मना कर सकता है, जिसे वह गोपनीय समझता हो। ऐसे गोपनीय प्रमाणों का प्रयोग परिवेदना प्रक्रिया के अन्तर्गत श्रमिक के विरूद्ध नहीं किया जाएगा।

(9) एक चरण से दूसरे चरण पर अपील करते समय समयावधि का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए।इस उद्देश्य से श्रमिक निर्णय प्राप्त करने के उपरांत या निश्चित अवधि में निर्णय नहीं प्राप्त होने पर 72 घंटों में उच्च चरण पर अपील कर सकता है।

(10) अपील का समय निर्धारित करने में किसी भी स्तर पर छुट्टी का दिन शामिल नहीं किया जाएगा।

(11) प्रबन्धन परिवेदना प्रक्रिया के संचालन हेतु लिपिकीय व अन्य कर्मचारियों की व्यवस्था करेंगे।

(12) परिवेदना निवारण प्रक्रिया के अन्तर्गत बुलाए जाने पर यदि श्रमिक को कार्य छोड़ कर जाना पड़े तो उसे अपने अधिकारी से पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होगा। इस प्रक्रिया में श्रमिक को किसी प्रकार की हानि नहीं होगी।

(13) यदि किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ परिवेदना प्रस्तुत की गयी हो, जो परिवेदना निवारण प्रक्रिया का हिस्सा हो, तो श्रमिक अपना मामला विभागीय अध्यक्ष के पास ले जा सकता है।

(14) निष्कासन या पदमुक्ति के प्रबन्धकीय निर्णय के विरूद्ध दायर परिवेदना के मामले में उपर्युक्त प्रक्रिया लागू नहीं होगी। उस दशा में प्रभावित श्रमिक स्वयं को पदमुक्त करने वाले अधिकारी या प्रबन्धक द्वारा मनोनीत किसी वरिष्ठ अधिकारी के समक्ष अपील कर सकता है। यह अपील आदेश प्राप्ति के एक सप्ताह के अन्दर हो जाना चाहिए। अपील की

सुनवाई के समय श्रमिक यदि चाहे तो किसी सहयोगी या श्रम संघ के प्रतिनिधि को अपने साथ रख सकता है।

11.12 व्यवस्थित परिवेदना निवारण प्रक्रिया के लाभ

संस्थान में व्यवस्थित परिवेदना निवारण प्रणाली के उपलब्ध होने से सामान्य असंतोष बड़े विवाद का रूप नहीं ले पाते। सुनियोजित परिवेदना प्रक्रिया के निम्न लाभ है :–

(i) इससे प्रत्येक कर्मचारी को यह संज्ञान रहता है कि किस व्यवस्थित श्रृंखला का अनुगमन कर वह अपनी परिवेदना वैधानिक रूप से व्यक्त सकता है।

(ii) पूर्व निर्धारित प्रक्रिया को अपनाकर किसी भी परिवेदना को ठीक से समझा व उसका निपटारा किया जा सकता है।

(iii) यह ऐसा उपकरण तैयार करता है जिससे कर्मचारी अपनी भावनाओं को प्रस्तुत कर सकता हैं।

(iv) यह प्रणाली परिवेदनाएँ सुलझाने के एक प्रमुख साधन के रूप में काम करतीहै।

(v) श्रम संघ एवं प्रबन्ध के बीच अच्छे सम्न्ध बनाए रखने तथा कई प्रकार की समस्याओं का हल निकालने के लिए यह एक अच्छा माध्यम हो सकता है।

(vi) कर्मचारी की परिवेदना पर त्वरित कार्यवाही होने से उसे संतोष मिलता है तथा औद्योगिक शांति को बढ़ावा मिलता है।

(vii) इस प्रणाली में सम्प्रेषण का माध्यम के रूप में उपयोग होता है।

(viii) व्यवस्थित प्रणाली होने से परिवेदना सुलझाने में एकरूपता बनी रहती है।

(ix) श्रमिक वर्ग को अपनी परिवेदना व शिकायत के न्यायपूर्ण निस्तारण का विश्वास उत्पन्न हो जाता है।

(x) व्यवस्थित प्रणाली होने पर हर कार्य नियमानुसार होता है। अतः निर्णय अधिक विश्वसनीय हो जाते है।

(xi) परिवेदना निवारण की व्यवस्थित प्रणाली होने पर इस प्रक्रिया में कोई व्यक्तिगत वैमनस्य उत्पन्न नहीं होता।

इस प्रकार व्यवस्थित परिवेदना निवारण क्रियाविधि से औद्योगिक विवादों व श्रमिकों की शिकायतों का त्वरित समाधान हो जाने से औद्योगिक माहौल में सुधार होता है, जोकि उत्पादकता को बढ़ावा देने वाला साबित होता है।

11.13 सार संक्षेप

परिवेदना कर्मचारी अथवा प्रबन्धन द्वारा एक दूसरे के प्रति असंतोष एवं शिकायत की अभिव्यक्ति को कहते हैं। शिकायतें वैधानिक अथवा अवैधानिक तथा सच्ची व झूठी दोनों प्रकार की हो सकती हैं। परिवेदनाओं का समुचित एवं सामयिक समाधान आवश्यक है,

क्योंकि इनके बने रहने से उत्पादकता तथा औद्योगिक शांति दोनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार ''जो शिकायतें एक या अधिक श्रमिकों के मजदूरी भुगतान, अधिनियम, छुट्टी, स्थानांतरण, पदोन्नति, वरिष्ठता, कार्य सौंपने, कार्यदशाओं, रोजगार संविदा के निर्वचन, पदमुक्ति तथा कार्य से निकाले जाने से सम्बन्धित हो, परिवाद की श्रेणी में आती है।''

परिवेदनाएँ श्रमिक अथवा प्रबन्धन के द्वारा एक दूसरे के विरूद्ध हो सकती हैं। श्रमिक परिवेदनाएँ मजदूरी, पर्यवेक्षण, वरिष्ठता या स्थानांतरण अथवा कार्यदशाओं के बारे में अधिकांशतया होती हैं। जबकि प्रबन्ध परिवेदनाएँ अनुशासन सम्बन्धी अथवा कार्य से सम्बन्धित या फिर सामूहिक सौदेबाजी और श्रम संघ द्वारा लगाए गये झूठे आरोपों से सम्बन्धित हो सकती हैं।

परिवेदनाएँ चाहें श्रमिक–वर्ग की हो या प्रबन्ध की। उनका शीघ्र निवारण आवश्यक है। परिवेदना निवारण की एक व्यवस्थित प्रक्रिया होने से परिवेदनाओं का त्वरित व न्यायोचित समाधान सम्भव हो जाता है। इनके निवारण के समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि निर्णय निष्पक्ष होने चाहिए तथा उनमें परिवेदना निवारण के सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए। परिवेदना प्राप्त करने के लिए एक सक्षम अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिए तथा साधारतया मामले को दो स्तरों से ऊपर नहीं ले जाना चाहिए। वैसे, श्रम संघ वाले संगठनों में परिवेदना निवारण प्रक्रिया में पाँच चरण होते हैं।

भारत में परिवेदना निवारण के लिए 1928 में सम्पन्न भारतीय श्रम सम्मेलन में एक त्रिपक्षीय व्यवस्था अपनाने की बात कही गयी थी। इस प्रणाली में 4 से 6 प्रबन्धकों व श्रम संघ के प्रतिनिधियों को शामिल करते हुए मामलों को निर्धारित समयावधि में निपटाने की व्यवस्था की गयी है।

आदर्श परिवेदना निवारण प्रणाली में एक ग्रीवान्स मशीनरी कायम करने की बात कही गयी है। इसमें विभागीय प्रतिनिधि व श्रमिक प्रतिनिधि होते हैं। सर्वप्रथम विवाद विभाग के मनोनीत सदस्य के पास प्रस्तुत किया जाता है, बाद में (यदि परिवाद का हल न हो सके) इसे अधीक्षक के स्तर पर प्रस्तुत किया जाता है। परिवेदना समिति से यह परिवाद हल न होने पर पुनरावलोकन अपील शीर्ष प्रबन्धन के पास की जाती है। निर्णय से असहमति होने पर इसे ऐच्छिक पंच निर्णय के लिए भेजा जा सकता है। यदि तब भी विवाद हल न हो सके तो उसे समझौता संयंत्र के सुपुर्द किया जाएगा। यदि प्रबन्धक द्वारा लिए गये किसी निर्णय से असंतुष्टि रहती है तो श्रमिक पहले आदेश का पालन करेगा, फिर परिवेदना प्रस्तुत कर सकेगा। परिवेदना समिति में श्रमिक प्रतिनिधि, मामले की जाँच पड़ताल से सम्बन्धित गोपनीय सूचना को छोड़कर, किसी भी दस्तावेज का अवलोकन कर

सकता है। ऐसी ही अनेक व्यवस्थाएँ आदर्श परिवेदना निवारण कार्यविधि के अन्तर्गत की गयी हैं। निष्कासन या पदमुक्ति के मामलों में यह प्रक्रिया लागू नहीं होगी।

व्यवस्थित परिवेदना निवारण प्रक्रिया अपनाने से अनेक लाभ मिलते हैं। इससे सामान्य असंतोष, बड़े विवाद का रूप नहीं ले पाते। प्रत्येक कर्मचारी को यह ज्ञान रहता है कि कोई परिवेदना होने पर वह किस व्यवस्थित परिवेदना निवारण प्रणाली का अनुगमन कर सकता है। कार्य नियमानुसार होने से परिवेदनाओं का वैधानिक व विश्वसनीय निवारण सम्भव हो जाता है। इससे औद्योगिक शांति को बढ़ावा मिलता है, जो प्लांट से क्षमता भर उत्पादन प्राप्त हो पाने की पूर्व शर्त है।

11.14 अभ्यास प्रश्न

1. परिवेदना की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। परिवेदना के कौन से कारण होते हैं ?
2. परिवेदना की परिभाषा कीजिए। परिवेदना निवारण प्रक्रिया की आवश्यकता क्यों होती है ?
3. परिवेदना निवारण प्रक्रिया के प्रमुख तत्व व पूर्व शर्ते कौन सी हैं ?
4. परिवेदना निवारण के समय किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए?
5. एक श्रमिक संघ वाली औद्योगिक इकाई में परिवेदना निवारण कार्यविधि कैसी हो सकती है ?
6. भारत में परिवेदना निवारण की कौन सी प्रक्रिया अपनाई जाती है ?
7. परिवेदना का अर्थ बताइए। आदर्श परिवेदना निवारण प्रक्रिया को विस्तार से समझाए।
8. व्यवस्थित परिवेदना प्रक्रिया अपनाने से कौन से लाभ हो सकते हैं ?

11.15 पारिभाषिक शब्दावली

समझौता संयंत्र	Conciliation Machinery	विवाद	dispute
पंच निर्णय	Voluntary Arbitration	परिवेदना	Grievance
एकरूपता	Uniformity	पुनरावलोकन अपील	Revision Petition
परिवेदना निवारण प्रक्रिया	Grievance Redressal Procedure	शिखर प्रबन्धक	Top Management

11.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- मामोरिया, चतुर्भुज, सतीश मामोरिया एवं मोहनलाल दशोरा (2007) : ''सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक सम्बन्ध'', आगरा : साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स.
- डेविस, के0 : ''ह्यूमन रिलेशंस इन बिजिनेस'', PP. 439–41.
- माइकेल जे0 ज्यूसियस, ''पर्सनेल मैनेजमेण्ट'', PP/ 478–82.
- भारत सरकार (1951) : ''कोड ऑफ डिसिप्लिन इन इन्डस्ट्री'', PP. 2–3.
- योडर, डेल, ''हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट''
- पिगर्स एण्ड मायर्स, ''पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन''.
- योडर, डेल (1972), ''पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशंस
- कपूर, टी0एन0 (1986) : ''पर्सनेल एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया''.

इकाई– 12

क्षतिपूर्ति या प्रर्तिकर

Compensation

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य
12.2 परिचय
12.3 मजदूरी वेतन की अवधारणा एवं परिभाषा
12.4 मजदूरी वेतन का प्रारूप एवं उद्देश्य
12.5 प्रारूप के निर्धारक कारक
12.6 वेतन प्रोत्साहन की अवधारणा एवं उद्देश्य तथा योजनाए
12.7 आनुषांगिक लाभ की अवधारणा
12.8 मजदूरी परिषद् एवं वेतन आयोग की अवधारणा एवं उसके कार्य
12.9 वेतन आयोग का अर्थ एवं उनकी भूमिका
12.10 सार संक्षेप
12.11 अभ्यास प्रश्न
12.12 पारिभाषिक शब्दावली
12.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.1 परिचय

मजदूरी एवं वेतन की अवधारणा में कहा जाता है कि कार्य की अवधि या कार्य के अंश के आधार पर कर्मचारी को जो पारितोषिक दिया जाता है, वहीं उसकी मजदूरी है और संविदा के अनुसार निर्धारित मासिक आधार पर दिया गया पारिश्रमिक ही, वह उसका वेतन है। श्रमिक अधिक कार्य करता है या कम करता है किन्तु वेतन उसका माहभर का पूरा मिलता है किन्तु मजदूरी कार्यावधि तथा कार्यांश के आधार पर घट–बढ़ सकती है। विभिन्न प्रतिष्ठानों में इसके स्वरूप में आज भी मित्रता मिलती है। यह प्रतिष्ठान की आर्थिक स्थिति तथा औद्योगिक समाज में उसकी प्रतिष्ठा से प्रभावित होती है तथा मांग–पूर्ति के सिद्धांत एवं श्रम संघटनों की शक्ति से भी प्रभावित होती है। यह एक प्रकार से श्रमिक द्वारा किये गये कार्यो के एवज में जो उत्पादन करता है, उसके लिये सेवायोजक द्वारा दी गयी कीमत ही मजदूरी है। इसके अन्तर्गत उसकी मूल मजदूरी और भत्ते भी सम्मिलित हैं। किन्तु

सामान्यतया अन्य भत्ते यथा छुट्टी अवकाश, ओवर टाइम, बोनस एवं सुरक्षा लाभ मजदूरी या वेतन में नहीं माना जाता।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आपः–

- मानव संसाधन प्रबंधन में मजदूरी एवं वेतन की अवधारणा को ज्ञात कर सकेगें।
- मजदूरी के प्रारूप की जानकारी होगी तथा मजदूरी एवं वेतन के उद्देश्यों को ज्ञात कर सकेगें।
- मजदूरी प्रारूप के घटकों की भी जानकारी होगी।
- प्रोत्साहन की अवधारणा ज्ञात होगी।
- आंशिक लाभ की अवधारणा और इसके लाभ की जानकारी होगी।
- वेतन परिषद् की अवधारणा को ज्ञात कर सकेगें।
- वेतन परिषद् के कार्यो का विवरण जान सकेगें।
- वेतन समितियों के अर्थ एवं उनकी भूमिकाओं को ज्ञात कर सकेगें।

12.3 मजदूरी व वेतन प्रारूप एवं उद्देश्य

यहॉ मजदूरी के विभिन्न रूप देखे जा सकते है यथाः–

(1) निम्नतम उचित एवं निर्वाह मजदूरी(Minimum Fair and Living Wage):न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के अनुसार जो निर्धारित मजदूरी है वहीं यह है। यह मजदूरी की दर अधिनियम के तहत जो तय कर दी जाती है वह सेवायोजक को देना पड़ता है। इसके लिए उसकी देय योग्यता पर विचार नहीं किया जाता है। और इस प्रकार श्रम का दोहन नहीं हो पाता है।

(2) बुनियादी न्यूनतम मजदूरी : बुनियादी न्यूनतम मजदूरी वह होती है जोकि अवार्ड अथवा औद्योगिक ट्रिब्यूनल, राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल और श्रम न्यायालय के द्वारा घोषित की जाती है। नियोक्ता को यह मजदूरी देना कानूनी बाध्यता है उचित मजदूरी कमेटी जो सरकार द्वारा 1978 में गठित की गयी थी उसमें प्रतिवेदन के आधार पर यह कहा जाता है कि न्यूनतम मजदूरी वस्तुतः उचित मजदूरी की नीचे की सीमा है और उसके उपर की सीमा उचित मजदूरी है और सबसे उपर की सीमा ही जीवन मजदूरी है। इस प्रकार से हम देखते है कि मजदूरी तीन स्तरों पर देखी जा सकती है–

1. न्यूनतम मजदूरी
2. उचित मजदूरी
3. निर्वाह मजदूरी

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना कठिन होता है क्योंकि स्थान–स्थान और उद्योगों तथा श्रमिकों के विविध स्वरूप होने के कारण उनके जीवन स्तर को सही ढंग से निर्धारित करना कठिन होता है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के तहत मजदूरी निर्धारण न केवल जीवन जीने के लिए दी जाती है वरन उसकी कार्यक्षमता बनाये रखने के लिए भी उपयोगी होती है।

उचित मजदूरी :– न्यूनतम मजदूरी के उपर होता है, और वह अधोलिखित बातों पर निर्भर करता है –

(क) श्रम की उतपादकता
(ख) प्रतिष्ठान में प्रचलित मजदूरी दर तथा पड़ोस के प्रतिष्ठानों में मजदूरी की दर।
(ग) राष्ट्रीय आय व वितरण का स्तर
(घ) देश की आर्थिक व्यवस्था में प्रतिष्ठान का स्थान।

(3) निर्वाह मजदूरी – यह मजदूरी न केवल मजदूर के लिए पर्याप्त होती है और न केवल उसके परविार की आवश्यकताओं यथा भोजन, वस्त्र, एवं आवास के लिए सहयोगी होती है वरन् उसके आराम, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य वृथावस्था तथा दुर्दिनों के लिए उपयुक्त होती है। यहाँ उसके जीवन स्तर को उच्च बनाये रखने में सहायक होती है।

आवश्यकता आधारित – न्यूनतम मजदूरी

भारत श्रम अधिवेशन 1957 के सुझाव रहे है कि न्यूनतम मजदूरी आवश्यकता आधारित हो ताकि औद्योगिक श्रमिक अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। उसकी संस्तुति थी कि समस्त के मजदूरी निर्धारित करने वाला अधिकारी वह चाहे न्यूनतम मजदूरी कमेटी हो अथवा मजदूरी परिपद हो या संलाधन मशीनरी हो, उसे इस मानक को स्वीकार करना चाहिए, उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं में उसे पोषक आहार के रूप में परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को वह खाद्य पदार्थ प्राप्त हो जिससे 2700 कैलोरी की उर्जा प्राप्त कर सके और दूसरे वस्त्र के लिए एक व्यक्ति हेतु 18 गज कपड़े चाहिए और आवास के लिए सस्ते किराये दर की सुविधा प्राप्त हो।

उत्साहवर्धक मजदूरी –

श्रमिक को उसके निर्धारित मजदूरी के उपर जो श्रमिक के योगदान के फलस्वरूप पारितोषित स्वरूप दिया जाता है।

वेतन–यह प्रतिष्ठान के कर्मियों की संविदा के आधार पर उनके योग्यता, ज्ञान और उपलब्धियों पर विचार करके मासिक अथवा वार्षिक पैकेज के रूप में पारितोषित दिया जाता है। इसका निर्धारण इस आशय से किया जाता है कि प्रतिष्ठान में

सेवारत कर्मियों में कार्य के प्रति रूचि बना रहे व अपना क्षमता का अधिकतम उपयोग करते हुए नियोक्ता के लाभ अर्जन में भी उपयोगी साबित हो सकें।

मजदूरी एवं वेतन का उद्देश्य :

मजदूरी एवं वेतन प्रशासन के उद्देश्यों में प्रमुख्य ये हैं –

1. योग्य व सक्षम व्यक्तियों को प्रतिष्ठान के लिए प्राप्त करना, ऐसे योग्य व्यक्ति अच्छे वेतन व मजदूरी के आकर्षण से ही प्रतिष्ठान विशेष में कार्य करने के इच्छुक होते हैं।
2. प्रतिष्ठान के लिए ऐसे योग्य व्यक्तियों को बने रहने के लिए भी अच्छी मजदूरी व वेतन से ही सम्भव होता है और आज के प्रतियोगी युग में योग्य व सक्षम कर्मो बने रहें यह बड़ा कठिन कार्य है।
3. प्रतिष्ठान के आंतरिक व बाह्य समानता को बनाये रखने के उद्देश्य से ही मजदूरी व वेतन का प्रशासन है।
4. अपेक्षित व्यवहार को सुनिश्चित करना उद्देश्य है, अच्छा मजदूरी और वेतन ही श्रमिकों की उपलब्धि उसका विश्वसनीयता के विकास तथा उत्तरदायी विकास में प्रभावी होता है।
5. श्रम एवं संगठन की प्रशासनिक लागत को बनाये रखना।
6. सेवायोजक को अच्छी मजदूरी एवं वेतन देने वाले के रूप में बचाव करना।
7. कार्य के कठिनाईयों एवं कार्य की विषय–वस्तु के लिए अभिकर्मियों में योग्यता विकसित करने में सहायक होना।
8. सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रियाओं और समझौते को सरलीकरण करना।
9. संगठन में लचीलापन बढ़ाना।

4 (3) मजदूरी एवं वेतन के प्रभावी कारक : यों तो प्रतिष्ठान में मजदूरी व वेतन के स्तर

को प्रभावित करने वास्ते अनेक कारक होते है, फिर भी कुछ प्रमुख कारक यो है, जैसे–

1. अन्य प्रतिष्ठानों में पारितोषित का स्वरूप
2. प्रतिष्ठान के स्वयं के भुगतान की दक्षता
3. जीवन की लागत (Cost of Living)
4. प्रतिष्ठान की उत्पादकता
5. श्रम संघों का दबाव व रणनीति
6. और राजकीय अधिनियम

12.4 मजदूरी व वेतन प्रोत्साहन की अवधारणा

मजदूरी प्रोत्साहन की अवधारणा विभिन्न विद्धानों ने अलग–अलग ढंग से की है, इनमें से वह विशिष्ठ विद्धानों के द्वारा अधोलिखित रूप में परिभाषित की गयी है –

1. ह्यूमेल व निर्केशन के अनुसार, ''यह वह आर्थिक प्रेरक है, वे अभिकर्मी के कार्य को बनाये रखने के लिए गति प्रदान करता है।

2. फ्लोरेंस के अनुसार, ''यह वह आर्थिक प्रेरक है, जो किसी Job में उसके नियमित मजदूरी के अतिरिक्त उसे दिया जाता है, इस प्रकार से उत्पादकता के लिए प्रेरित करता है। एस्कार्ट के अनुसार, ''यह औपचारिक घोषित कार्यक्रम है, जो प्रतिष्ठान के उत्पादकता उपलब्धि से संबंधित आर्थिक प्रेरक है –

1. राष्ट्रीय श्रम आयोग – ''मजदूरी प्रोतसाहन एक अतिरिक्त आर्थिक प्रेरणा है, जो श्रमिक को वर्तमान कार्य में प्रगति लाने तथा लक्ष्य उन्मुख परिणामों को प्राप्त करने के लिए दिया जाता है।

मजदूरी प्रोत्साहन योजनाओं का उद्देश्य

इन योजनाओं के अधोलिखित उद्देश्य बताये जाते हैं :–

1. प्रतिष्ठान के लाभ के लिए तथा उसकी इकाईयों में श्रम व माल के लागत मूल्य को कम करने के लिए।
2. प्रतिष्ठान के उत्पादन क्षमता के विकास में अतिरिक्त पूँजी विनियोजन को कम करना।
3. श्रमिक के आय में वृद्धि करना बतौर उसके मजदूरी ढाँचे में परिवर्तन किये।
4. मानव संशाधन के उपयोग में इसे एक tool के रूप में उपयोग करना जिसे कि और अच्छा उतपादन, प्रतिष्ठान की उपलब्धि तथा उसके संधासनों का नियंत्रण किया जाता है।

भारतवर्ष में प्रोत्साहन, मजदूरी की आवश्यकता निम्नलिखित रूपों में स्वीकार की जाती है –

1. भारतीय श्रमिक की क्षमता बहुत कम पायी जाती है और इसे बढ़ाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति मजदूरी प्रोत्साहन योजना से ही सम्भव है।

2. भारतीय श्रमिक आर्थिक रूप से बहुत विपन्न होते हैं, अतः उन्हें आर्थिक प्रोत्साहन ही कार्य के प्रति प्रोत्साहित कर सकता है।

3. भारत तकनीकी रूप से निचले स्तर पर है, अतः इन्हें मजदूरी प्रोत्साहन से ही यांत्रिक साधनों के उपयोग हेतु प्रेरित किया जा सकता है।

4. मजदूरी प्रोत्साहन योजना कीमतों को इस तरह प्रभावित करती है, कि समुदाय भी लाभान्वित होगा।
5. राष्ट्रीय हित में भी मजदूरी प्रोत्साहन योजना उपयोगी है और इसका उपयोग समस्त आर्थिक क्रियाओं में होना चाहिए।

मजदूरी प्रोत्साहन के कतिपय योजनायें

यह अधोलिखित महत्वपूर्ण योजनाएँ हैं :–

1. **पालिसी प्रीमियम योजना** – यह समय बचत बोनस योजना है, जो उसके तीन सौ इकतीस बटा तीन प्रतिशत समय बचत के फलस्वरूप दिया जाता है। इस प्रकार से श्रमिक समय दर के आधार पर वेतन प्राप्त करता है। यदि वह अपेक्षित समय के भीतर मानक उपलब्धि नहीं प्राप्त कर पाता है तो उसकी मजदूरी समय निर्धारित मजदूरी के आधार पर दी जाती है। इस प्रकार से यह योजना दैनिक मजदूरी एवं कार्य मजदूरी का एक संशोधित संयुक्त रूप ही है। उदाहरणार्थ जैसे कि मानक समय बीस घंटा निर्धारित है, और इकाई को दस पूरा करना है और प्रत्येक घंटे मजदूरी दर 25 पैसा है तो योजना का कार्य इस तरह है –

1.	समय लिया गया (घंटों में)	14
	कार्य के घंटे जो बचे	6
	मजदूरी की प्राप्ति	रू0 3.50
	बोनस की मात्रा	रू0 0.75
	इस प्रकार से कुल आय	रू0 4.25

इस प्रकार से बोनस का सूत्र –

बोनस = 1/2 समय बचत समय लिया गया

2. **हल्से प्रीमीयम योजना** – यह योजना हल्से प्रीमीयम योजना के समान हैं, अंतर इतना है कि बचे हुए समय का 50% श्रमिक को बतौर प्रीमीयम दिया जाता है और इस प्रकार से बोनस = ½ x समय बचत x प्रति घंटा दर।
3. **रोवन प्रीमीयम योजना** – यह योजना बोनस निर्धारित करने में हाल्से योजना से अलग है, बाकि अन्य पक्षों में समानता है। इस योजना का उद्देश्य है कि प्रीमीयम दर को सुनिश्चित करना जो प्रायः सेवायोजनक द्वारा श्रमिकों को उनकी एक निर्धारित सीमा से अधिक क्षमता पाई जाती है। इस प्रीमीयम की गणना मानक समय से बताये गये समानुपात से की जाती है। उदाहरणार्थ –

कार्य पूरा	घंटा	प्रीमीयम धन	सम्पूर्ण मजदूरी
यदि कार्य	5	1 रू0	5 रू0

यदि कार्य	4	2 रू0	6 रू0
यदि कार्य	3	3 रू0	7 रू0
यदि कार्य	1	3½ रू0	7½ रू0

बोनस = समय बचत x लिया गया समय x प्रति घंटा दर दिया गया समय

4. **100% प्रीमीयम योजना** – इस योजना के तहत समय अध्ययन द्वारा निर्धारित मानक कार्य या कार्य न्यायादर्श समय दर में अभिव्यक्त किया जाता है, अपेक्षाकृत मुदा के। घंटावार दर घंटेवार किये गये कार्य के अनुसार दिया जाता है।

5. **बीडावस निर्देश योजना** – यह योजना 100% प्रीमीयम योजना से भिन्न है, इस योजना का लाभ यह है कि यह किसी भी कार्य हेतु उपयोग की जा सकती है, यह उन अभिकरणों के कर्मियों के लिए सुयोग्य है, जिनसे भिन्न–भिन्न प्रकार के काम लिये जाते है तथा एक से इकाई में स्थान्तरित होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रीमीयम योजनायें भी व्यवहार में प्रचलित हैं, जैसे– टेलर की विभेद टुकड़ा दर योजना, मेरिट की बहु डकड़ीय दर पद्धति, नाट्य कार्य व बोनस योजना, समर्सन की क्षमता योजना, सहयोगी व्यवस्था तथा बढ़ोत्तरी प्रीमीयम व्यवस्था।

12.5 आनुषांगिक लाभ की अवधारणा

यह लाभ प्रबंधक की स्वतः इच्छा पर दिया जाता है और जिसमें श्रम संगठनों की सामूहिक सौदेबाजी बगैर संगठन के सहयोग के प्रदान की जाती है जिसके तहत अधोलिखित प्रकार की सेवायें दी जाती हैं, यथा–

1. कार्य संचालन हेतु श्रमिकों को वस्त्र व यूनिफार्म देना तथा कार्य के संशाधन देना।
2. भोज्य सुविधा प्रदान करना जिसके तहत कम्पनी रेस्टूरेंट, कैपिटेरिया, कैंटीन एवं बेंडिंग मशीन की सुविधा देता है, और सस्ते दर भोज्य सामग्री दी जाती है।
3. **यातायात की सुविधा** – प्रतिष्ठान अपने कर्मियों व अन्य सुविधायें यातायात की प्रदान करता है।
4. **बाल संरक्षण सुविधा** – कर्मियों के बच्चों के लिए नर्सरी शिक्षा तथा दिवस देखभाल केन्द्रों की सुविधा प्रदान करना।
5. **आवासनीय सुविधा** – प्रतिष्ठान अपने कर्मियों के लिए सस्ते दर पर आवासीय सुविधा प्रदान करता है।
6. **आर्थिक एवं कानूनी सेवायें** – जिसके तहत कर्ज, कोष तथा क्रेडिट यूनियन सोसायटी की सुविधा तथा आयकर एवं कानूनी सहायता देना और समूह की या

योजना की सुविधा मुहैया करना। क्रय सुविधाओं की व्यवस्था जैसे कंम्पनी द्वारा संचालित स्टोर और कम्पनी के माल क्रय करने पर छूट की सुविधा।

7. मनोरंजन सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन यथा सामाजिक क्लब मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों का आयोजन, उत्सव व पिकनिक का आयोजन तथा पुस्तकालय आदि की सुविधा प्रदान करना।

8. **चिकित्सकीय सेवायें** – प्रतिष्ठान के कर्मियों के लिए क्लीनिक, अस्पताल, परामर्श सेवायें तथा सामाजिक सेवाओं का संचालन।

9. **इतर सेवाओं की सुविधा** – प्रतिष्ठान क्षेत्र के अन्य सेवायोजनकों से सम्पर्क करके संगठन हेतु सुविधा प्राप्त करने का कार्य।

इन सुविधाओं के संचालन, से श्रमिकों को नाम तो होती ही है किन्तु सेवायोजक को भी यह लाभ होता है कि श्रमिक संतुष्ट रह करके पूरी क्षमता के साथ अपने कार्य में लगा रहता है जिससे अधिकतम उत्पादन करते हुये सेवायोजक के लाभ अर्जन में सहभागी होता है।

12.6 मजदूरी परिषद एवं वेतन आयोग

भारतवर्ष में अधोलिखित संस्थायें ही वेतन नीति निर्धारित करती है, जैसे– सामूहिक सौदेबाजी एवं निर्णयन की प्रक्रिया दूसरे मजदूरी परिषद और व वेतन आयोग ।

1. **सामूहिक सौदेबाजी व निर्णयन की प्रक्रिया** – इसके तहत प्रतिष्ठान के भीतर अनेक समस्याओं की समाधान किया जाता है जिसमें मजदूरी निर्धारण प्रमुख है। इसमें श्रमिक व सेवायोजक स्वतः पंचायत के माध्यम से मजदूरी निर्धारण करते है।

2. **मजदूरी परिषद** – भारत सरकार द्वारा निर्मित यह एक विशिष्ट संस्था है जो मजदूरी का निर्धारण एवं परिमार्जन हेतु उत्तरदायी है। विभिन्न, उद्योगों हेतु अलग–अलग मजदूरी परिषद बने है। भारत सरकार ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना से मजदूरी परिषद का निर्माण करना शुरू किया है और द्वितीय योजना में सरकार के तदर्थ आधार पर इसका गठन किया।

इस परिषद में एक निर्दलीय चैयरमैन होता है और दो सदस्य होते है और दो या तीन श्रमिकों व सेवायोजकों के प्रतिनिधि होते हैं। ये सब मिलकर मजदूरी संबंधी संस्तुति सभी कारकों पर विचार करते हुए देते हैं।

सरकार को यह अधिकार है कि बगैर किसी परिवर्तन के इसे स्वीकार कर ले अथवा उनके द्वारा दी गई संस्तुतियों को नकार भी दे। किन्तु सरकार द्वारा स्वीकृति को मानना सेवायोजक व मजदूर दोनों के लिये अनिवार्य होता है। मजदूरी परिषद वेतन को निर्धारित

या संशोधित करने हेतु अधोलिखित बातों पर विचार करता है क्योंकि ये ही उससे मुख्य कार्य है :–

1. कार्य मूल्यांकन
2. समान फैक्ट्रियों में प्रचलित मजदूरी दर
3. श्रमिकों की उत्पादकता
4. प्रतिष्ठान की भुगतान क्षमता
5. मजदूरी समबंधी अधिनियम
6. वर्तमान मजदूरी का अंतर और उनकी अपेक्षायें
7. सरकारी उद्देश्य, सामाजिक न्याय, सामाजिक समानता, आर्थिक न्याय एवं उसकी गुणवत्ता।
8. देश व क्षेत्र विशेष में प्रतिष्ठान का स्थान।

12.7 वेतन आयोग का अर्थ एवं उसकी भूमिका

1. **वेतन आयोग –** केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा वेतन आयोग का गठन किया जाता है, जिसका कार्य वेतन निर्धारण एवं उसका परिमार्जन तथा अभिकर्मियों को दिये जाने वाले भत्ते का निर्धारण करना होता है। भारत सरकार ने अभी तक प्रथम वेतन आयोग से छठें वेतन आयोग तक निर्माण किया है। जिसके आधार पर सरकारी अधिकरणों तथा गैर सरकारी अधिकरणों में बड़े पैमाने पर सेवारत कर्मियों की वेतन वृद्धि काफी हुई है। जिसके आधार पर उच्चतम वेतन 30000 प्रतिमाह की जगह पर आज व्यक्ति 80000 प्राप्त कर रहा है। इस प्रकार से 1946 से लेकर के 1956, 1970, 1983 एवं 1996 तथा 2006 तक के गठित कमीशनों ने वेतन संबंधी संस्तुतियाँ की है जिनके आधार पर क्रमशः प्रथम वेतन आयोग से लेकर छठें वेतन आयोग तक वेतन में अनेक संशोधन व परिमार्जन व भत्तों में बढ़ोत्ती हुई है।

12.8 सार संक्षेप :

सभी प्रतिष्ठानों में वेतन एवं मजदूरी का प्रारूप एक जेसा नहीं दिखरता है। तथा सभी में इसे एक श्रमिक की मजदूरी के एवज में पारितोषित स्वरूप दिया जाता है। यह पारितोषित कार्य अथवा समय के आधार पर दिया जाता है तो इसे मजदूरी कहते है; और जब पारितोषिति संविदा के अनुसार मासिक अथवा वार्षिक पैकेज के आधार पर दिया जाता है तो इसे वेतन कहा जाता है।

वेतन/मजदूरी के प्रभावी नाटक या घटक अधोलिखित हैं। यथा –

1– अन्य प्रतिष्ठानों में मजदूरी एवं वेतन का स्वरूप।

2– प्रतिष्ठान की भुगतान क्षमता

3– जीवन लागत (Cost of living)

4– प्रतिष्ठान की उत्पादकता

5– श्रम संघों का दबाव

6– शासनादेश एवं अधिनियम

ज्ञातब्य है कि कि प्रतिष्ठान में मजदूर की उत्पादकता बढ़ाने हेतु ही उसे प्रेरक स्वरूप अन्य योजनाओं के माध्यम से लाभ दिया जाता हैं। इसके आधार पर प्रतिष्ठान में पूँजी नियोजन को कम किया जाता है, श्रमिकों की आय में वृद्धि की जाती है और उन्हें नियंत्रित करने में भी सुविधा प्राप्त होती है तथा इससे प्रतिष्ठान को लाभ भी अधिक प्राप्त होता है। मजदूरी परिषद एवं वेतन आयोग ही भारतवर्ष में वह महत्वपूर्ण संस्था है जो श्रमिक नीतियों पर विचार करते हुए उनकी मजदूरी एवं वेतन का निर्धारण करती हैं।

12.9 अभ्यास प्रश्न

(1) मजदूरी एवं वेतन की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।

(2) मजदूरी की परिभाषाओं का उल्लेख कीजिये।

(3) मजदूरी के प्रारूप का वर्णन कीजिये।

(4) मजदूरी एवं वेतन के उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

(5) मजदूरी एवं वेतन के प्रभावी कारकों का वर्णन कीजिये।

(6) मजदूरी प्रोत्साहन का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

(7) प्रोत्साहन योजनाओं का वर्णन कीजिये।

(8) आंशिक लाभ की अवधारण स्पष्ट कीजिये।

(9) आंशिक लाभ के अन्तर्गत दी जाने वाली सुविधाओं का वर्णन कीजिये।

(10) मजदूरी परिषद एवं वेतन आयोग पर एक निबंध लिखिये।

(11) छठें वेतन आयोग की संस्तुतियों पर प्रकाश डालिये।

12.10 पारिभाषिक शब्दावली

प्रचलित मजदूरी की दरें	Prevailing Rates of Wages	मजदूरी एवं वेतन	Wages & Salary
न्यूनतम मजदूरी	Minimum Wages	मजदूरी परिषद	Wage Council
प्रेरणात्मक मजदूरी दरें	Incentive Wage Plan	जीवन निर्वाह सिद्वान्त	Subsistence Theory
मजदूरी नीति	Wage Policy	उचित मजदूरी	Fair Wages

12.11 संदर्भ ग्रंथों की सूची :

1. सेठी, के0सी0 (1978) : ''वर्कस पार्टिशिपेशन एण्ड इण्डस्ट्रियल रिलेसन्श इन इण्डियाः सम रेफलेक्शन्स'', डिसिजन, वाल्यूम 5 नं0 3 (जुलाई)
2. माइकल, के0 पी0 (1984) : ''इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इण्डिया एण्ड वर्कर्स इन्वाल्वमेंट इन मैनेजमेंट'', दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस,
3. प्रोडर, डेल (1960) : 'पर्सनल मैनेजमेंट एण्ड इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स'

इकाई–13

प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभगिता

Workers' Participation in Management

इकाई की रूपरेखा

13.1 परिचय
13.2 उद्देश्य
13.3 प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का अर्थ
13.4 प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के उद्देश्य
13.5 सहभागिता का स्तर या मात्रा
13.6 भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाएँ
13.7 उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता पर वर्मा–समिति के सुझाव
13.8 प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता विधेयक, 1990
13.9 भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं की असफलता के कारण
13.10 सार संक्षेप
13.11 अभ्यास प्रश्न
13.12 पारिभाषिक शब्दावली
13.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.1 परिचय

औद्योगिक संबंध के दो महत्वपूर्ण पहलू होते है। ये है– संघर्ष तथा सहयोग के पहलू। आधुनिक उद्योग प्रबंध और श्रम के सहयोग के कारण ही चलते रहते हैं यह सहयोग नियोजन में अनौपचारिक रूप से स्वतः होता रहता है। उद्योगों का चलते रहना दोनों के हितों में आवश्यक है। साथ ही, नियोजन और श्रमिकों के कुछ हितों में विरोध भी पाए जाते है। जिससे उनके बीच संघर्ष भी होता रहता है। नियोजक और नियोजितों के कई हितों में विरोध नहीं होते, जिससे वे परस्पर सहयोग करते रहते है। इन्ही उभय हितों को ध्यान में रखते हुए श्रम–प्रबन्ध सहयोग की कई औपचारिक संस्थाएँ स्थापित की गई हैं, जो नियमित रूप से उभय समस्याओं का समाधान करती है। इन संस्थाओ को कई नाम से पुकरा जाता है; जैसे–श्रम–प्रंबध सहयोग, संयुक्त परामर्श, सह–निर्धारण, संयुक्त निर्णयन, उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता,या प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता साधारणतः उपर्युक्त सभी शब्द–समूह का प्रयोग समान अर्थों में किया जाता है, लेकिन उनमें कभी–कभी सहभागिता

के विशिष्ट रूपों, स्तरों या उसकी मात्रा के आधार पर अंतर बताने का प्रयास किया जाता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का अर्थ समझ सकेगें।
- प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के उद्देश्यों का वणर्न कर सकेगें।
- सहभागिता का स्तर या मात्रा की व्याख्या कर सकेगें।
- भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं आदि से परिचित हो सकेगें।
- उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता पर वर्मा–समिति के सुझावों को जान सकेगें।
- प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता विधेयक, 1990 का वर्णन कर सकेगें।
- भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं की असफलता के कारणों पर चर्चा कर सकेगें।

13.3 प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का अर्थ

प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की कुछ अवधारणाएँ निम्नलिखित है–

1. जी०पी० सिन्हा और पी० आर० एन० सिन्हा० के अनुसार'' श्रम–प्रबंध सहयोग से श्रम और पूँजी में दोनों की उभय समस्याओं के समाधान या उपचार के लिए संयुक्त प्रयासों का बोध होता है।''

2. वी० जी० मेहत्राज के मत में सहभागिता का अर्थ होता है,'' किसी औद्योगिक संगठन में साधारण कर्मियों द्वारा समुचित प्रतिनिधियों के जरिए प्रबंध के सभी स्तरों पर प्रबंधकीय क्रियाओं के समस्त क्षेत्र में निर्णयन के अधिकार में भाग लेना''

3. के० सी० अलेक्जेंडर के अनुसार, कोई भी प्रबंध सहभागी तभी होता है, ''जब वह किसी भी स्तर पर या क्षेत्र में अपने निर्णयन की प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए कर्मकारों को अवसर प्रदान करता है या जब वह अपने कुछ प्रबंधकीय परमाधिकारों में उनके साथ–साथ भाग लेता है।''

4.इआन क्लेग्ग के मत में, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता से ''ऐसी स्थिति का बोध होता है, जिसमें कामगारों के प्रतिनिधि कुछ हद तक प्रबंधकीय निर्णयन की प्रक्रिया में सम्मिलित होते है, लेकिन जहाँ अंतिम शक्ति प्रबंध के हाथों में ही रहती है।''

5. निल डब्यू० चैम्बरलेन ने सामूहिक सौदेबाजी और संघ–प्रबंध सहयोग के बीच अंतर बताने के सिलसिले में कहा है–संघ–प्रबंध सहयोग ''स्पष्ट रूप से उभय हितों से संबद्ध विषयों पर संयुक्त निर्णयन है।''

6. जे० आर० पी० फ्रेंच के अनुसार ''भागीदारी वह प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक पक्षकार कतिपय योजनाएँ और नीति बनाते तथा निर्णय लेते समय एक–दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। यह उन निर्णयों तक सीमित रहती है जिनका प्रभाव उन सभी पर पड़ता है जो निर्णय लेते हैं तथा जिनका वे प्रतिनिधित्व करते है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हैं कि प्रबंध श्रमिकों की सहभागिता से ऐसी स्थिति का बोध होता है, जिसमे प्रबंध अपने परंपरागत परमाधिकारों में उन विषयों पर श्रमिकों के साथ संयुक्त निर्णयन करते हैं जिन्हे दोनो उभय हित में उपयोगी समझते हैं। सामूहिक सौदेबाजी में दोनों पक्षकार अपने विरोधी हितों के विषयों पर मोल–तोल करते हैं, लेकिन प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता में वे सौदेबाजी नहीं करते, बल्कि अपने उभय हितों पर संयुक्त निर्णय लेते हैं।

13.4 प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के उद्देश्य

प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के कई उद्देश्य होते है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं–

1. उत्पादकता में वृद्धि – उत्पादकता में वृद्धि प्रबंध और श्रम के उभय हित में है। उत्पादकता के बढ़ने से श्रमिकों की अधिक मजदूरी और विभिन्न प्रकार की सुविधाओं की उपलब्धि की संभावना होती है तथा नियोजक को अधिक लाभ की प्राप्ति हो सकती हैं श्रम–प्रबंध सहयोग से उत्पादकता या कौशल में वृद्धि की जा सकती है तथा उत्पादित वस्तुआं की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है। इससे बरबादी को रोकने तथा लागत कम करने में भी सहायता मिल सकती हें उत्पादकता में वृद्धि के फल के विभाजन के सिलसिलेमें श्रमिकों और प्रबंधकों या नियोजक के बीच मतभेद हो सकता है, लेकिन उसे बढ़ाने या उसमें सुधार लाने के संबंध में उनके बीच विरोध की बात नहीं उठती। जहाँ उत्पादकता–वृद्धि के फल के विभाजन की समुचित व्यवस्था है, वहाँ प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की अधिकांश योजनओं में उत्पादकता–वृद्धि, यंत्रों और मशीनों या समुचित उपयोग, बरबादी की रोकथाम, उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता बनाए रखने, उत्पादन–घंटो के अधिकाधिक उपयोग, विनिर्माण–प्रक्रिया तथा कार्य की भौतिक दशाओं में सुधार को विशेष रूप से सम्मिलित किया जाता है

2. औद्योगिक प्रजातंत्र को प्रोत्साहन – कई लोगों के मत में आधुनिक उद्योगों में उन विषयों के निर्धारण में श्रमिकों को सहभागिता के अवसर प्रदान करना आवश्यक है, जिनसे वे प्रत्यक्ष रूप से सबद्ध रहते हैं। सामूहिक सौदेबाजी में श्रमिक नियोजक पर दबाव डालकर बहुत कुछ ले लेते हैं, लेकिन इससे उन्हें प्रतिदिन के प्रबंध में भाग लेने का नियमित अवसर नहीं मिलता। सामूहिक सौदेबाजी के विकास, श्रमसंघों की शक्ति में वृद्धि तथा नियोजकों की प्रवृत्ति में परिवर्तन के कारण ऐसी संस्थाओं के गठन पर जोर दिया जाने लगा हैं,

जिसमें श्रमिकों के प्रतिनिधि प्रबंधकों के साथ नियमित रूप से बैठकर संयुक्त निर्णय ले सकें। इससे श्रमिकों के बीच प्रतिष्ठान के प्रति अस्था मजबूत होती है और उन्हें प्रबंध में भाग लेते रहने की संतुष्टि प्राप्त होती रहती है। सामजवादी देशों में तो प्रबंध के कई क्षेत्रों में श्रमिकों की सहभागिता को प्रोत्साहित करने पर विशेष रूप से जोर दिया जाता है। ऐसे कुछ देशों में श्रमिक उद्योग के विभिन्न स्तरों पर कई महत्वपूर्ण विषयों पर प्रबंधकों के साथ संयुक्त निर्णय लेते है। इस तरह, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता से औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है।

3. संघर्ष की रोकथाम–श्रम और प्रबंध के बीच सहयोग से दोनों एक–दूसरे की समस्याओं और स्थितियों से अच्छी तरह अवगत होते हैं और वे उनके समाधान के लिए मैत्री के वातावरण में प्रयास करते हैं। इस तरह, श्रम–प्रबंध सहयोग से उद्योग में अच्छे नियोजक–नियोजित सबंध की स्थापना होती है। संयुक्त निर्णयों द्वारा समस्याओं के समाधान के अनुभव से दोनों पक्षकार विवादास्पद विषयों के भी हल निकालने में सफल होते हैं। कोई भी पक्ष संयुक्त निर्णयों से असंतुष्ट होने पर उनका विरोध नहीं करता, क्योंकि उनमें वह भी सक्रिय पक्षकार रहा है। इस तरह, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता से औद्योगिक शांति बनाए रखने में प्रचुर सहायता मिलती है।

4. श्रमिकों के विकास एवं कार्यतोष में सहायक– प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं से श्रमिकों को आत्माभिव्यक्ति और विचारों के आदान–प्रदान का प्रचुर अवसर मिलता है। उनके विचारों एवं सुझावों से संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है तथा प्रबंध भी श्रमिकों के विकास के लिए सामुचित अवसर प्रदान करता रहता है। प्रबंध की सहनुभूतिपूर्ण प्रवृत्ति एवं संगठन में व्याप्त सहयोग के वातावरण से श्रमिकों के कार्यतोष में भी वृद्धि होती रहती है। साथ ही, श्रमिक समझते है कि इन योजनाओं के माध्यम से कार्य–स्थल पर उनके मानवीय अधिकारों पर ध्यान दिया जा रहा हैं और वे सक्रिय भागीदार के रूप में संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में अपना योगदान देते रहते हैं।

5. प्रबंधकीय कौशल में वृद्धि – प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी से प्रबंध को उत्पादक तथा संगठन के अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति में श्रमिकों के उपयोगी सुझाव मिलते रहते है। इन सुझावों को ध्यानमें रखते हुए प्रबंधक अपनी कार्य–प्रणाली एवं उत्पादन–प्रक्रियाओं में सुधार करते रहते हैं। सहभागिता की योजनाओं के लागू होने के फलस्वरूप दोषपूर्ण प्रबंधकीय क्रियाकलाप एवं तरीकों को त्यागे जाने एवं सही मार्गो के अपनाए जाने के कई उदाहरण मिलते हैं। इस तरह, प्रबंधकीय कौशल में वृद्धि होती है और संगठन के उद्देश्य सहजता से प्राप्त होते है।

13.5 सहभागिता का स्तर या मात्रा

प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का स्तर या उसकी मात्रा एक समान नहीं होती। कहीं सहभागिता बहुत ही सीमित होती हैं, तो कहीं श्रमिक कई प्रबंधकीय क्षेत्रों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। विभिन्न देशों के प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी की योजनाओं के अध्ययन के आधार पर विद्धानों ने सहभागिता के विभिन्न स्तरों का उल्लेख किया है। इन विद्वानों में **अलेक्जेंडर, मेहत्राज, राघवन, दत्ता, टानिक** और **एडम** सम्मिलित हैं। भागीदारी की योजनाओं के क्रियान्वयन को ध्यान में रखते हुए प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के अग्रलिखित स्तरों या मात्रा का उल्लेख किया जा सकता है–

1. सूचनात्मक सहभागिता –सहभागिता के इस स्तर पर नियोजक उद्यम से सबंद्ध कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे– व्यवसाय की दशाओं, उद्यम के भविष्य, उत्पादन–प्रणाली में परिवर्तन आदि के संबंध में सूचनाएँ उपलब्ध कराने के लिए सहमत हो जाते है। सहभागिता का यह स्तर न्यूनतम होता है। सूचात्मक सहभागिता से कर्मचारी नियोजक की स्थिति से अवगत हो जाते है तथा उन्हें ध्यान में रखते हुए अपनी माँगों और सुझावों को प्रस्तुत करते हैं। इससे श्रमसंघ को अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों में संशोधन करने तथा कर्मचारियों की प्रवृत्तिमें परिवर्तन लाने में सहायता मिलती है। भारत में प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी की योजनाओं के अंतर्गत जिन क्षेत्रों में कर्मचारियों को सूचनाएँ उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है, उनमे मुख्य है– उद्यम की सामान्य आर्थिक स्थिति, उद्यम का संगठन और सामान्य संचालन, बाजार, विक्रय एवं उत्पादन की स्थिति, कार्य एवं विनिर्माण के तरीके, वार्षिक तुलन–पत्र तथा विस्तार एवं परिनियोजन–योजनाएँ।

2. समस्या–सहभागिता–सहभागिता के इस स्तर पर नियोजक उत्पादन या उद्यम से संबद्ध विशेष समस्याओं के समाधान के लिए कर्मचारियों या श्रमसंघ से परामर्श करता है और इस संबंध में उनका सहयोग प्राप्त करता हैं इस स्तर की सहभागिता सामान्यतः आवश्यकता पड़ने पर विशेष समस्याओं के समाधान के लिए अस्थायी रूप से होती है। अनुभव के आधार पर इसे व्यापक और स्थायी रूप दिया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के वस्त्र–उद्योग में इस तरह की सहभागिता के कई उदाहरण मिलते है। भारत में प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी की योजनाओं में जिन समस्याओं के समाधान का उल्लेख किया गया है, उनमें महत्वपूर्ण हैं– निम्न–उत्पादकता, बरबादी, अनुपस्थिति, अनुशासनहीनता, दोषपूर्ण सेवा, चोरी और भ्रष्टाचार, प्रदूषण, मद्यपान और जुआबाजी।

3. परामर्शी सहभागिता–सहभागिता के इस स्तर या मात्रा में नियोजक और कर्मचारियों या श्रमसंघ के बीच कई पूर्व–निर्धारित उभय विषयों पर औपचारिक एवं नियमित परामर्श की व्यवस्था की जाती है। इसके अंतर्गत नियोजक उद्यम से संबद्ध महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय

लेने के पहले कर्मचारियों या श्रमसंघों से परामर्श कर लेता है और उनके दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर निर्णय लेने के पहले कर्मचारियों या श्रमसंघों नियोजक को अपने विचारों से अवगत कराते है और अपने सुझाव भी देते है, लेकिन उन्हें स्वीकार करने के लिए नियोजक को बाध्य नहीं करते। परामर्शी सहभागिता में संयुक्त–निर्णयन नहीं होता। इस स्तर की सहभागिता से कर्मचारियों और श्रमसंघ की प्रस्थिति को निश्चित मान्यता मिलती है। भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं में परामर्शी सहभागिता के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं– स्थायी आदेश उत्पादन एवं विनिर्माण के नए तरीके, बंदी तथा संचालन में रूकावट, अनुपस्थिति, सुरक्षा, अनुशासन, भौतिक दशाएँ, संचार, तथा उत्पादकता और गुणवत्ता।

4. प्रशासकीय सहभागिता – इस स्तर की सहभागिता में उद्यम से संबद्ध कुछ क्षेत्रों में प्रशासन का भार कर्मचारियों और प्रबंधकों की संयुक्त समितियों को सौंप दिया जाता है। सहभागिता के इस स्तर में कर्मचारियों को अपेक्षाकृत अधिक जिम्मेदारी और अधिकार प्राप्त होते हैं तथा उन्हें प्रशासन और निरीक्षण–संबंधी कार्यों में अधिक स्वायत्तता प्राप्त होती है। भारत की सहभागिता–योजनाओं में जिन क्षेत्रों में संयुक्त निकायों को प्रशासकीय दायित्व सौंपे जाने की व्यवस्था है, उनमें महत्वपूर्ण हैं–सुरक्षा, कैंटीन, कल्याण–सुविधाएँ, सुझाव, और शिक्षु तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण।

5. निर्णयात्मक सहभागिता –यह प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का उच्चतम स्तर है। इस स्तर में निर्णय की प्रक्रिया वास्तव में संयुक्त होती है। इसमें प्रबंध और श्रमसंघ या श्रमिकों के प्रतिनिधि दोनों को संयुक्त रूप से निर्णय लेने के अवसर मिलते हैं और निर्णयों के परिणामों का दायित्व दोनों पर संयुक्त रूप से रहता है। अधिकांश योजनाओं में संयुक्त–निर्णयन के क्षेत्र पूर्व–निर्धारित रहते हैं, लेकिन इन क्षेत्रों की व्यापकता या विषयों में अंतर पाया जाता है। निदेशक बोर्ड में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व भी इस स्तर की सहभागिता का उदाहरण या विषयों में अंतर पाया जाता है। निदेशक बोर्ड में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व भी इस स्तर की सहभागिता का उदाहरण है। भारत में संयुक्त–निर्णयन के क्षेत्र सीमित हैं, लेकिन जर्मनी, स्वेडेन, इटली, युगोस्लाविया, पोलैंड और जापान में ये व्यापक हैं।

कुछ लोग सामूहिक सौदेबाजी को भी निर्णयात्मक सहभागिता के रूप में देखते है। लेकिन, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता और सामूहिक सौदेबाजी में केवल विषयवस्तु के आधार पर ही अंतर नहीं होता, बल्कि दोनों के स्वरूप में भी अंतर होता है। सहभागिता मुख्यतः उभय हितों के विषयों पर ही होती है, जबकि सामूहिक सौदेबाजी मुख्यतःविरोधी हितों पर। प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता में सद्भावना एवं पारस्परिक विश्वास के आधार पर उभय हितों के विषयों पर सहयोग करना तथा उत्पादन–वृद्धि या कार्यकुशलता के

सुधार करना आवश्यक तत्व होते हैं, लेकिन सामूहिक सौदेबाजी दोनों पक्षकारों को उत्पीड़क शक्ति से उत्पन्न हो सकने वाले परिणामों पर आधृत रहता है।

13.6 भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाएँ

भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का प्रारंभ मुख्यतः सरकार के तत्त्वावधान में हुआ। 1947 के औद्योगिक संधि–प्रस्ताव में श्रमिकों के कौशल तथा उत्पादकता में सुधार लाने के उद्देश्य से औद्योगिक प्रतिष्ठानों में इकाई–उत्पादन–समितियों के गठन पर जोर दिया गया। 1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में द्विदलीय उत्पादन–समितियों की स्थापना की अनुशंसा की गई। 1948 में ही केन्द्रीय सरकार ने इकाई उत्पादन समितियों के गठन के लिए एक आदर्श प्रारूप तैयार किया। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत गठित की गई कार्य–समितियों द्वारा उत्पादन–समितियों के रूप में काम करने पर भी जोर दिया गया। आदर्श प्रारूप के अनुसार इकाई–उत्पादन–समितियों का मुख्य कार्य उत्पादन की उन विशेष समस्याओं पर विचार–विमर्श करना तथा सलाह देना है, जिनसे श्रमिक प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो सकते हैं। प्रत्येक समिति में प्रतिष्ठान में नियोजित श्रमिकों के निर्वाचित प्रतिनिधि तथा प्रबंध द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि होंगे। समितियों के क्रियाकलाप में जिन विशेष को सम्मिलित किया गया, उनमें मुख्य हैं– (i) मशीनों, यंत्रों और औजारों का अच्छा रख–रखाव, (ii) उत्पादन–समय का सर्वाधिक उपयोग, (iii) दोषपूर्ण कार्य एवं बरबादी की समाप्ति तथा (iv) सुरक्षा–साधनों एवं तरीकों का अधिक कुशलता से प्रयोग। योजना, विकास, उत्पादन के व्यापक कार्य, पूर्णतः प्रबंधकीय कार्य तथा श्रमसंघों द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य इन समितियों के दायरे से बाहर रखे गए। व्यवहार में, इन प्रयासों को कोई सफलता नहीं मिली, लेकिन प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के विचार को कई मंचो पर स्वीकृति मिलती गई। कालक्रम में देश में श्रम–प्रबंध सहयोग को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए।

1958 में देश में संयुक्त प्रबंध परिषदों की योजना अपनाई गई। 1975 में कर्मशाला परिषदों तथा संयुक्त परिषदों की नई योजनाएँ लागू की गई। 1977 में सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्यिक एवं सेवा संगठनों के लिए अलग से श्रम–प्रबंध सहयोग की संस्थाओं की स्थापना की गई। 1977 में ही संविधान में संशोधन कर राज्य–नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत अनुच्छेद 43A को जोड़कर उपयुक्त विधान बनाकर या अन्य कारगर तरीके से उद्योग में लगें उद्यमों, स्थापनों तथा अन्य संगठनों में प्रबंध में इस संबंध में एक समिति गठित की गई। समिति की सिफारिशों पर 1980 में श्रममंत्री रवीन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में इस संबंध में एक समिति गठित की गई। समिति की सिफारिशों पर 1980 में श्रममंत्रियों के सम्मेलन में विचार किया गया। इन सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, 1983 में केंद्रीय

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए 1975 और 1977 की योजनाओं के स्थान पर प्रबंध में कर्मचारियों की भागेदारी की एक नई योजना शुरू की गई। इनके अतिरिक्त, देश में सरकारी सेवाओं तथा कुछ निजी प्रतिष्ठानों में संयुक्त परिषदों की अलग से व्यवस्था है। भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाओं को निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है।

1. कार्य–समिति, 1947
2. संयुक्त प्रबंध परिषद, 1958
3. पुराने 20–सूत्री कार्यक्रम के अधीन प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाएँ, 1975
4. सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्यिक एवं सेवा–संगठनों के लिए संस्थाएँ, 1977
5. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए प्रबंध में कर्मचारियों की भागीदारी योजनाओं के अंतर्गत संस्थाएँ, 1983
6. सरकारी सेवाओं में संयुक्त परिषद
7. कुछ निजी प्रतिष्ठानों में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाएँ

प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की उपर्युक्त संस्थाओं की विवेचना नीचे की जाती है।

1. कार्य–समिति, 1947–औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत ऐसे किसी भी प्रतिष्ठान में, जिसमें 100 या इससे अधिक संख्या में कर्मकार नियोजित हैं या पिछले बारह महीने में किसी भी दिन नियोजित रहे हों, अपने–अपने अधिकार–क्षेत्र के उद्योगों के संबंध में केंद्रीय एवं राज्य सरकारें कार्य–समिति के गठन की अपेक्षा कर सकती है। कार्य–समिति में नियोजक और कर्मकारों के प्रतिनिधि होते हैं, लेकिन कर्मकारों के प्रतिनिधियों की संख्या नियोजकों के प्रतिनिधियों की संख्या से कम नहीं हो सकती। कर्मकारों के प्रतिनिधियों का चयन संबद्ध प्रतिष्ठान के

पंजीकृत श्रमसंघ के परामर्श से करना आवश्यक है। अधिनियम के अनुसार कार्य–समिति का कार्य नियोजक और कर्मकारों के बीच मैत्री और अच्छे संबंध बनाए रखने के लिए उपाय करना और इस उद्देश्य से उनके सामान्य हितों और संपर्कवाले मामलों पर टिप्पणी करना तथा मतभेदों को दूर करने के लिए प्रयास करना है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम में कार्य–समिति के विशिष्ट कार्यो का विवरण नहीं दिया गया है। इस संबंध में भारतीय श्रम–सम्मेलन द्वारा 1959 में एक समिति गठित की गई, जिसकी सिफारिशों की पुष्टि सम्मेलन ने अपनी 1961 की बैठक में की। समिति ने कार्य–समिति के कार्यों की विस्तृत सूची बनाना अव्यावहारिक समझा तथा इसमें लचीलेपन के तत्त्व को स्वीकार किया। फिर भी, समिति ने कार्य–समिति द्वारा किए जानेवाले कार्यों और नहीं किए जानेवाले कार्यों के क्षेत्रों की एक निदर्शी सूची तैयार की।

कार्य–समिति द्वारा किए जा सकनेवाले कार्यों के क्षेत्र में सम्मिलित विषय है–(i) कार्य की दशाएँ, जैसे–संवातन, तापमान, प्रकाश और सफाई, (ii) सुविधाएँ, जैसे– पेयजल की आपूर्ति, कैंटीन, विश्राम–कक्षा, शिशु–गृह, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ, (iii) सुरक्षा, दुर्घटनाओं की रोकथाम, व्यावसायिक रोग तथा संरक्षात्मक उपकरण, (iv) उत्सव तथा राष्ट्रीय अवकाश–दिन, (v) कल्याण एवं जुर्माना–कोष का प्रशास, (vi) शैक्षिक एवं मनोरंजनात्मक क्रियाकलाप तथा (vii) बचत और मितव्ययिता को प्रोत्साहन।

वे क्षेत्र जो कार्य–समिति के कार्यक्षेत्र के बाहर होंगे, हैं–(i) मजदूरी और भत्ते, (ii) बोनस तथा लाभ में भागीदारी की योजनाएँ, (iii) युक्तिकरण तथा कार्यभार का नियतन, (iv)मानक श्रम–शक्ति का नियतन, (v) योजना एवं विकास–कार्यक्रम, (vi) छँटनी एवं जबरी छुट्टी से संबंध विषय, (vii) श्रमसंघ कार्यकलाप के लिए उत्पीड़न, (viii) भविष्य–निधि, उपदान तथा अन्य सेवा–निवृत्ति योजनाएँ, (ix) अभिप्रेरणा–योजनाएँ तथा (x) आवास तथा परिवहन–सेवाएँ।

सरकार की श्रम–नीतियों एवं पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत इस संस्था को शक्तिशाली बनाने पर जोर दिया गया, लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर देश में कार्य–समिति की संस्था पूरी तरह विफल रही है। राष्ट्रीय श्रम आयोग (1969) ने कार्य–समिति की असफलता के कारणों का उल्लेख करते हुए कहा है, ''हमारे समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य में राज्य सरकारों ने यह मत प्रकट किया है कि सिफरिशों के सलाहकारी स्वरूप, उनके वास्तविक कार्यक्षेत्र और कार्यों के बारे में अस्पष्टता, संघों की आपस में चलने वाली प्रतिस्पर्धा, संघों का विरोध और नियोक्ताओं द्वारा इन तरीकों को अपनाने से इनकार करने के कारण ये समितियाँ और अधिक अप्रभावी होती जा रही हैं। नियोक्ताओं के संगठनों ने इन समितियाँ की असफलता का कारण ये समितियाँ और अधिक अप्रभावी होती जा रही हैं। नियोक्ताओं के संगठनों ने इन समितियाँ की असफलता का कारण संघों की आपसी प्रतिस्पर्धा, संघों का विरोध और सदस्यों (श्रमिक पक्ष के) द्वारा समिति में असंगत मामलों पर विचार–विमर्श शुरू करने की कोशिश जैसे तत्त्व रहे हैं। संघों के मतानुसार संघ और कार्य–समिति के कार्यक्षेत्रों–संबधी विवाद और नियोक्ताओं का असहयोगपूर्ण रवैया इन समितियों की असफलता का नाम कारण रहा है।''

2. संयुक्त प्रबंध परिषद, 1958– भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के महत्व को स्वीकार करते हुए 1956 के औद्योगिक नीति–प्रस्ताव में कहा गया, ''समाजवादी प्रजातंत्र में विकास के सामान्य कार्य में श्रम साझेदार होता है तथा उसे इसमें उत्साह से भाग लेना चाहिए। इसके लिए संयुक्त परामर्श की आवश्यकता है तथा जहाँ संभव हो कामगारों और शिल्पियों को प्रबंध में उत्तरोत्तर सम्मिलित किया जाना चाहिए।'' द्वितीय पंचवर्षीय योजना में

भी बड़े उद्योगों में संयुक्त प्रबंध परिषदों की स्थापना की सिफारिश की गई। इकाई–उत्पादन–समितियों की तुलना में इन परिषदों को अधिक व्यापक अधिकार देने का सुझाव दिया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने यूरोपीय देशों में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं के अध्ययन के लिए एक दल भेजा। इस अध्ययन–दल की रिपोर्ट और उसके सुझावों पर भारतीय श्रम–सम्मेलन के पंद्रहवें अधिवेशन के विस्तार से विचार–विमर्श हुआ। सम्मेलन ने अध्ययन–दल की रिपोर्ट और सिफारिशों को स्वीकार करते हुए प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की विस्तार से योजना तैयार करने के लिए एक त्रिदलीय उपसमिति का गठन किया। 1958 में इस विषय पर एक राष्ट्रीय सेमिनार का भी आयोजन किया गया, जिसमें भारत के विशेष संदर्भ में संयुक्त प्रबंध परिषदों के गठन से संबद्ध कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए गये। सेमिनार में प्रबंध और श्रमसंघ के हितों को ध्यान में रखने के लिए संयुक्त प्रबंध परिषदों की स्थापना से संबद्ध एक आदर्श समझौते का प्रारूप भी तैयार किया गया। इन प्रयासों के फलस्वरूप भारत में संयुक्त प्रबंध परिषद की योजना तैयार की गई और उसे लागू करने के लिए कदम उठाए गए। संयुक्त प्रबंध परिषदों के गठन और कार्यों की विवेचना नीचे की जाती है–

(i)संयुक्त प्रबंध परिषदों का गठन– संयुक्त प्रबंध परिषद में प्रबंध और कर्मचारियों के प्रतिनिधि बराबर–बराबर की संख्या में होगें। उनकी कुल संख्या बड़े प्रतिष्ठानों में अधिकतम 12 तथा छोटे प्रतिष्ठानों में अधितम 6 हो सकती है। जिस प्रतिष्ठान में कानून के अंतर्गत मान्यता–प्राप्त प्रतिनिधिं श्रमसंघ है, उसमें कर्मचारियों के प्रतिनिधियों का मनोनयन उसी संघ के द्वारा करना आवश्यक है। जहाँ इस प्रकार का श्रमसंघ नहीं है और वहाँ केवल एक श्रमसंघ है, तो कर्मचारियों के प्रतिनिधियों का मनोनयन उसी श्रमसंघ द्वारा किया जाएगा। जहाँ दो या दो से अधिक श्रमसंघ हैं, वहाँ कर्मचारियों के प्रतिनिधियों का मनोनयन उन संघों की सहमति से किया जाएगा। श्रमसंघ अपने प्रतिनिधियों की कुल संख्या 25 प्रतिशत प्रतिनिधियों को गैर–कामगारों में से भी मनोनीत कर सकते हैं। प्रबंधकों के प्रतिनिधियों का मनोनयन प्रबंध द्वारा किया जाएगा।

(ii) **संयुक्त प्रबंध परिषदों कें उद्देश्य एवं कार्य**– आदर्श समझौते के प्रारूप में संयुक्त प्रबंध परिषदों के कार्यो का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस समझौते की प्रास्तावना में इन परिषदों के उद्देश्यों का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें मुख्य है– (1) उद्यम, कर्मचारियों तथा देश के सामान्य लाभ के लिए उत्पादकता बढ़ाने का प्रयास करना, (2) उद्योग के कार्यकरण तथा उत्पादन–प्रक्रिया में कर्मचारियों को उनकी भूमिका तथा उनके महत्व के बारे में अधिक समझ के अवसर प्रदान करना तथा (3) उनकी आत्माभिव्यक्ति की

भावना को संतुष्ट करना। इन परिषदों के कुछ विशेष लक्ष्य है– (i) कर्मचारियों के कार्य एवं रहने की दशाओं में सुधार लाना, (ii) उत्पादकता में वृद्धि करना, (iii) कर्मचारियों के बीच से सुझावों को प्रोत्साहित करना, (iv) कानूनों और समझौतों के प्रशासन में सहायता प्रदान करना, (v)प्रबंध और कर्मचारियों के बीच विश्वसनीय संचार–माध्यम का कार्य करना तथा (vi) कर्मचारियों में सहभागिता की सजीव भावना का सर्जन करना।

संयुक्त प्रबंध परिषदों के विशिष्ट कार्यों को तीन मुख्य श्रेणियों में रखा गया है। यह हैं–(i) परामर्शी कार्य (ii) सूचना प्राप्त करने एवं सुझाव देने से संबद्ध कार्य तथा (iii) प्रशासनिक कार्य।

(i) परामर्शी कार्य–प्रबंध के लिए संयुक्त प्रबंध परिषद से अग्रलिखित बातों पर परामर्श लेना आवश्यक है–

1. स्थायी आदेशों का सामान्य प्रशासन तथा उनका संशोधन, 2.उत्पादन और विनिर्माण के नए तरीकों का प्रयोग, जिससे श्रमिकों और मशीनों का पुनः परिनियोजन आवश्यक हो जाता हो 3. बंदी तथा संचालन में कमी या उसका रुक जाना।

(ii) सूचना प्राप्त करने एवं सुझाव देने से संबद्ध कार्य– संयुक्त प्रबंध परिषदों को जिन विषयों पर सूचना प्राप्त करने तथा सुझाव देने के अधिकार होंगे वे है–1. प्रतिष्ठान की सामान्य आर्थिक स्थिति 2. उद्यम का संगठन तथा सामान्य संचालन 3. बाजार, उत्पादन तथा विक्रय–कार्यक्रमों की स्थिति, 4. उद्यम की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ, 5. कार्य एवं विनिर्माण के तरीके, 6. वार्षिक तुलन–पत्र, लाभ–हानि का विवरण और संबद्ध दस्तावेज 7. विस्तार एवं पुनः परिनियोजन की दीर्घकालीन योजनाएँ तथा 8. अन्य सहमत विषय।

(iii) प्रशासनिक कार्य– संयुक्त प्रबंध परिषदों के प्रशासनिक कार्यों में सम्मिलित हैं–

1. कल्याणकारी कार्यक्रमों का प्रशासन, 2. सुरक्षा के उपायों का पर्यवेक्षण, 3. व्यावसायिक प्रशिक्षण एंव शिक्षु योजनाओं का संचालन, 4. कार्य के घंटों, अंतरालों तथा अवकाशों की अनुसूची तैयार करना, 5. कर्मचारियों से प्राप्त किए गए उपयोगी सुझावों के लिए परितोषिक का भुगतान तथा 6. अन्य विषय जिनके बारे में परिषद में सहमति हो।

सामूहिक सौदेबाजी के विषयों– जैसे मजदूरी, बोनस, भत्तों आदि को– संयुक्त प्रबंध परिषदों के अधिकार–क्षेत्र से बाहर रखा गया है। व्यक्तिगत परिवेदनाओं को भी इन परिषदों के दायरे में नहीं रखा गया है।

संयुक्त प्रबंध परिषदों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार तथा त्रिपक्षीय निकायों द्वारा कई तरह के प्रयास किए गये। देश की पंचवर्षीय योजनाओं में उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए नीति और कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया। इन प्रयासों के बावजूद देश में

संयुक्त प्रबंध परिषदों की प्रगति अत्यंत ही असंतोषजनक रही है। 1966 से 1968 की अवधि को छोड़कर इन परिषदों की कुल संख्या देशभर में 100 से भी कम रही है। वर्तमान समय में देश में 80 से भी कम संयुक्त प्रबंध परिषदें कार्यरत हैं। जिन प्रतिष्ठानों में यह परिषदें है। उनमें भी व सुचारु रूप से काम नहीं कर रहीं है।

3. पुनाने 20–सूत्री कार्यक्रम के अधीन प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाएँ, 1975– 1975 के बीस–सूत्री कार्यक्रम के अधीन प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की नई योजनाएँ लागू करने के निदेश दिए गये थे।इन निदेशों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने कर्मशाली–तल तथा प्रतिष्ठान या संयंत्र के स्तरों पर 'उद्योग में श्रमिकों की सहभगिता' निजी तथा सहकारी क्षेत्रों की ऐसी विनिर्माणी तथा खनन इकाइयों में लागू करने का निर्णय किया गया, जिनमें 500 से अधिक कामगार नियोजित हों। ये योजनाएँ विभागीय रूप से संचालित इकाइयों के लिए भी थीं। इन योजनाओं के अंतर्गत कर्मशाला/विभाग के स्तर पर कर्मशाला परिषदों तथा उद्यम या प्रतिष्ठान के स्तर पर संयुक्त परिषदों की स्थापना की व्यवस्था की गई।

1. कर्मशाला परिषद– ऐसी प्रत्येक औद्योगिक इकाई में, जिसमें 500 या अधिक कामगार नियोजित हैं, नियोजक के लिए प्रत्येक विभाग या कर्मशाला के लिए एक कर्मशाला परिषद का गठन करना आवश्यक है। विभिन्न विभागों या कर्मशालाओं में नियोजित कामगारों की संख्या को ध्यान में रखते हुए नियोजक एक से अधिक विभागों/कर्मशलाओं के लिए केवल एक ही कर्मशाला परिषद का गठन कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय उसे मान्यता–प्राप्त श्रमसंघ या विभिन्न पंजीकृत श्रमसंघों या कामगारों से परामर्श लेना आवश्यक है।

1. कर्मशाला परिषद– ऐसी प्रत्येक औद्योगिक इकाई में जिसमें 500या अधिक कामगार नियोजित हैं, नियोजक के लिए प्रत्येक विभाग या कर्मशाला के लिए एक कर्मशाला परिषद का गठन करना आवश्यक है। विभिन्न विभागों या कर्मशालाओं में नियोजित कामगारों की संख्या को ध्यान में रखते हुए नियोजक एक से अधिक विभागों/कर्मशालाओं के लिए केवल एक ही कर्मशाला परिषद का गठन कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय उसे मान्यता–प्राप्त श्रमसंघ या विभिन्न पंजीकृत श्रमसंघों या कामगारों से परामर्श लेना आवश्यक है।

(i) गठन– प्रत्येक कर्मशाला परिषद में प्रबंध और श्रमिकों के प्रतिनिधि बराबर–बराबर की संख्या में रहेंगे। प्रबंध के प्रतिनिधि संबद्ध इकाई के प्रबंधकों में से नियोजक द्वारा मनोनीत किए जाएँगे। कर्मकारों के प्रतिनिधि संबद्ध विभाग या कर्मशाला में वास्तव में काम करनेवाले कर्मकारों में से होंगे। प्रत्येक कर्मशाला परिषदमें सदस्यों की

संख्या का निर्धारण नियोजक द्वारा मान्यता–प्राप्त श्रमसंघ, पंजीकृत श्रमसंघों या कामगारों के परामर्श में सदस्यो की संख्या का निर्धारण नियोजक द्वारा मान्यता–प्राप्त श्रमसंघ, पंजीकृ त श्रमसंघों या कामगारों के परामर्श से किया जाएगा। कर्मशाला परिषद में सदस्यों की कुल संख्या सामान्यतः 12 से अधिक नहीं हो सकती। कर्मशाला परिषद का अध्यक्ष प्रबंध द्वारा मनोनीत व्यक्ति होगा तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन परिषद के श्रमिकों के प्रतिनिधियों द्वारा होगा।

(ii) कार्यविधि– कर्मशाला परिषद में निर्णय मतैक्य के आधार पर होगा न कि मतदान के आधार पर। किसी विषय पर मतभेद की स्थिति में उसे संयुक्त परिषद के विचारार्थ भेजा जाएगा। कर्मशाला परिषद के निर्णयों को निर्णय के दिन से एक महीने के अंदर लागू करना आवश्यक है, लेकिन सदस्यों की अनुमति सं इस अवधि के बढ़ाया जा सकता है। अगर किसी कर्मशाला परिषद के निर्णय से दूसरी कर्मशाला या संपूर्ण प्रतिष्ठान या उद्यम प्रभावित होता हो, तो उसे संयुक्त परिषद को निदेशित करना आवश्यक है। कर्मशाला परिषद का कार्यकाल उसकी स्थापना के दिन से 2 वर्षों के लिए होगा। परिषद की बैठक महीने में कम से कम एक बार अवश्य होनी चाहिए।

(iii)कार्य– कर्मशाला परिषद कर्मशाला/विभाग के उत्पादन, उत्पादकता तथा कौशल में वृद्धि के उद्देश्य से निम्नलिखित कार्य संपदित कर सकती है–

1. उत्पादन के मासिक/वार्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रबंध को सहायता प्रदान करना;
2. उत्पादन, उत्पादकता तथा कौशल में सुधार लाने का प्रयास करना, जिसमें बरबादी का अंत तथा मशी की क्षमता और मानव शक्ति का अनुकूलतम उपयोग भी शामिल है;
3. निम्न–उत्पादकतावाले क्षेत्रों के विशेष रूप से पहचान करना तथा उसके कारणों की समाप्ति के लिए कर्मशाला स्तर पर सुधारात्मक कदम उठाना।
4. कर्मशाला/विभाग में अनुपस्थिति के कारणों का अध्ययन करना तथा उसे कम करने के लिए सुझाव देना
5. सुरक्षा के उपय;
6. कर्मशाला/विभाग में सामान्य अनुशासन बनाए रखने में सहायेता देना;
7. कार्य की भौतिक दशाएँ जैसे–प्रकाश, संवातन, ध्वनि, आदि, और थकान में कमी;
8. कर्मशाला/विभाग के सुचारु से संचालन के लिए कल्याण तथा स्वास्थ्य–संबधी कदम; तथा;

9. श्रमिकों और प्रबंधको के बीच द्विमार्गीय संचार का समुचित प्रवाह सुनिश्चित करना, विशेषकर उत्पादन के आँकड़ों, उत्पादन–कार्यक्रम तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रगति से संबद्ध विषयों पर।

2. संयुक्त परिषद–(i) गठन और कार्यविधि–संयुक्त परिषद की स्थापना उद्यम या प्रतिष्ठान के स्तर पर की जाएगी। इसकी संरचना और कार्यविधि कर्मशाला परिषद की तरह ही होगी। संयुक्त परिषद में केवल ऐसे सदस्य हो सकते हैं जो उद्यम या प्रतिष्ठान में वास्तव में नियोजित हों। परिषद की कार्याविधि 2 वर्षों की होगी। परिषद का अध्यक्ष उद्यम का प्रधान कार्यपालक होगी। उसके उपाध्यक्ष का निर्वाचन परिषद के कामगार–सदस्यों द्वारा होगा। संयुक्त परिषद के एक सदस्य को परिषद के सचिव के रूप में नियुक्त किया जाएगा। सचिव के अपने कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए समुचित सुविधाओं की व्यवस्था करना आवश्यक है। संयुक्त परिषद की बैठक तीन महीनों में कम–से–कम एक बार होगी। संयुक्त परिषद के निर्णय भी मतैक्य के आधार पर होंगे, न कि मतदान के आधार पर। परिषद के निणयों को भी निर्णय के दिन से एक महीने के अंदर लागू करना आवश्यक है।

(ii)कार्य– संयुक्त परिषद निम्नलिखित विषयों पर निर्णय कर सकती है–

1. पूरी इकाई के लिए अनुकूलतम उत्पादन, कौशल तथा उत्पादकता–मानकों का नियतन;
2. कर्मशाला परिषदों के ऐसे कार्य, जिनसे दूसरी कर्मशाला या संपूर्ण इकाई प्रभावित होती हो;
3. ऐसे मामले, जिनपर कर्मशाला परिषद में निर्णय करना संभव नहीं हो सका हो;
4. संपूर्ण प्रतिष्ठान या इकाई से संबद्ध कार्य–योजना तथा उत्पादन–लक्ष्यों की प्राप्ति;
5. कर्मचारियों के कौशल का विकास तथा प्रशिक्षण की समुचित सुविधाएँ;
6. कार्य के घंटों तथा अवकाश–दिनों की अनुसूची का बनाया जाना;
7. मूल्यवान तथा सर्जनात्मक सुझावों के लिए कर्मकारों को पारितोषिक;
8. कच्चे माल का अनुकूलतम उपयोग तथा उत्पादों की गुणवत्ता तथा
9. सामान्य स्वास्थ्य, कल्याण तथा सुरक्षा–संबंधी उपाय।

पुराने बीस–सूत्री कार्यक्रम के अधीन प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की उपर्युक्त संस्थाएँ भी सफल नहीं हो सकीं। प्रांरभ में तो इस तरह की संयुक्त परिषदों की स्थापना बड़ी संख्या में की गई, लेकिन शीघ्र ही वे निष्क्रिय होती गई। आज इस योजना के अंतर्गत स्थापित संयुक्त परिषदों की संख्या बहुत ही कम है।

4. सार्वजनिक क्षेत्र के वणिज्यिक एवं सेवा–संगठनों के प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाएँ, 1977–1977 में भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के वणिज्यिक एवं सेवा संगठनों

के लिए एक नई योजना अपनाई। यह योजना मुख्यतः ऐसे संगठन के लिए है, जिनमें 100 से अधिक कर्मचारी नियोजित हैं तथा जिसमें सार्वजनिक लेन–देन बड़ी मात्रा में होता हो। इस योजना को लागू करने के लिए अस्पतालों, डाक और तार कार्यालयों, रेलवे स्टेशनों, टिकट कार्यालय, बैंकों तथा सार्वजनिक वितरण की संस्थाओं को प्राथमिकता दी गई। यह योजना पर्याप्त रूप से नम्य है तथा स्थानीय दशाओं को ध्यान में रखते हुए इसमें परिवर्तन लाना संभव है। इस योजना के अंतर्गत इकाई परिषदों की स्थापना की गई। इन परिषदों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

(i)इकाई परिषद–इकाई परिषदों के गठन और कार्य बीस–सूत्री कार्यक्रम के अधीन स्थापित कर्मशाला परिषदों के गठन और कार्यों की तरह है। वे इनका मुख्य उद्देश्य दिन–प्रतिदिन के समस्याओं पर विचार–विमर्श करना तथा उनका हल ढूँढ निकालना है। इन परिषदों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. अनुकूलतम कौशल तथा अच्छी ग्राहक–सेवा के लिए समुचित दशाओं का सर्जन करना और समय तथा सामानों की बरबादी को रोकना;
2. खराब, अपर्याप्त तथा दोषपूर्ण सेवाओं के क्षेत्रों का पता लगाना तथा उनके कारणों को दूर करने के लिए सुधारात्मक कदम उठाना, जिससे संचालन समुचित रूप से हो;
3. अनुपस्थिति के कारणों का अध्ययन करना तथा उसे कम करने के लिए कदम उठाना;
4. इकाई में अनुशासन बनाए रखना;
5. चोरी और भ्रष्टाचार को समाप्त करना तथा इसके लिए पारितोषिक की व्यवस्था करना;
6. कार्य की भौतिक दशाओं में सुधार लाने के लिए सुझाव देना;
7. प्रबंध और कर्मचारियों के बीच पर्याप्त द्विमार्गीय संचार का प्रवाह सुनिश्चित करना;
8. इकाई को समुचित रूप से चलाने के लिए सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण–संबंधी कदमों में सुधार लाना;
9. अच्छी ग्राहक–सेवा सुनिश्चित करने के लिए अन्य बातों पर विचार–विमर्श करना।

(ii) संयुक्त परिषद– संयुक्त परिषद का गठन प्रभाग, क्षेत्र या मंडल के स्तरों पर होगा। आवश्यकतानुसार, इसकी स्थापना किसी संगठन या सेवा की विशिष्ट शाखा में भी की जा सकती है। इन परिषदों के गठन कार्याविधि आदि से संबद्ध बातें बीस–सूत्री कार्यक्रम के अधीन गठित संयुक्त परिषदों की तरह है। संयुक्त परिषदों के मुख्य कार्य अग्रलिखित हैं–

1. उन मामलों का निपटान करना, जिनका समाधान इकाई परिषद में नहीं हो सका है तथा दो या अधिक इकाई परिषदों की अंतः परिषदीय समस्याओं के समाधान के लिए संयुक्त बैठकें आयोजित करना;

2. ग्राहक–सेवा में सुधार लाने तथा सामानों, यातायात, लेखा आदि से संबद्ध उपयुक्त तरीके के विकास के लिए इकाई परिषदों के कार्यों की समीक्षा करना;
3. इकाई के स्तर की ऐसी सभी बातों पर विचार करना, जिनका संबंध दूसरी शाखाओं या संपूर्ण उद्यम से हो;
4. कर्मकारों के कौशल का विकास करना तथा प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करना;
5. कार्य की सामान्य दशाओं में सुधार लाने का प्रयास करना;
6. कार्य के घंटों तथा अवकाश–दिनों की अनुसूची तैयार करना;
7. पारितोषिक की व्यवस्था के जरिए कर्मचारियों के बीच से उपयोगी सुझावों को प्रोत्साहित करना; तथा
8. संगठन या सेवा के निष्पादन में सुधार तथा अच्छी ग्राहक–सेवा सुनिश्चित करने के लिए किसी भी विषय पर विचार–विमर्श करना।

उपर्युक्त परिषदों की योजना मुख्य रूप से केंद्रीय मंत्रालयों तथा विभागों, राज्य सरकारों, संघराज्य क्षेत्रों के प्रशासनों तथा अन्य सार्वजनिक निगमों और निकायों के लिए बनाई गई थी। व्यवहार में, ये परिषदें भी निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति में व्यापक रूप से विफल रहीं।

5. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए प्रबंध में कर्मचारियों की भागीदारी योजना के अंतर्गत संस्थाएँ, 1983–उद्योगों में सहभागी योजनाओं की प्रगति को ध्यान में रखते हुए प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता की एक विस्तृत योजना तैयार की गई। यह योजना, उन उद्यमों को छोड़कर, जिन्हें छूट दी गई है, केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के सभी उद्यमों पर लागू की गई। योजना के अंतर्गत कर्मशाला–तल तथा संयंत्र स्तरों पर निष्पक्षीय मंचों के गठन की व्यवस्था की गई। इन संस्थाओं की संरचना और कार्यों का विवरण निम्नलिखित है–

1. संरचना– कर्मशाला–तल तथा संयंत्र–स्तर मंचों, दोनों में कर्मचारियेां और प्रबंधकों के प्रतिनिधि बराबर–बराबर की संख्या में होंगे। प्रत्येक पक्षकार की संख्या 5 और 10 के बीच श्रम–शक्ति के आकार के अनुसार होगी। उनकी वास्तविक संख्या उपक्रम के श्रमसंघ–नेताओं के परामर्श से प्रबंध द्वारा नियत की जाएगी। श्रमसंघ–नेताओं के परामर्श से ही विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व का स्वरूप निर्धारित किया जाएगा। जहाँ स्त्री–कर्मकारों का अनुपात कुल कामगारों के 10 प्रतिशत से अधिक है, वहाँ इन संयुक्त निकायों पर उनके समुचित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाएगी।

2. कार्य (i) कर्मशाला–तल मंचों के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित होनेवाले विषय हैं– उत्पादन–सुविधाएँ, कर्मशाला में भंडारण–सुविधाएँ; सामग्रियों की मितव्ययिता; संचालन की समस्याएँ; बरबादी का नियंत्रण; खतरे और सुरक्षा की समस्याएँ; गुणवत्ता में सुधार; स्वच्छता;

मासिक लक्ष्य तथा उत्पादन–अनुसूची, लागत–नियंत्रण कार्यक्रम; कार्यपद्धति का निर्माण और क्रियान्वयन; समूह–कार्य; कर्मशाला से संबद्ध कल्याकारी उपाय।

(ii) संयंत्र–स्तरीय मंचों के कार्यक्षेत्र के महत्वपूर्ण विषय हैं–उत्पादन–योजनाओं का विकास; मासिक लक्ष्यों और अनुसूचियों से संबद्ध योजना,उसका क्रियान्वयन और पुनर्विलोकन; सामग्रियों की आपूर्ति; भंडारण; गृह–व्यवस्था; उत्पादकता में सुधार; सुझावों को प्रोत्साहन और उनपर विचार; गुणवत्ता और प्रौद्योगिकी में सुधार; मशीनों का उपयोग और नए उत्पादनों का ज्ञान और विकास; संचालन–संबंधी निष्पादन; दो या अधिक कर्मशालाओं से संबद्ध विषय या ऐसे विषय जिन्हें कर्मशाला स्तर पर नहीं तय किया गया हो; कर्मशाला–स्तरीय निकायों का कार्यकरण । संयंत्र–स्तरीय मंचों द्वारा निर्धारित किए जानेवाले आर्थिक और वित्तीय क्षेत्र हैं–लाभ–हानि और तुलन–पत्र; संचालन–संबंधी व्यय, वित्तीय परिणाम तथा विक्रय की लागतें; तथा संयंत्र में वित्तीय प्रशासन, श्रम और प्रबंधकीय लागत, बाजार की स्थिति। संयंत्र–स्तरीय मंचों द्वारा निर्धारित किए जानेवाले कार्मिक विषयों में मुख्य हैं– अनुपस्थिति; महिला–कर्मकारो की विशेष समस्याएँ; कर्मकारों के प्रशिक्षण –कार्यक्रम; तथा सामाजिक सुरक्षा–योजनाओं का क्रियान्वयन। इन मंचों के कल्याणकारी कार्यक्षेत्र हैं– कल्याण–सुविधाओं का संचालन, कल्याण–योजनाओं , चिकित्सकीय हिललाभ तथा यातायात–सुविधाओं को क्रियान्वयन ; सुरक्षा के उपाय; खेलकूद; आवास; नगरीय प्रशासन; कैंटीन; जुआबाजी, मद्यपान और ऋणग्रस्तता का नियंत्रण।

कर्मशाला और संयंत्र–स्तरीय मंचों द्वारा निर्णय सहमति के आधार पर होंगे, लेकिन जब किसी विषय पर सहमति नहीं हो पाती, तो उसे निर्णयन के उच्चतर मंच पर भेजा जाएगा।

योजना के अंतर्गत बोर्ड–स्तरीय मंच के गठन की भी व्यवस्था की गई है। बोर्ड पर कर्मचारियेां के प्रतिनिधि बोर्ड के सभी कार्यों में भाग लेंगे। बोर्ड के कार्यों में कर्मशाला और संयंत्र–स्तरीय मंचों के कार्यों का पुनविलोकन भी सम्मिलित है। योजना के प्रबोधन और पुनर्विलोकन के लिए श्रम मंत्रालय में एक त्रिदलीय तंत्र के गठन की भी व्यवस्था की गई है। राज्य सरकारों से भी अनुरोध किया गया है कि वे अपने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में इस योजना को लागू करें। इसे निजी क्षेत्र के उद्यमों में लागू कराने के लिए भी प्रयास किए जाएँगें। अगस्त, 1995 तथा कुल 236 केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में से 100 उद्यमों में कर्मशाला–तल और संयंत्र स्तरीय मंच बनाए गए थे।

6. सरकारी सेवाओं में संयुक्त परिषदः दूसरे वेतन आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1966 में सरकारी विभागों में संयुक्त परिषदों की एक ऐच्छिक योजना लागू की। इस योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय परिषद, विभागीय परिषद, क्षेत्रीय परिषद

तथा कार्यालय परिषद की स्थापना की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक परिषद में सरकार द्वारा मनोनीत अधिकारी तथा कर्मचारियों के संगठनों के प्रतिनिधि होते हैं। इन परिषदों के कार्यों में मुख्य हैं– सेवा की शर्तों, कार्य की दशाओं, कर्मचारियों के कल्याण तथा कार्य के स्तरों में सुधार से संबंद्ध विषयों पर संयुक्त वार्ता तथा निर्णय करना। भरती, पदोन्नति तथा अनुशासन के मामलों पर परिषदों में केवल सैद्धांतिक पहलुओं पर ही विचार–विमर्श हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त रेलवे, डाक और तार तथा सुरक्षा–स्थापनों में संयुक्त परामर्शी तंत्रों की व्यवस्था पहले से ही चलती आ रही है। ये तंत्र सहयोग, परामर्श, विचार–विमर्श तथा वार्ता के कार्य साथ–साथ निष्पादित करते है। लेकिन मूल रूप से ये मतभेदों और विवादों के निपटान के मंच है।

7. कुछ निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाएँ– निजी क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण औद्यागिक प्रष्ठिानों में, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाएँ सामूहिक समझौतों के जरिए भी स्थापित की गई हैं। उदाहरणार्थ, टाटा आइरन एंड स्टील कंपनी में 1956 के सामूहिक समझौते के अंतर्गत कुछ संयुक्त निकायों का गठन किया गया है; जैसे–संयुक्त विभागीय परिषद, संयुक्त कार्य–परिषद, संयुक्त नगर–परिषद तथा संयुक्त परामर्शी प्रबंध–परिषद। समझौते में ही इन परिषदों के गठन और कार्यों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

इंडियन ऐलुमिनियम कंपनी में भी सामूहिक समझौते के जरिए 1956 में कई संयुक्त समितियों की स्थापना की गई; जैसे– संयुक्त कार्मिक संबंध–समिति, संयुक्त उत्पादन–समिति, संयुक्त कार्यमूल्यांकन–समिति, संयुक्त मानक–समिति, तथा संयुक्त कैंटीन–समिति। इसी तरह कई अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अलग–अलग विषयों पर संयुक्त समितियों का गठन किया गया है। इनमें अधिकांश संयुक्त समितियाँ कैंटीन, सुरक्षा, कल्याण तथा आवास से संबद्ध हैं।

13.7 उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता पर वर्मा–समिति के सुझाव

जैसा कि खंड **IV** के आरंभ में कहा जा चुका है– 1977 में जनता–सरकार के शासनकाल में श्रममंत्री रवींद्र वर्मा की अध्यक्षता में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने तथा इस संबंध में एक व्यापक योजना बनाने के लिए एक समिति का गठन किया गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1079 में दी। समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थी–

(i) सहभागिता की त्रि–स्तरीय पद्धति (कर्मशाला, प्रतिष्ठान तथा निगम या बोर्ड के स्तरों पर) को अपनाया जाना चाहिए।

(ii) ऐसे सभी उद्यमों में, जिनमें 400 से अधिक कामगार नियोजित है, श्रमिकों की सहभागिता को काननू द्वारा लागू किया जाना चाहिए। लेकिन, इसे 100 से अधिक संख्या में कर्मकारों को नियोजित करनेवाले संस्थाओं में भी लागू करने की व्यवस्था चाहिए।

(iii) सहभागी मंचों पर प्रतिनिधियों क निर्वाचन गुप्त मतदान से होना चाहिए।

(iv) सहभागी मंचों पर पर्यवेक्षकों तथा मध्यस्तरीय प्रबंधकों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था आवश्यक है, जिससे वे निर्णय –प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

(v) उच्च स्तर पर सहभागी मंचों में सम्मिलित किए जा सकनेवाले महत्त्वपूर्ण विषय हैं– सामान्य उत्पादन–सुविधाएँ, भंडारण–सुविधाएँ, माल की सुरक्षा, दस्तावेजों मे अशुद्धियाँ, संचालन–संबंधी समस्याएँ, बरबादी का नियंत्रण, सुरक्षा–संबंधी समस्याएँ, गुणवत्ता में सुधार, मासिक उत्पादन–कार्यक्रम, तकनीकी आविष्कार ।

(vi) प्रतिष्ठान के स्तर पर सहभागिता के क्षेत्रों का विस्तार चाहिए। इनमें संचालन, आर्थिक पहलू, वित्त, कार्मिक, कल्याणकारी कदम तथा पर्यावरण को भी शमिल किया जाना चाहिए। प्रतिष्ठान के स्तर पर जिन विशिष्ट विषयों को सम्मिलित करने की अनुशंसा की गई, उनमें मुख्य है– उत्पादन–वृद्धि के लाभों में साझेदारी, गुणवत्ता तथा प्रौद्यागिक में सुधार , अभिप्रेरणाएँ, बजट, लाभ–हानि विवरण, विक्रय–लागत संचालन–व्यय, श्रम एवं प्रबंधकीय लागत, अतिकाल, अनुपस्थिति के कारण स्थानांतरण, पदोन्नति स्त्री–श्रमिकों की विशिष्ट समस्याएँ।

(vii) निगम के स्तर पर सहभागिता के दायरे में जिन विषयों को शामिल करने का सुझाव दिया गया, वे है– वित्त, मजदूरी–संरचना, कल्याणकारी सुविधाएँ, चिकित्सकीय सुविधाएँ भरती एवं कार्मिक नीति।

(viii) संयुक्त निर्णयन को प्रभावी बनाने के लिए सूचनाएँ प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था चाहिए। कुछ क्षेत्रों में सहभागिता–मंचों को प्रशासनिक अधिकार भी दिया जाना चाहिए।

(ix) श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं के कार्यान्वयन के प्रबोधन के लिए केंद्रीय एवं राजकीय स्तर पर अभिकरण की व्यवस्था होनी चाहिए।

समिति की सिफारिशों पर 1980 में श्रममंत्रियों के 31वें सम्मेलन में विचार किया गया। सम्मेलन ने इन अनुशंसाओं का सामान्य तौर पर समर्थन किया, लेकिन सहभागिता–मंचों में कामगारों के प्रतिनिधित्व देने के प्रक्रिया के प्रश्न पर विरोधी विचार

व्यक्त किए गए और उनके संबंध में कोई सहमति नहीं हो सकी। अंत में इस प्रश्न को सरकार के निर्णय पर छोड़ दिया गया ।

13.8 प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता विधेयक, 1990

1989 के चुनाव में केंद्र में सत्ता में आई संयुक्त मोर्चे की सरकार ने अपने चुनाव–घोषणापत्र के वायदे को ध्यान में रखते हुए 30 मई 1990 को राज्यसभा में प्रबंध में कर्मचरियों की सहभागिता विधेयक पेश किया। यह देश में प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी से संबंधित पहला व्यापक विधायी प्रयास था। विधेयक पर सारे देश में कई मंचों पर विस्तार से चर्चा हुई। विचार'–विमर्श का सिलसिला जारी ही था कि केन्द्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार गिर गई। विधेयक अभी तक पारित नहीं हो सका है, लेकिन इसका प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी से संबंधित सरकार की नीति के संदर्भ में विशेष महत्व है। विधेयक के मुख्य उपबंधों का उल्लेख नीचे किया जाता है–

। विधेयक से उद्देश्य एवं कारण– विधेयक के उद्देश्य एवं कारणों में कहा गया है, ''सविधान के अनुच्छेद 43A में यह अपेक्षित है कि राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा। अभी तक प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता से संबधित सभी योजनाएँ अकानूनी रही है। इस समय इस विषय पर कोई केंद्रीय विधि नहीं है। अकानूनी योजनाएँ सभी स्तरों पर प्रबंध में कर्मचारियों की सार्थक सहभागिता के लिए कोई प्रभावी रूपरेखा प्रदान नहीं कर पाई है।'' विधेयक में औद्योगिक स्थापनों में कर्मशाला स्तर, स्थापन स्तर और प्रबंध बोर्ड स्तर पर प्रबंध में कर्मचारियों की विनिर्दिष्ट और सार्थक सहभागिता की व्यवस्था की गई है। इससे उपर्युक्त संस्थाओं में प्रतिनिधित्व की रीति, कृत्यों के निर्वहन की प्रक्रिया, रिक्तियों को भरने की रीति आदि से संबधित योजना बनाए जाने का उद्देश्यय भी सम्मिलित है। विधेयक के उद्देश्य एवं कारणों में प्रतिनिधित्व के निर्धारण के लिए गुप्त मतदान पर जोर दिया गया है तथा निरीक्षक एवं प्रबोधन समिति की नियुक्ति को सम्मिलित किया गया है।

॥ भागीदारी के मंच– जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, विधेयक में 1. कर्मशाला परिषद, 2. स्थापन परिषद तथा 3. प्रबंध–बोर्ड में प्रतिनिधित्व के मंचों की व्यवस्था की गई है। इनसे संबंधित योजनाएँ बनाने का अधिकार केंन्द्र सरकार को दिया गया है। सहभागिता के इन मंचों से संबंधित मुख्य उपबंध अगलिखित हैं–

1. कर्मशाला परिषद– प्रत्येक औद्योगिक स्थापन में केंद्र सरकार द्वारा बानाई गई योजना के उपबंधों के अनुसार कमशाला स्तर पर एक या अधिक परिषदें गठित करना आवश्यक है।

प्रत्येक कर्मशाला परिषद में नियोजक और कर्मकारों के प्रतिनिधि बराबर–बराबर की संख्या में होगें। प्रतिनिधि–सदस्यों की कुल संख्या का निर्धारण समुचित सरकार द्वारा नियोजक के परामर्श से किया जाएगा। नियोजक के प्रतिनिधि नियोजनक द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएँगे। कर्मकारों के प्रतिनिधि संबंधित स्थापन के कर्मकारों द्वारा और उनमें से गुप्त मतदान द्वारा निर्वाचित किए जाएँगे या उनका नाम–निर्देशन स्थापन के पंजीकृत श्रमसंघों द्वारा किया जाएगा। कर्मशाला परिषद के अध्यक्ष का चयन परिषद के सदस्यों द्वारा तथा उनमें से ही किया जाएगा। परिषद के सदस्यों की पदावधि उसके गठन के दिन से तीन वर्षों की होगी। परिषद के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों द्वारा अपने कृत्यों से निर्वहन की प्रक्रिया और उसके बीच रिक्तियों को भरने की रीति समुचित सरकार द्वारा बनाई जानेवाली योजना के अनुसार होगी। कर्मशाला परिषद के बैठक आवश्यकतानुसार होगी, लेकिन वर्ष में उसकी चार बैठकों का होना आवश्यक है। परिषद के कारोबार का संचलान योजना में विनिर्दिष्ट तरीके से होगा।

कर्मशाला परिषद उन विषयों से संबंधित शाक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का पालन करेगी, जिनका उल्लेख विधेयक की अनुसूची 1 में किया गया है। विधेयक की अनुसूची 1 में सम्मिलित विषय हैं– 1. उत्पादन–सुविधाएँ 2. भंडारकरण–सुविधाएँ 3. पदार्थ–मितव्ययिता, 4. परिचालन–समस्याएँ 5. अपव्यय–नियंत्रण 6. परिसंकट और सुरक्षा–समस्याए 7. गुणवत्ता–सुधार, 8. सफाई, 9 मासिक लक्ष्य और उत्पादन–अनुसूची, 10. लागत–घटाव कार्यक्रम, 11. कार्य–पद्धति का निरूपण और क्रियान्वयन, 12. रूपांकन, समूह–कार्यकरण तथा 13. मुख्य रूप से कर्मशाला से संबंधित कल्याण –अध्युपाय।

2.स्थापन परिषद– स्थापन परिषद का गठन प्रत्येक औद्योगिक स्थापन में स्थापन के स्तर पर किया जाएगा। स्थापन परिषद के गठन, उसमें नियोजक और कर्मकारों के प्रतिनिधियों के अनुपात उनकी संख्या के निर्धारण की प्रक्रिया, सदस्यों और अध्यक्ष के चयन की प्रक्रिया, सदस्यों की पदावधि, उनके कृत्य, परिषद की बैठकों की बांरबारता, उसके कारोबार के संचालन आदि से संबद्ध उपबंध कर्मशाला परिषद के साथ लागू उपबंधों की ही तरह है। जिन विषयों के संबंध में स्थापन परिषद अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का पालन करेगी, उनका उल्लेख विधेयक की अनुसूची 2 में किया गया है। वे विषय निम्नलिखित है–

(i) परिचालन क्षेत्र–

1. स्थानीय दशाओं को ध्यान में रखते हुए उत्पादकता–योजनाओं का विकास।
2. मासिक लक्ष्यों और अनुसूचियों की योजना, क्रियान्वयन, पूर्ति और पुनार्विलोकन।
3. सामग्री प्रदाय और उसकी कमी ।
4. भंडारकरण और तालिकाएँ।

5. गृह–प्रबंध।
6. साधारणतया और विशिष्टतया नाजुक क्षेत्रों में उत्पादकता में सुधार।
7. सुझावो को प्रोत्साहन और उन पर विचार।
8. गुणवत्ता और प्रौद्योगिकी सुधार।
9. मशीन के उपयोग का ज्ञान और नए उत्पादों का विकास।
10. परिचालन–संबधी निष्पादन आँकड़े।
11. कर्मशाला–स्तर पर समाधान न हुए या एक से अधिक कर्मशालाओं से संबंधित विषय।
12. कर्मशाला–स्तर के निकायों के कार्यकरण का पुनर्विलोकन।

(ii) आर्थिक और वित्तीय क्षेत्र–

1.लाभ–हानि विवरण और तुलन–पत्र।

2. परिचालन व्यय का पुनर्विलोकन, वित्तीय परिणाम और विक्रय–लागत।

3. वित्तीय शब्दों में संयंत्र निष्पादन, श्रम और प्रबधंकीय लागत, बाजार–स्थिति आदि।

(iii)कार्मिक विषय–

1. अनुपस्थिति।
2. महिला–कर्मचारियों की विशेष समस्या।
3. कर्मचारियों के प्रशिक्षण–कार्यक्रमों का प्रारंभ किया जाना और पर्यवेक्षण।
4. सामाजिक सुरक्षा–योजनाओं का प्रशासन।

(iv) कल्याण क्षेत्र–

1. परिचालन–संबंधी ब्योरे।
2. कल्याण–योजनाओं, चिकित्सा–सुविधाओं और परिवहन–सुविधाओं का कार्यान्वयन,
3. सुरक्षा–अध्युपाय,
4. क्रीड़ा और खेलकूद,
5. आवास।
6. नगरीय प्रशासन, कैटीन आदि।
7. द्यूत, मदिरापन और ऋणग्रस्तता के नियंत्रण।

(v) पर्यावरण–सबंधी क्षेत्र–

1. विस्तार क्रियाकलाप और सामुदायिक विकास योजनाएँ ।
2. प्रदूषद नियंत्रण।

3.प्रबंध–बोर्ड में प्रतिनिधित्व– विधेयक में औद्योगिक स्थापनों के स्वामित्ववाले प्रत्येक निगमित निकाय के प्रबंध बोर्ड में कर्मकारों एवं अन्य कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था

भी की गई है। विधेयक के अनुसान, 'कर्मचारी' का अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है। जो किसी औद्योगिक स्थान में भाड़ा या इनाम के लिए कोई शरीरिक, अकुशल, कुशल तकनीकी, संक्रियात्मक, लिपिकीय, पर्यवेक्षी, प्रबंधकीय या प्रशनिक कार्य करने के लिए नियोजित हैं, चाहे नियोजन के निबंधन अभिव्यक्त हों या विवक्षित, किन्तु इसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति नहीं आता है तो (1) वायुसेना अधिनियम 1950, सेना अधिनियम, 1950 या नौसेना अधिनियम 1957 के अधीन हो, या (2) पुलिस सेवा में या किसी कारागार के अधिकारी या अन्य कर्मचारी के रूप में नियोजित हो 'कर्मकार' का अभिप्राय किसी कर्मचारी से है, लेकिन इसके अंतर्गत ऐसा कर्मचारी के रूप से नियोजित है, या जो पर्यवेक्षी या प्रशासनिक रूप से नियोजित होते हुए प्रतिमास 1,600 रुपये से अधिक मजदूरी लेता है अथवा या तो पद से संलग्न कर्तव्यों की प्रकृति या उसमें निहित शक्तियों के कारण, मुख्यतः प्रबंधकीय प्रकृति के कृतों का प्रयोग करता है। प्रबंध बोर्ड मे कर्मकारों के प्रतिनिधियों का अनुपात उसके सदस्यों की कुल संख्या का 13 प्रतिषत और अन्य कर्मचारियों का अनुपात 12 प्रतिषत होगा। प्रबंध बोर्ड मे कर्मकारों के प्रतिनिधियों का चयन योजना में विनिर्दिष्ट तरीके से गुप्त मतदान या स्थापन के पंजीकृत श्रमसंघों के मनोनयन द्वारा जाएगा।अन्य कर्मचारियों के प्रतिनिधियो का चयन गुप्त मतदान या योजना में विनिर्दिष्ट तरीके से किया जाएगा। इन प्रतिनिधियों की पदावधि तीन वर्षों की होगी। इन सदस्यों को प्रबंध–बोर्ड के सदस्य के रूप में सभी शक्तियों के प्रयोग एवं कृत्यों के निर्वहन और मतदान का अधिकार होगा। प्रबंध–बोर्ड संबंधित औद्योगिक स्थापनों के कर्मषाला एवं स्थापन परिषदों के कार्यकरण को पुनर्विलोकित करेगा।

III. प्रबोधन समिति– उपयुक्त सरकार अधिनियम या उसके अधीन बनाई गई योजनाओं या नियमों के प्रषासन से संबंधित विषयों को पुनर्विलोकित करने और उनपर सलाह देने के लिए प्रबोधन समिति का गठन कर सकती है। प्रबोधन समिति में समुचित सरकार, कर्मकारो एवं नियोजकों के प्रतिनिधि बराबर–बराबर की संख्या में होगें तथा नियुक्ति विहित तरीके से की जाएगी। समिति का अध्यक्ष सरकार के प्रतिनिधियों में से मनोनीत व्यक्ति होगा।

(iv) अन्य उपबंध– विधेयक में औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की कार्यसमिति के गठन तथा कार्यों से संबंधित धारा 3 को लोपित किया गया है। प्रबंध में कर्मकारों की भागेदारी की योजनाएँ बनाने की शक्ति केद्र एवं राज्य सरकारों दोनों को प्राप्त है। दोनों सरकारों को अधिनियम के किसी भी उपबंध से छूट देने की शक्ति केन्द्र एवं राज्य सरकारों दोनो के प्राप्त है। दोनों सरकारों को अधिनियम के किसी भी उपबंध से छूट देने की शक्ति प्राप्त है। विधेयक मे अधिनियम के समुचित कार्यान्वयन के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है, तथा उपबंधों के उल्लघंन के दोषी को अधिकतम दो वर्षों के कारावास या 20. 000 रुपये तक के जुर्माने या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, विधेयक देष में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण एवं प्रगतिषील कदम है। यह मुख्यतः 1983 की योजना पर आधृत है। अभी तक यह विधेयक पारित नहीं हो पाया हैं, लकिन संषोधनों के साथ इसे पारित करने के प्रयास जारी है।

13.9 भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं की असफलता के कारण

जैसा कि उपर्युक्तववेचना से स्पष्ट है, 1958 के बाद देश में, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की कई योजनाएँ बनाई गई और उन्हें लागू करने के प्रयास किए गए लेकिन व्यवहार में इन सभी योजनाओं की प्रगति अत्यंत ही असंतोषजनक रही है। एक ओर तो कई उद्यमों, प्रतिष्ठानों तथा संगठनों में इन योजनाओं को लागू ही नहीं किया गया, और दूसरी ओर जहाँ इन्हे लागू किया गया, वहाँ कई सयुक्त मंच निष्क्रिय होते गए। जहाँ श्रम–प्रबंध सहयोग की संस्थाएँ स्थापित की गई है, वहाँ उनमें अधिकांष अपने काय्र सुचारू रूप से नहीं करती। भारत में, प्रबंध में श्रमिकों की सहभगिता की योजनाओं की विफलता के निम्नलिखित मुख्य कारण है।

1. प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं की असफलता का मूल कारण भागीदारी की अवधारणा मे ही निहित है। भागीदारी का अर्थ होता है ।शक्ति या अधिकार में सहभागिता। यह प्रबन्ध और श्रमसंघ दोनों के साथ चरितार्थ होती है। नियोजक अपने उद्यम के प्रबन्धन में, अपनी सत्ता या परमाधिकार में दूसरों को भागीदार बनाने में अनिच्छुक रहते हैं। इसी तरह, कई श्रमसंघ अपनी सौदेबाजी और दबाव डालने की शक्ति का परित्याग कर प्रबन्ध के साथ सहयोग के मंचों पर संयुक्त निर्णयन के लिए अकसर तैयार नहीं होते। नियोजकों और श्रमसंघों से अपने मतभेदों के भूलकर विभिन्न विषयों पर सद्भावना और सहयोग के वातावरण में संयुक्त निर्णय लेने की आशा करना भ्रांतिपूर्ण है।

2. देश में प्रबन्ध और श्रमसंघ दोनों विभिन्न प्रकार के संयुक्त निकायों की बहुलता के कारण भ्रामित से लगते हैं। कई उद्योगों के लिए कानून या अन्य व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के संयुक्त निकायों का गठन किया गया हैं, जैसे– कार्य–समिति, सुरक्षा समिति, संयुक्त प्रबन्ध परिषद, कर्मशाला तल परिषद, इकाई, कैंटीन समिति, परिवेदना निवारण समिति, संयुक्त औद्योगिक समिति आदि। अकसर विभिन्न निकायों के कार्यक्षेत्रों में अतिव्यप्ति पाई जाती है और उनकी व्यावहारिक उपयोगिता नगण्य रहती है।

3. देश में प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की अधिकांश योजनाएँ सरकार द्वारा प्रायोजित की जाती है इन योजनाओं को अपनाने के पहले नियोजकों और श्रमिकों की सहमति के लिए प्रयास नहीं किए गए हैं। अधिकांश नियोजक तथा श्रमसंघ इन्हें बाहर से थोपे जानेवाले कार्यक्रम समझते हैं। ऐसी स्थिति में इनका विफल होना स्वाभाविक है। अनुभव

बताता है कि श्रम प्रबन्ध सहयोग की जो योजनाएँ नियोजक और श्रमिकों के बीच समझौते के जरिए स्थापित की जाती है, वे अधिक स्थायी होती है और उनकी सफलता की संभावना अधिक होती है। प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी के लिए पक्षकारों में अधिक स्थायी होती है और उनकी सफलता की सम्भावना अधिक होती है। प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी के लिए पक्षकारों में अभिवृत्तीय परिवर्तन की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध में इसका ऐच्छिक आधार पर होना अधिक व्यवहारिक होगा। कानून या बाध्यता के आधार पर भागीदारी की योजनाओं का प्रवर्तन उनके वास्तविक लक्ष्यों एवं स्वरूप के प्रतिकूल होगा।

4. प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाएँ उन उद्योगों या प्रतिष्ठानों में अधिक सफल होती है, निमें सहभागिता के चलते होने वाले लाभ या उसके फल के पक्षकारों के बीच वितरण की समुचित व्यवस्था होती है। भारत में सहभागिता के फलस्वरूप होने वाले लाभों के प्रत्यक्ष या समुचित रूप से वितरण की व्यवस्था नहीं है। इस कारण, श्रमिकों के बीच इन संस्थाओं के प्रति उत्साह का अभाव रहता है। कई श्रमिकों के मत में ये संस्थाएँ केवल प्रबन्ध के हितों को ही ध्यान में रखकर बनाई गई है।

5. सहभागिता की संस्थाओं के सफल होने की सम्भावना उन उद्योगों या प्रतिष्ठानों में अधिक होती है, जिनमें श्रम संघों के बीच प्रतिस्पर्द्धा, प्रतिद्वंदिता या गुटबंदी की समस्याएँ जटिल नहीं होती। भारत में एक ही प्रतिष्ठान या उद्योग में कई श्रमसंघ साथ–साथ कार्यशील है। उनके बीच प्रतिद्वंद्विता की समस्याा अत्यन्त ही गम्भीर है। एक ही श्रमसंघ में कई गुट भी पाए जाते हैं। इन कारणों से सहभागिता की योजनाओं में श्रमिकों के प्रतिनिधित्व तथा संयुक्त निर्णयों के अनुपालन की समस्या सदा बनी रहती है। भारत में, प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता का एक महत्तवपूर्ण कारण श्रमसंघों का बहुत्व तथा प्रतिनिधि श्रमसंघ की मान्यता की कानूनी व्यवस्था का आभाव है।

6. यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर नियोजकाकं के संगठन और श्रमसंद्य भागीदारी की योजनाओं का समर्थन करते आए हैं, उद्यम या स्थापन के स्तर पर प्रबन्धकों के बीच इन योजनाओं के प्रति सामान्य उदासीनता पाई जाती है। नियोजकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संगठनों द्वारा निम्न स्तर पर सम्बद्ध संगठनों की भागीदारी की उपयोगिता के बारे में उत्साहित करने के लिए विशेष कदम नहीं उठाए गए हैं।

7. कई नियोजक अब भी अपने कर्मचारियों के साथ समानता के स्तर पर विचार–विमर्श करना नहीं चाहते। कई प्रबन्धकों और अधिकारियों के साथ भी यही बात लागू होती है। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की संस्थाओं का विफल होना स्वाभाविक है।

8. भारत में श्रमिकों के बीच शिक्षा का प्रसार समुचित नहीं हो पाया है। उनमें कई अपने अधिकारों तथा दायित्वों के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं। कई श्रमिक उद्योग तथा नियोजक की समस्याओं को समझ नहीं पाते। अतः ऐसे श्रमिकों से प्रभावी सहभागिता की आशा नहीं की जा सकती । यही कारण है कि विगत वर्षों में केन्द्र सरकार द्वारा प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की उपयोगिता को श्रमिक शिक्षा–कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। भारत में प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता के विकास के मार्ग में कई अन्य प्रकार की बाधाएँ है; जैसे– श्रमिकों का निम्न जीवन स्तर, संयुक्त निर्णयन की परम्परा का अभाव, सामूहिक सौदेबाजी का अपर्याप्त विकास तथा औद्योगिक सम्बन्ध के क्षेत्र में सरकार द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप।

राष्ट्रीय श्रम आयोग (2002) की सिफारिशें : दूसरे राष्ट्रीय श्रम आयोग (2002) ने प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की योजना को कानून के अन्तर्गत बनाए जाने की सिफारिश की है। आरम्भ में यह योजना ऐसे प्रतिष्ठानों में लागू की जानी चाहिए जिनमें 300 या इससे अधिक संख्या में कामगार नियोजित करने वाले प्रतिष्ठानों में एक अकानूनी योजना की व्यवस्था की जा सकती है। सौदेबाजी–अभिकर्ता की मान्यता की प्रणाली तथा चंदा–कटौती पद्धति के अन्तर्गत उपलब्ध सूचनाओं से भागीदारी के प्रत्येक स्तर पर श्रमिकों के प्रतिनिधियों के चयन के लिए पर्याप्त आँकडे उपलब्ध होंगे।

अपने प्रस्तावित श्रम संबंध अधिनियम में आयोग ने प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की संस्थाओं,उनके गठन और कार्यो का उल्लेख है। प्रस्तावित अधिनियम ऐसे प्रतिष्ठानों में लागू होगा। जिनमें 300 या इससे अधिक संख्या में कामगार नियोजित है। 300 से कम संख्या में कामगारों को नियोजित करने वाले प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में समूचित सरकार अकानूनी योजना बना सकती है। जिसके अन्तर्गत भागीदारी सूचनाओं के आदान–प्रदान और परामर्श तक ही सीमति रहेगी।

प्रस्तावित कानून के प्रारूप में नियोजक के लिए कर्मशाला विभाग याा अनुभाग तथा स्थापना के स्तरों पर परिषदों का गठन करना अनिवार्य होगा। जहाँ कामगारों की संख्या 20 से कम है, वहाँ दो या अधिक इकाइयों को मिलाकर संयुक्त परिषदों का गठन किया जा सकता है। प्रत्येक परिषद में स्थापन के कामगारों और नियोजक के प्रतिनिधि बराबर–बराबर की संख्या में होंगे। श्रमिकों के प्रतिनिधियों का मनोयन प्रमाणित सौदेबाजी–अभिकर्त्ता करेगा तथा नियोजकों के प्रतिनिधि नियोजक द्वारा मनोनीत होंगे। श्रमिकों के प्रतिनिधियों का क्षेत्राधिकार में आने वाले विषय अनुसूचियों में विनिर्दिष्ट होंगे। परिषदों के सभापति तथा अन्य पदाधिकारी उनके सदस्योंमें से चुने जाएँगें। प्रतिष्ठान के स्तर पर गठित परिष्द नियोजक के परामर्श से यह नियत करेगा कि किन किन विषयों

परसूचनाओं का आदान–प्रदान या परामर्श होगा और किन किन पर संयुक्त निर्णयन। परिषदों के गठन कार्य संचालन की प्रक्रिया, सदस्यों के मनोनयन का तरीका, रिक्तियों का भरा जाना, सभापति का निर्वाचन आदि से सम्बंधित बातें समुचित सरकार द्वारा विहित की जाएँगी।

प्रस्तावित अधिनियम के प्रारूप में प्रबन्ध बोर्ड के गठन की भी व्यवस्था की गयी है। किसी स्थापन या उद्यम के स्वामित्व वालेप्रत्येक निगमित निकाय के प्रबन्ध बोर्ड में संबंधित स्थापन या उद्यम के (1) कामगारों, (2) प्रबन्धकों तथा (3) अन्य कर्मचारियों के प्रतिनिधि होगे। जिनमें प्रत्येक समूह के प्रतिनिधियों का अनुपात बोर्ड की कुल सदस्यता का 12.5 प्रतिशत होगा। जहाँ प्रबन्ध–बोर्ड में कामगारों और प्रबन्धकों एवं अन्य कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व देने के लिए पर्याप्त संख्या नहीं है, वहां दोनों समूहों में प्रत्येक के एक–एक प्रतिनिधि को सम्मिलित करना आवश्यक देने के लिए और अन्य कर्मचारियों के प्रतिनिधियों का चयन गुप्त मतदान द्वारा होग तथा कामगारों के प्रतिनिधि स्थापन या उद्यम के सौदेबाजी अभिकर्ता द्वारा मनोनीत होंगे। प्रबन्ध–बोर्ड का कार्यकाल उसके गठन की तिथि से 4 वर्षो का होगा। तथा कार्य निष्पादन का अधिकार होगा। प्रबन्ध बोर्ड को कर्मशाला प्रतिष्ठान तथा उद्यम के स्तर पर गठित परिषदों के कार्यों का पुनर्विलोकन करने का अधिकार होगा। आयोग की सिफारिशों को लागू करने के लिए अभि तक कोई कदम नहीं उठाए गए हैं।

13.10 सार संक्षेप

प्रबंध में श्रमिकों की योजनाओं में ,श्रमिक समझते हैं कि वे प्रबंध में भाग ले रहे हैं और निर्णयों का सद्भवना के वातावरण में लिया गया है। प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी कई स्तरों पर हो सकती है और सहभागिता की प्रकृति भी अलग–अलग हो सकती है। कई योजनाओं में श्रमिकों को केवल आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार होता है। कई योजनाओं में उनके प्रतिनिधि विशिष्ट समस्याओं का समाधान संयुक्त रूप से निकालते है। कुछ में विभिन्न विषयों पर संयुक्त परामर्श की व्यवस्था की जाती है तथा कुछ में श्रमिक वास्तव में प्रबंधकीय कार्यों में भाग लेने लगते हैं। कुछ देशों में प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कानून बनाए गए है। तथा कई में इसे सामूहिक समझौतों या तदर्थ योजनाओं में शामिल किया गया है। व्यवहार में, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं में भिन्नताएँ पाई जाती है।

13.11 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का अर्थ समझाइये।
2. प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के उद्देश्यों का वणर्न कीजिये।
3. सहभागिता का स्तर या मात्रा की व्याख्या कीजिये।

4. भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं पर विस्तृत चर्चा कीजिये।
5. उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता पर वर्मा–समिति के सुझावों पर चर्चा कीजिये।
6. प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता विधेयक, 1990 की विस्तृत चर्चा कीजिये।
7. भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजनाओं की असफलता के कारण पर चर्चा कीजिये।

13.12 पारिभाषिक शब्दावली

सहभागिता	Participation	भागीदारी	participation
श्रमिक	Labour	सिफारिश	Recomendation
सुझाव	Suggestion	अधिनियम	Article

13.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जी0 पी0 सिन्हा और पी0 आर0 एन0 सिन्हा– इंडस्ट्रियल रिलेशन्स एंड लेबर लेजिस्लेशन
2. वी0 जी0 मेहत्राज– लेबर पार्टिसिपेशन इन मैनेजमेंट (1966)
3. के0 सी0 अलेक्जेंडर– पार्टिसिपेटिव मैनेजमेंट (1972)
4. इआन क्लेग्ग– इंडस्ट्रियल डेमोक्रेसी (1969)
5. निल डब्लू0 चैम्बरलेन– ऐन एक्सपेरिमेन्ट इन ए नार्वेजियन फैक्ट्री ह्यूमेन रिलेशन्स
6. आर0 के0 वर्मा और पी0 आर0 एन0 सिन्हा– वर्कर्स पार्टिसिपेशन इन मैनेजमैन्ट (1991)
7. वही पृ0–12
8. भारत सरकार– राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट (1969)
9. देखिए, खण्ड 3, वही
10. भारत सरकार, श्रम मंत्रालय रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन लेबर (2002)
11. वही खण्ड भाग 1

इकाई 14

औद्योगिक सम्प्रेषण या औद्योगिक संचार

Industrial Communication

इकाई के रूपरेखा

14.1 परिचय
14.2 उद्देश्य
14.3 औद्योगिक सम्प्रेषण का महत्व
14.4 औद्योगिक संचार के उद्देश्य
14.5 सम्प्रेषण की विधियाँ
14.6 सम्प्रेषण के प्रकार
14.7 संचार के माध्यम
14.8 संचार की प्रक्रिया
14.9 प्रभावी संप्रेषण के अवरोधक
14.10 नेटवर्क विश्लेषण
14.11 औद्योगिक संचार प्रणाली
14.12 सार संक्षेप
14.13 अभ्यास व स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
14.14 पारिभाषिक शब्दावली
14.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.1 परिचय

सम्प्रेषण विचारों के आदान–प्रदान की ऐसी प्रणाली है, जिसके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है, उसके विचार समझ सकता है तथा दूसरे को अपने बारे में या अपने विचारों से अवगत करा सकता है। इस प्रकार, सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति को किसी वक्ता के विचार अन्य व्यक्ति के समक्ष, उसी रूप में जिसमें कि वक्ता चाहता है, प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। औद्योगिक सम्प्रेषण किसी औद्योगिक इकाई में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत मानव संसाधनों के मध्य औद्योगिक मुद्दों अथवा उत्पादन एवं आपूर्ति प्रणाली से सम्बन्धित सभी मामलों पर यथा जरूरत विचारों, सूचनाओं एवं निर्देशों का आदान–प्रदान है।

सम्प्रेषण सम्बन्धी कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं :

- सी0ए0 ब्राउन के विचार से, ''सम्प्रेषण विचारों एवं भावनाओं को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्थानांतरित करने की प्रक्रिया है – – – – इसका उद्देश्य सूचना पाने वाले व्यक्ति में समझ जाग्रत करना है।''
- लुइस ए0 एलन के अनुसार, ''सम्प्रेषण उन बातों का योग है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मष्तिष्क में समझ उत्पन्न करने की दृष्टि से करता है। इसमें बात कहने, सुनने व समझने की एक व्यवस्थित एवं सतत् प्रक्रिया सम्मिलित रहती है।''
- एम0 डब्ल्यू कमिंग के विचार से, ''संचार शब्द संदेशों (तथ्यों, विचारों, अभिवृत्तियों एवं रायों (सलाह या मशविरा) के प्रेषण की प्रक्रिया को व्यक्त करता है, जो एक व्यक्ति से दूसरे को किया जाता है ताकि वे एक दूसरे के विचारों या संदेशों को समझ सकें।''
- एफ0ए0 कार्टियर एवं के0ए0 हारवुड के अनुसार, ''सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का ध्यान उसकी याददाश्त को आकृष्ट करने के लिए करता है।''
- एस0 जी0 हुनैरयागर तथा आई0 एल0 हेकमान के विचार से ''संचार वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सूचनाएँ भेजी तथा प्राप्त की जाती हैं। यह प्रबन्ध के लिए एक मूलभूत व्यवस्था है, जिसके बिना संगठन का अस्तित्व नहीं रहता। इसका कारण स्पष्ट है कि हम अपने कर्मचारियों के साथ यदि सम्प्रेषण नहीं कर सकते तो हम उनसे किसी प्रकार का कार्य भी नहीं करवा सकते। किस प्रकार का कार्य लेना चाहते है, कैसे कार्य करवाना चाहते हैं, कब करवाना चाहते हैं, आदि, यह कुछ नहीं बता सकेंगे।''

इस प्रकार, सम्प्रेषण मानव द्वारा तथ्यों एवं सूचनाओं का आदान–प्रदान है। यह सन्देशवाहक यंत्रों का उपयोग मात्र नहीं है।

उचित सम्प्रेषण प्रणाली के अभाव में संस्थान में सम्प्रेषण्ण विलम्बना उत्पन्न हो जाती है। विरोधी या विग्रह संतोषी व्यक्तियों द्वारा अफवाहें फैलने से औद्योगिक सम्बन्ध बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। श्रमिकों व प्रबन्धकों दोनों ही पक्षों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। सम्प्रेषण प्रणाली दुरूस्त न रहने पर विभिन्न विभागों का आपसी समन्वय भी खत्म हो सकता है। अतः विभागीय लक्ष्यों की प्राप्ति भी नहीं हो पाती, जो कि हर तरह से इकाई को असफल बना देता है।

उचित सम्प्रेषण प्रणाली तभी सम्भव है, जब सूचना पाने वाला ठीक वहीं समझे जो उसे सम्प्रेषित किया गया है। प्रभावी संचार एक तरफा न होकर दो तरफा प्रक्रिया है।

सम्प्रेषण कार्य केवल सूचना देने व पाने तक ही सीमित नहीं होता। प्राप्तकर्ता द्वारा सूचना को समझना, स्वीकार करना तथा कार्यरूप में परिणत करना भी सम्प्रेषण प्रक्रिया का अंग है। संचार प्रणाली में 'समझना' सबसे कठिन व महत्वपूर्ण है। सूचना पाने वाला सन्देश का क्या अर्थ निकालेगा, इस बारे में ठोस पूर्वानुमान लगाना कठिन है। कई बार प्रबनधक को

लगता है कि केवल विचारों का प्रकटन या संप्रेषण ही पर्याप्त है। किन्तु, वास्तव में, सम्प्रेषण प्रक्रिया तब तक समाप्त नहीं होती जब तक जो कुछ सूचना पाने वाले ने सुना है, उसे वह ठीक तरह से ग्रहण न कर ले व उसे सही (उसी रूप में जिस रूप में संप्रेषणकर्ता चाहता है) ढंग से समझ न ले।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थियों को निम्न बातों की जानकारी हो सकेगी :–

- औद्योगिक सम्प्रेषण की अवधारणा व अर्थ क्या है ?
- औद्योगिक संचार का महत्व क्या है ?
- सम्प्रेषण के उद्देश्य क्या हैं ?
- सम्प्रेषण कितने प्रकार का होता है ?
- सम्प्रेषण की विधियाँ क्या हैं ?
- संचार के माध्यम कौन से हैं ?
- संचार की प्रक्रिया क्या है ?
- प्रभावी संचार के अवरोधक कौन से हैं ?
- नेटवर्क विश्लेषण क्या होता हैं ?
- औद्योगिक संचार प्रणाली की क्या रूपरेखा होती है ?
- प्रभावी सम्प्रेषण के लिए आवश्यक दशाएँ कौन सी हैं ?

14.2 औद्योगिक सम्प्रेषण का महत्व

आधुनिक युग में मानव सभ्यता का विकास ही संप्रेषण प्रणाली के अभाव में अवरूद्ध हो जाएगा। प्रत्येक स्तर पर, चाहे व्यक्ति औद्योगिक उपक्रम में हो, समाज में, परिवार में, अथवा सामुदायिक जीवन में, बिना सम्प्रेषण के वह अपनी भूमिकाओं का निष्पादन सही ढंग से नहीं कर सकता। औद्योगिक उपक्रम की स्थापना किन्हीं सुपरिभाषित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए होती है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति इस बात पर निर्भर करती है कि प्रबन्धन कर्मचारियों की क्रियाओं से किस प्रकार तादात्म्य एवं समन्वय स्थापित करते हैं। इस कार्य में उचित संचार माध्यम एवं संप्रेषण प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार, संगठन अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों को सुगमता से हासिल कर लेते हैं।

सम्प्रेषण प्रणाली जितनी कारगर होगी, उतना ही नीतियों, नियमों, प्रतिमानों व निर्देशों को कर्मचारी उचित समय पर स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे, जोकि न केवल गुणवत्ता पूर्ण उत्पादन बल्कि अच्छे मानवीय समबन्धों की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण होगा।

प्रबन्धन या नियोक्ता अपनी नीतियों, निर्णयों, विचारों आदि को कर्मचारियों तक उपयुक्त ढंग से तभी प्रेषित कर सकता है, जब संचार व्यवस्था भली भाँति विकसित हो। औद्योगिक सम्प्रेषण, वास्तव में, एक स्तर के अधिकारियों व कर्मचारियों के द्वारा अपने मनोभावों, विचारों तथा निर्णयों से दूसरे स्तरों के अधिकारियों व कर्मचारियों को अवगत कराने की प्रक्रिया है। इसके लिए प्रबन्धकों को चाहिए कि विभिन्न पर्यवेक्षकीय तथा प्रबन्धकीय स्तरों का निर्माण करें, जिससे वे श्रृंखलाबद्ध रूप से संगठन की कार्यवाही पर दृष्टि रख सकें। समुचित संचार प्रणाली होने से उच्च प्रबन्धक, विभागीय प्रबन्धक, पर्यवेक्षक तथा अन्य कर्मचारी एक दूसरे से लगातार सम्पर्क बनाए रख सकते हैं। इनसे सभी स्तरों के कर्मचारियों के आत्मविश्वास को बल मिलता है। इससे उनके बीच पनपने वाली भ्रांतियों को दूर करने में भी सहायता मिलती है। तथा समस्याओं का सम्यक् निदान व समाधान भी सम्भव हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न नीतियों, निर्देशों व लक्ष्यों आदि में उद्यम के हित को ध्यान में रखते हुए संशोधन भी किया जा सकता है। इस प्रकार, प्रबन्धक अपने कर्मैचारियों पर निरन्तर प्रभाव बनाए रख सकता है।

औद्योगिक संगठनों (खासकर बड़े उद्यमों में) में प्रभावी संप्रेषण प्रणाली का विकास व उसका पोषण किया जाना आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में संदेश वांछित व्यक्ति तक पहुँचते–पहुँचते इतना विकृत हो जाएगा कि अर्थ का अनर्थ होने की सम्भावना बलवती हो जाएगी। कुशल सम्प्रेषण प्रणाली वही है जिसमें प्रत्येक स्तर पर विचारों की समरूपता बनी रहे। तथा हर स्तर पर उसी रूप में उन विचारों का संप्रेषण, संग्रहण व अर्थ निरूपण हो सके, जैसा कि अपेक्षित है। इस प्रकार, उचित संचार प्रणाली का होना संगठन की सफलता के लिए अपरिहार्य है।

14.3 औद्योगिक सम्प्रेषण के उद्देश्य

सम्प्रेषण के मुख्यतः निम्नलिखित **चार** उद्देश्य होते हैं :

1. **आदेशों व निर्देशों का सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को सही एवं स्पष्ट हस्तांतरण करना** – जब तक कर्मचारियों को यह पता न हो कि उन्हें क्या कार्य करना है : किन परिस्थितियों में करना है ; किसके साथ मिलकर करना है ; तथा कार्य के लिए आवश्यक सामग्री आदि की आपूर्ति की स्थिति क्या है ? तब तक वे अपने कार्य का समुचित निष्पादन नहीं कर सकते। स्पष्ट आदेशों व निर्देशों के अभाव में भी संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

2. **विचारों व सूचनाओं का स्वतंत्र व बेरोकटोक आदान प्रदान करना** – संगठन में सभी स्तरों के कर्मचारी आपसी विचार विमर्श द्वारा अपनी समस्याओं का निवारण कर सकते हैं। उच्च प्रबन्धन, उत्पादन एवं लागत सम्बन्धी विश्लेषण एवं योजनाएँ, वित्तीय व्यवहार,

आर्थिक अनुमान, व्यापारिक दशाएँ, बाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियाँ, नयी योजनाओं कार्यक्रमों आदि के बारे में सूचनाएँ सम्बन्धित कर्मचारियों को उपलब्ध करवाकर उन्हें औद्योगिक शांति व उत्पादकता के उच्च स्तर को बनाए रखने तथा उनके कार्य मनोबल को ऊँचा रखने में सफल हो सकते हैं। यह सब प्रभावी संचार व्यवस्था के बगैर मुमकिन नहीं है।

3. **कर्मचारी विकास सम्बन्धी सूचनाओं का संप्रेषण करना :** प्रबन्धननिष्पादन मूल्यांकन के परिणामों तथा कर्मचारियों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ एवं तथ्य संबंधित कर्मचारियों को संप्रेषित कर उन्हें अपने भविष्य की प्रोन्नति एवं विकास के बारे में समुचित निर्णय लेने में मदद कर सकते हैं।

4. **सम्प्रेषण विचारों को कार्यरूप देने का माध्यम बना सके, इसका प्रयास करना** : प्रभावी सम्प्रेषण प्रणाली होने से संगठन में गलत धारणाएँ नहीं फैलतीं। बड़े संगठन का प्रबन्धन अपने लक्ष्यों के अनुरूप दृष्टि (Vision) का विकास करता है। इसी के आधार पर विचार प्रवाह का एक ढाँचा तैयार हो जाता है। इस विचारों की श्रृंखला को नीचे के स्तरों पर सही रूप में सम्प्रेषित करके ही इन विचारों को कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है। तभी उद्यम के लक्ष्यों की वर्तमान व भविष्य में प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती।

औद्योगिक सम्बन्धों को सुचारू बनाए रखने के लिए भी प्रभावी संचार व्यवस्था आवश्यक है। चार्ल्स ई0 रेडफील्ड के विचार से औद्योगिक सम्प्रेषण या तो इकाई को सुदृढ़ कर सकता है या फिर उसे नष्ट भी कर सकता है।

14.4 संप्रेषण की विधियाँ

अभिव्यक्ति के आधार पर संचार को दो भागों में बाँट सकते हैं :

(i) मौखिक एवं (ii) लिखित

14.4.1 मौखिक सम्प्रेषण

इसके अन्तर्गत आपसी बातचीत, टेलीफोनिक वार्तालाप आदि शामिल है। यह कहने–सुनने की प्रत्यक्ष विधि है जिसमें चेहरे के हाव–भाव व अंग संचालन से भी सांकेतिक सम्प्रेषण होता रहता है। प्रवचन देना, सीटी व घंटी बजाना आदि से श्रोता की प्रतिक्रिया का पता भी तुरन्त लग जाता है। प्राचीन काल में अधिकांश संदेश संदेशवाहकों द्वारा मौखिक रूप से ही संप्रेषित किए जाते थे। मौखिक सम्प्रेषण एक सशक्त विधि है। इसके **प्रमुख लाभ** इस प्रकार हैं :

(i) सूचना का प्रेषण शीघ्र होता है।

(ii) संदेश की प्रतिपुष्टि शीघ्र हो जाती है।

(iii) इसमें समय व धन दोनों की बचत होती हैं।

(iv) मौखिक सम्प्रेषण आमने सामने की स्थिति में होता है। अतः यह प्रबन्धकों व कर्मचारियों को करीब लाता है।

(v) इससे अच्छे मानवीय सम्बन्धों के विकास में सहायता मिलती है।

(vi) मौखिक रूप से (मीटिंग, संगोष्ठी आदि के द्वारा) अनेक लोगों को एक साथ संदेश देना संभव है।

किन्तु, मौखिक सम्प्रेषण की कुछ हानियाँ भी हैं, जो निम्न प्रकार है

(a) सन्देश का कोई लिखित प्रमाण न होने से कई बार कर्मचारी उस पर अमल करने से कतराते हैं।

(b) इसमें भविष्य के लिए संदेश का कोई आलेख सुरक्षित नहीं रहता। अतः संदेश दाता कभी भी ऐसा संदेश देने से मुकर सकता है।

(c) यदि संदेश दाता व संदेश प्राप्तकर्ता के बौद्धिक स्तर में अधिक अंतर हो या उनके स्तर में अन्तर हो तो बहुधा संदेश के अर्थ निरूपण व क्रियान्वयन में भयावह दरार (gap) उत्पन्न हो जाती है।

(d) भाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी मौखिक संप्रेषण को लक्ष्य विहीनता की ओर ले जाती हैं।

अतः मौखिक संदेश, आदेश या निर्देश देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें कार्य से सम्बन्धित सामान्य निर्देश ही दिए जाएँ, न कि कोई नीति निर्णय अथवा गम्भीर प्रशासनिक निर्णय।

14.4.2 लिखित सम्प्रेषण

इस विधि के अन्तर्गत संदेश लिखित में एक व्यक्ति या पक्ष द्वारा दूसरे व्यक्ति या पक्ष को संप्रेषित किया जाता है। इसके विभिन्न प्रारूप इस प्रकार हो सकते हैं – परिपत्र, मैन्युअल, प्रतिवेदन, चिट्ठियाँ, पत्र पत्रिकाएँ, नोटिस बोर्ड, कार्ड बोर्ड, ट्रांस्पैरेन्सीज, आदि। लिखित सम्प्रेषण के अनेक **लाभ** हैं, जो निम्न प्रकार हैं :

1. लिखित संदेश संक्षिप्त एवं स्पष्ट होते हैं।
2. संदेश लिखित होने के कारण भविष्य में इनका संदर्भ के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
3. इसमें संदेश दाता तथा संदेश प्राप्तकर्ता के बीच प्रतयक्ष संपर्क की आवश्यकता नहीं रहती।
4. लिखित सम्प्रेषण में प्राप्तकर्ता अर्थ का अनर्थ करने की गलती नहीं करता, क्योंकि उसे इसे समझने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है।
5. सूचना प्राप्तकर्ता इसके अर्थनिरूपण में अन्य लोगों या आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों की मदद ले सकता है।

➢ किन्तु, लिखित सम्प्रेषण में कुछ **दोष** भी है जो निम्न प्रकार हैं :

(अ) लिखित सम्प्रेषण में प्राप्तकर्ता, यदि वह भाषा न समझता हो, तो उसे इसे समझने में कठिनाई होती है।

(ब) लिखित संदेश के प्रति प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया को जानना कई बार असंभव हो जाता है या फिर काफी समय लगता है।

(स) इसमें गोपनीयता का हनन हो सकता है।

(द) यह अधिक खर्चीली विधि है।

(य) लिखित सम्प्रेषण में मौखिक संप्रेषण की तुलना में अधिक समय लगता है।

इस प्रकार, दोनों विधियों में ही अनेक गुण व दोष हैं; जिनका विश्लेषण निम्न तालिका में किया गया हैं :

	विशेषता	मौखिक संप्रेषण	लिखित संप्रेषण
1.	व्यक्तिगत प्रभाव डालने की क्षमता	अधिक होती है।	नहीं होती है।
2.	प्रश्नोत्तर सुविधा का प्रावधान	होता है।	नहीं होता है।
3.	सम्प्रेषण में समय	कम लगता है	अधिक लगता है
4.	स्पष्टता	विद्यमान रहती है।	अधिक विद्यमान रहती है।
5.	सम्प्रेषण की प्रभाविकता	सम्प्रेषणकर्ता की क्षमता पर निर्भर करती है।	सम्प्रेषणकर्ता की लेखन कला पर निर्भर करती है।
6.	अनौपचारिकता	अधिक होती है।	अभाव रहता है।
7.	सम्प्रेषणकर्ता के हाव–भावों की अभिव्यक्ति	हो पाती है।	नहीं हो पाती।

इस प्रकार आवश्यकता को ध्यान में रखकर दोनों ही विधियों का इस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए कि इनके दोषों का यथा सम्भव निवारण हो सके। दोनों विधियों का सम्मिलित प्रयोग अधिक उचित है। आधुनिक युग में लिखित विधि का उपयोग अधिक किया जाता है।

14.5 सम्प्रेषण के प्रकार

मोटे तौर पर सम्प्रेषण दो प्रकार का होता है :

(i) लम्बवत् (Vertical)

(ii) क्षैतिज या समस्तरीय

14.5.1 लम्बवत् सम्प्रेषण

हर संगठन में निम्नतम स्तर से उच्चतम स्तर तक सीधा संवाद कायम रहना अनिवार्य होता है। किन्तु, यह सम्प्रेषण निर्वाध रूप से नीचे से ऊपर तक नहीं जाता। एक बिन्दु से शुरू होने वाला संप्रेषण एक स्तर तक ही जाता है। आवश्यकता होने पर ही इसे और उच्च स्तर पर संप्रेषित किया जाता है। इसी वजह से इसे अंतःस्तरीय संचार भी कहा जाता है। इस प्रकार के संचार को मुख्यतया दो भागों में बाँटकर अध्ययन कर सकते हैं

14.5.1.1 अधोमुखी सम्प्रेषण

14.5.1.2 ऊर्ध्वमुखी सम्प्रेषण

14.5.1.1 अधोमुखी संप्रेषण :

इसके अन्तर्गत विचारों तथा सूचनाओं का प्रवाह उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर होता है। अर्थात् यह सम्प्रेषण प्रबन्धन व अधिकारी वर्ग की ओर से कर्मचारी व श्रमिक वर्ग की ओर होता है। इसके अन्तर्गत सूचनाएँ संगठन के सर्वोच्च स्तर से निम्नतम स्तर की ओर प्रवाहित होती हैं। प्रबन्धन द्वारा निर्धारित विभिन्न नीतियाँ, आदेश, कार्यप्रणालियाँ, कार्य के विशिष्ट नियम, आदि का अधोमुखी सम्प्रेषण करके उसे अधीनस्थों तक उनके अनुपालन हेतु पहुँचाया जाता है। इसी प्रकार, कार्य सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन, सुरक्षात्मक एवं कल्याणकारी उपाय, उत्पादन, विकास एवं सुधार सम्बन्धी धारणाएँ, उत्पादन सूचना, कार्य की दशाओं सम्बन्धी आदेश एवं कार्य सम्पादन हेतु आवश्यक निर्देश आदि सभी श्रेणियों के कर्मचारियों को सर्वोच्च प्रबन्धन द्वारा संप्रेषित किए जाते हैं। पदोन्नति, स्थानान्तरण आदि से सम्बन्धित आदेश भी इसी प्रकार के सम्प्रेषण के अन्तर्गत आते हैं।

सूचनाएँ पहुँचाने के लिए श्रमिक या कर्मचारी के निकटतम वरिष्ठतम अधिकारी (जैसे फोरमैन) या पर्यवेक्षक को माध्यम बनाया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि इन अधिकारियों को संगठन की संचार आवश्यकताओं तथा सम्प्रेषण प्रणाली का पर्याप्त प्रशिक्षण व सही जानकारी दी जाए।

14.5.1.2 ऊर्ध्वमुखी सम्प्रेषण :

संगठन एवं प्रशासन का कार्य केवल अधोमुखी संचार से ही सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिए विभिन्न आदेशों एवं निर्देशों आदि के बारे में सम्बन्धित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की प्रतिक्रिया एवं उनके अनुपालन की स्थिति के बारे में फीडबैक प्राप्त होना भी आवश्यक है। निम्नतम स्तर के कर्मचारियों के स्तर पर उत्पन्न होने वाली सूचनाएँ एवं उत्पादन की स्थिति से सम्बन्धित अद्यतन सूचनाएँ ऊपर तक निर्बाध एवं नियमित रूप से पहुँचती रहनी

चाहिए। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर सर्वोच्च प्रबन्धक कर्मचारियों की गतिविधियों पर अपना नियंत्रण रखने में समर्थ होते हैं तथा अपने इच्छित लक्ष्यों को हासिल कर पाते हैं।

ऊर्ध्वमुखी सम्प्रेषण की एक सुनिश्चित व्यवस्था औद्योगिक इकाई में कायम करनी पड़ती है, जिससे यह निश्चित होता है कि 'क्या', 'कैसे', 'किसको', 'कब', 'किसके द्वारा' सूचनाएँ संप्रेषित की जाएँगी। फोरमैन एवं पर्यवेक्षक, मध्य स्तरीय प्रबन्धक तथा उच्च प्रबन्धक किस प्रकार अपने से उच्चतर स्तर से संपर्क व संप्रेषण करेंगे, इसकी एक सुनिश्चित प्रणाली का निर्माण आवश्यक होता है ताकि उचित सलाह, समाचार या सूचना, उचित स्त्रोत से, उचित माध्यम से, तथा उचित समय पर सर्वोच्च प्रबन्धनया नियोक्ता तक पहुँच सके व समय रहते उचित कार्यवाही सुनिश्चित की जा सके।

ऊर्ध्वमुखी संप्रेषण के लाभ :ऊर्ध्वमुखी संप्रेषण भी औद्योगिक इकाई या अन्य किसी संस्थान के लिए उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि अधोमुखी संप्रेषण। ये दोनों प्रकार के सम्प्रेषण मिलकर शरीर में रक्त संचार की भाँति सूचनाओं को ऊपर से नीचे से ऊपर संचालित करते हैं। इससे आम कर्मचारियों तथा प्रबन्धन के बीच (संचार शून्यता की स्थिति नहीं आती व संस्थान के स्वस्थ संचालन में मदद मिलती हैं।

यदि संगठन में सूचनाओं का निरन्तर प्रवाह न बना रहे, तो संगठन के संचालन में कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे कि –

- कर्मचारियों की सहभागिता की कमी
- विचारों की अपरिपक्वता
- समस्याओं के समुचित रूप से समझने में बाधा
- कर्मचारियों के उचित मूल्यांकन का अभाव
- विकास के अवसरों का उचित उपयोग न हो पाना, आदि।

संगठन में ऊर्ध्व संप्रेषण की उचित प्रणाली व फीडबैक सिस्टम (Feedback system) का विकास करके उपरोक्त कठिनाइयों से बचा जा सकता है। निचले स्तरों से विश्वसनीय सूचनाओं एवं तथ्यों के निर्बाध प्रवाह से उच्च स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय अधिक ग्राह्य व आवश्यकता के अनुरूप होंगे, जिससे कर्मचारियों में संतोष की भावना का विस्तार होगा, जोकि औद्योगिक संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हैं।

14.5.2 क्षैतिजीय संप्रेषण

क्षैतिजीय संचार समान स्तर के अधिकारियों व कर्मचारियों के मध्य होने वाले विचार विनिमय से सम्बन्धित है। सभी संगठनों में हर स्तर के कर्मचारियों, अधिकारियों, व श्रमिकों में अपने कार्य एवं हितों के संरक्षण तथा संगठन की कार्यपद्धति व समस्याओं पर आपस में चर्चा होती रहती है। यह चर्चा व संवाद अनौपचारिक व औपचारिक दोनों प्रकार का होता

है। विभिन्न विभागों के पर्यवेक्षकों व मध्यम स्तरीय प्रबन्धकों के बीच विचारों के परस्पर आदान प्रदान से संगठन का कार्य संचालन सुगम हो जाता है व समस्याओं का निदान व समाधान भी त्वरित ढंग से किया जा सकता हैं।

इस प्रकार के संप्रेषण में सभी प्रकार की क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ तथा सहयोगी भावनाएँ समाहित होती हैं। वैसे कर्मचारी तथा पर्यवेक्षकों, कार्य अधीक्षक व प्रबन्धक, श्रम संघ के प्रतिनिधि व कर्मचारी अथवा पर्यवेक्षक के मध्य सम्प्रेषण समस्या की प्रकृति पर भी निर्भर है। उसी के अनुरूप यह अनौपचारिक अथवा औपचारिक स्वरूप प्राप्त करता है। परिवादों के निपटारे में इस बात का सम्प्रेषण काफी उपयोगी हो सकता हैं।

वस्तुतः किसी भी कार्य में प्रथम स्तर रेखीय प्रबन्धक (पर्यवेक्षक) ही मुख्य सम्प्रेषक होता है। उसे कम्पनी या संगठन के उद्देश्यों, आदर्शो व विभिन्न मुद्दों पर स्थापित नीतियों को समझना तथा अपने दृष्टिकोण को सुनिश्चित करना आवश्यक है ताकि वह अपने दैनन्दिन कार्य संचालन में सफल हो सके, अपने कर्मचारियों की समस्याओं व हितों को समुचित ढंग से समझ सके, संगठन की नीतियों से कर्मचारियों को अवगत करा सके व कार्य की बाधाओं व समस्याओं को दूर करने व श्रमिकों की समस्याओं के निवारण में प्रबन्धकों का सहयोग ले सके। क्षैतिजीय संचार प्रणाली दुरूस्त होने पर ये कार्य आसानी से सम्पन्न हो जाते हैं।

14.6 सम्प्रेषण के माध्यम

विचार सम्प्रेषण के मौखिक व लिखित दोनों ही माध्यम हो सकते हैं, जो निम्न प्रकार हैं :

(A) अधोमुखी सम्प्रेषण के माध्यम :

	मौखिक		लिखित
1.	व्यक्तिगत निर्देश/सम्पर्क।	1.	लिखित निर्देश व आदेश।
2.	भाषण, प्रवचन, सम्मेलन, गोष्ठियाँ, समितियाँ एवं बैठकें।	2.	पत्र, स्मरण पत्र एवं मेमोरैण्डम।
3.	साक्षात्कार एवं विचार विमर्श	3.	समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, नोटिस बोर्ड, बुलेटिन, जर्नल्स, आदि।
4.	टेलीफोन वार्ता एवं सार्वजनिक सम्बोधन, चलचित्र एवं स्लाइड प्रदर्शन।	4.	पोस्टर्स, बैनर्स, होर्डिंग्स, बाल पेन्टिंग्स, इत्यादि।
5.	सीटी, भोंपू, घण्टी	5.	पत्र वाहन, सूचनापट्ट, आदि।
6.	सामाजिक व्यवहार, जिसमें संगठन सम्बन्धी वार्तालाप सम्मिलित हैं।	6.	कर्मचारियों की निर्देश पुस्तिकाएँ
7.	अंगूरलता प्रणाली (क्रमबद्ध) सूचना	7.	वार्षिक प्रतिवेदन, लिखित निष्पादन

,	मूल्यांकन
8. श्रव्य–दृष्य प्रणाली प्रदर्शनियाँ तथा अन्य आधुनिक प्रसारण प्रणालियाँ।	8. श्रम संघों के पत्राचार एवं प्रकाशन, आदि।
	9. बुलेटिन, डिस्प्ले बोर्ड।
	10. अन्य लिखित प्रणालियाँ, नीतियाँ एवं क्रियाविधि मैन्युअल, आदि।

(B) उर्ध्वमुखी सम्प्रेषण के माध्यम

मौखिक	लिखित
1. सम्मुख वार्तालाप, साक्षात्कार।	1. प्रतिवेदन– निष्पादन प्रतिवेदन, उत्पादन, मूल्य, किस्म, नैत्यिक लाभ सम्बन्धी व अन्य विशिष्ट प्रतिवेदन (Reports)
2. टेलीफोन पर वार्तालाप व साक्षात्कार, टेली कान्फ्रेन्सिंग, वीडियो कांफ्रेंसिंग आदि।	2. व्यक्तिगत पत्र, प्रार्थना पत्र, सूचनाएँ।
3. बैठकें, सम्मेलन, पर्यवेक्षकों से विचार विमर्श	3. परिवेदना निवारण प्रणाली।
4. सामाजिक व्यवहार/रीति रिवाज।	4. विचार विमर्श प्रणाली।
5. अंगूरलता संवाद प्रणाली	5. अभिरूचि एवं सूचना सर्वेक्षण
6. श्रम संघ का प्रतिनिधित्व व सूचना के अन्य स्त्रोत	6. श्रम संघ के प्रकाशन
7. सम्पर्कात्मक प्रबन्धन।	

(C) क्षैतिजीय सम्प्रेषण के माध्यम :

मौखिक	लिखित
1. भाषण, सम्मेलन, कमेटियाँ, बैठकें।	1. पत्र, मेमो एवं प्रतिवेदन
2. टेलीफोन तथा अन्तर्विभागीय संचार सुविधा, चलचित्र, स्लाइडें, आदि।	2. आंतरिक सूचना प्रणाली, बुलेटिन व प्रकाशन।
3. सामाजिक व्यवहार व रीतियाँ	3. बुलेटिन बोर्ड व पोस्टर
4. अंगूर लता संवाद प्रणाली, अफवाहें	4. निर्देश पुस्तिकाएँ व मैन्युअल

5. भोंपू, घंटी, आदि	5. संगठन के प्रकाशन, आदि।

14.6.1 सम्प्रेषण के विभिन्न माध्यमों का विवरणात्मक विवेचन

सम्प्रेषण के माध्यम से आशय उन विधियों से है जिनके द्वारा संदेश वांछित व्यक्तियों तक पहुँचाया जाता है। सम्प्रेषण के लिखित माध्यमों को अधिक प्रभावी माना जाता है। इनमें से कुछ का विवरणात्मक विवेचन निम्न प्रकार हैं :

(1) कर्मचारी पुस्तिकाएँ :नवागन्तुक कर्मचारियों के लिए इन पुस्तिकाओं का बड़ा महत्व होता है। इससे उन्हें कम्पनी का परिचय, व्यावसायिक नीतियों, व्यवसाय की प्रकृति, संगठन के उद्देश्यों, व कम्पनी के उपलब्ध सेवाओं आदि का परिचय हो जाता है। इसमें फैक्टरी की उतपादन प्रक्रिया, विभिन्न उतपादों, ग्राहकों, लाभ–हानि, कच्चे माल के स्त्रोतों का भी विवरण हो सकता है। इसमें कर्मचारी को होने वाले लाभों, दैनिक सामान्य समस्याओं व उनके कर्तव्यों का विवरण भी हो सकता है। इन सभी सूचनाओं के प्रकटन में यथा जरूरत चार्टो, तालिकाओं, ग्राफों, चित्रों, कार्टूनों आदि का प्रयोग भी किया जाता है। एक अच्छी कर्मचारी पुस्तिका में सामान्यतः निम्न बातें सम्मिलित रहती हैं :

1. कर्मचारी का नाम, पद, टोकन नं0, विभाग, पता, आयु।
2. अनुशासन, पदमुक्ति एवं सेवा निवृत्ति के नियम।
3. संगठन का इतिहास एवं प्रबन्धन प्रणाली।
4. व्यवसाय में उत्पादन एवं उत्पादकता संबंधी सूचना।
5. विभिन्न नीतियों, निर्देशों व आदेशों के मूल अंश।
6. मनोरंजन, चिकित्सीय व अन्य सुविधाओं की जानकारी।
7. कल्याण सुविधाओं जैसे– अल्पाहार गृह, सहकारी समिति, उचित मूल्य की दुकान वाचनालय, पुस्तकालय, रात्रिशालाएँ, प्रौढ़शालाएँ, कार्य सम्बन्धी पत्र पत्रिकाएँ, कल्याण कार्यालय, शिशु गृह, शिक्षा संस्थाएँ, आवागमन की सुविधाएँ, अग्निशमन सेवाएँ आदि का विवरण।
8. सामूहिक सौदेबाजी तथा श्रम संघ व्यवस्था की जानकारी।
9. नियोजन के अवसर, पदोन्नति, तथा विकास के अवसर, आदि।
10. अवकाश के नियम, कार्य के घंटे, मजदूरी सम्बन्धी नियम तथा कार्य की दशाओं के बारे में सूचना।
11. आनुसंगिक लाभ योजनाओं तथा बोनस एवं बीमा योजनाओं की जानकारी।

कर्मचारी को ये सूचनाएँ प्राप्त हो जाने पर उसे यह अनुभव होता है कि संगठन उसके हितों के प्रति कितना सजग है। उसे अपने दायित्वों का भी आभास होता है। इन सबसे उसके कार्य मनोबल पर सकारात्मक असर पड़ता है।

(2) मैगजीन एवं पत्र पत्रिकाएँ :कुछ संगठन अनेक पत्र पत्रिाकाओं का प्रकाशन करके कर्मचारियों को व्यवसाय की गतिविधियों, विकास के कार्यो तथा प्रशासन में सक्रिय विभूतियों, आदि के बारे में परिचित कराते रहते हैं। हाउस मैगजीन से ऐसा मंच तैयार होता है जिससे प्रबन्धक व कर्मचारी एक दूसरे के प्रत्यक्ष संपर्क में रहते हैं। यह कम्पनी की नीतियों को अत्यन्त सरल ढंग से प्रस्तुत करने व कर्मचारियों को कल्याण सुविधाओं से अवगत रखने में सहायक होती है। मैगजीन किसी कर्मचारी या कर्मचारियों के प्रति उपक्रम के दृष्टिकोण को उजागर करती है। इससे संस्था के प्रति कर्मचारी को अपना दृष्टिकोण व स्वामिभक्ति पुष्ट करने में मदद मिलती है।

मैगजीन का सम्पादन कार्मिक विभाग के अधिकारियों द्वारा किया जाता है। विभिन्न श्रेणियों के कार्मिकों को सम्पादन मंडल में रखा जाता है। इससे कर्मचारियों में एकता की भावना सुदृढ़ होती है। और विभिन्न स्तरों के कर्मचारियों को नजदीक आने का अवसर प्राप्त होता है।

(3) सलाह योजना : इस प्रणाली का उपयोग उत्पादन व्यय, व्यक्ति की कार्य के प्रति रूचि को बढ़ाने, तथा प्रबन्धकों के सम्मुख अपने विचार प्रकट करने व अच्छी सलाह होने पर पुरस्कृत करने की योजना बनाई जाती है। व कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त किया जाता है। श्रमिक वर्ग एक ओर मशीनों, उत्पादन विधियों एवं अन्य उपकरणों में सुधार की सकारात्मक सलाह देते हैं, तो दूसरी ओर वर्तमान सुविधाओं, कार्य की दशाओं आदि के प्रति अपना असंतोष, यदि कोई हो, व्यक्त करते हैं। सुझाव पेटियों का भी इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रणाली को सफल बनाने के लिए –

(i) उचित मौद्रिक पुरस्कार के लिए धन की पृथक् व्यवस्था की जाती है।
(ii) प्रणाली के संचालन हेतु संयुक्त समिति का गठन किया जाता है।
(iii) विशिष्ट सूचनाएँ व समस्याएँ प्रत्येक कर्मचारी तक पहुँचाकर उसे अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया जाता है।
(iv) प्रबन्धक तथा पर्यवेक्षक इस प्रणाली को महत्व देते हैं।
(v) सलाह प्राप्त होने पर तत्सम्बन्धी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर समुचित कदम उठाने की प्रबन्धक चेष्टा करते हैं।

(4) आंतरिक पत्र–पत्रिकाएँ : इन पत्रिकाओं में कम्पनी के समाचार, कर्मचारियों को व्यक्तिगत सूचना (जैसे–गोष्ठियों के सन्दर्भ, विवाह सम्बन्धी समाचार, जन्म, सेवा–निवृत्ति, पुरस्कार, पदक, आदि के समाचार) दी जाती है। इन समाचारों को चित्रों में भी प्रदर्शित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, चित्रों में कम्पनी द्वारा उत्पादित वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है जिससे कर्मचारियों को नयी वस्तुओं, नयी शोधों तथा कम्पनी की प्रगति के बारे में

जानकारी मिलती रहती है। प्रतीकात्मक कहानियों में प्रायः पदोन्नति, सेवा–निवृत्ति, घरेलू क्रिया–कलाप, खेलकूद, सुरक्षा, विचार–विमर्श, आदि बातें सम्मिलित की जाती है।

(5) कर्मचारी समाचार–पत्र– अच्छी तरह तैयार किये गये समाचार पत्रों द्वारा कर्मचारियों के साथ सम्प्रेषण में सहायता मिलती है। समाचार पत्र में कुछ पृष्ठ कर्मचारियों के लिए नियत किये जाते हैं, जिसमें ''श्रमिक या कर्मचारी के पत्र'' शीर्षक से उनके विचार प्रकाशित किये जा सकते हैं।

कर्मचारी पत्र मुख्यतः कर्मचारियों के विचारों को प्रस्तुत करते हैं न कि प्रबन्ध के। यद्यपि कम्पनी की नीतियों, विकास सम्बन्धी कार्यवाहियों, सुरक्षात्मक, कल्याणकारी तथा अन्य सामान्य रूचि के कार्यो (जैसे मनोरंजन की सुविधाएँ, कार्य–विश्लेषण, खेल–कूद सम्बन्धी बातें, आदि की जानकारी देने) के लिए स्थान निश्चित रहता है, किन्तु फिर भी वह पत्र कर्मचारियों की सूचनाएँ अधिक प्रकाशित करता है। कर्मचारी पत्र में विभिन्न कार्यो का विवरण, विकास के साधन, संयन्त्र विस्तार, नयी भर्ती व्यवस्था, आदि का विवरण रहता है। इसमें वार्षिक प्रतिवेदन के उपयोगी अंश भी प्रकाशित किये जाते हैं। कम्पनी अपने कर्मचारियों के पत्रों का प्रकाशन स्थानीय समाचार पत्रों में भी विज्ञापनस्वरूप करवाती है।

(6) कर्मचारियों को वित्तीय प्रतिवेदनः इन प्रतिवेदनों में वांछित तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है जिससे व्यापार की प्रवृत्ति, उसके लाभ, व्यय, आय, वितरण, आदि की जानकारी कर्मचारियों को मिलती है। ये प्रतिवेदन कर्मचारी के लिए लाभदायक तो है ही, किन्तु कम्पनी की स्थिति को स्पष्ट एवं अधिक सुदृढ़ करने में भी सहायक होते है। कर्मचारी तथा प्रबन्धकों के मध्य आपसी सम्बन्ध, उन्हें एक–दूसरे के समीप लाने तथा एक–दूसरे के प्रति अधिक विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करने में भी इन प्रतिवेदनों से सहायता मिलती है।

सामान्यतः वार्षिक अथवा त्रैमासिक प्रतिवेदन (जो अंशधारियों को निर्गमित किये जाते है) श्रमिकों के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं होते क्योंकि श्रमिक अधिकांशतः न केवल अशिक्षित होते हैं, वरन् तकनीकी भाषा को समझने में भी असमर्थ रहते है। अतः इनके प्रयोगार्थ वित्तीय प्रतिवेदन भी सामान्य रूप से सरल बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। ये प्रतिवेदन विभिन्न माध्यमों से वितरित किये जाते हैं जैसे विशिष्ट पैम्फलेट, कर्मचारी मैगजीन, आदि।

(7) प्रकाशित भाषण जिनमें सेविवर्गीय नीतियाँ उद्धृत हों : इन प्रकाशनों से कर्मचारियों को कम्पनी की नीतियों का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इसमें नियोगी–नियोक्ता सम्बन्ध भी स्पष्ट हो जाते हैं। इसमें कर्मचारी पुस्तिका के बारे में प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये जाते हैं। जिससे कर्मचारी सभी निर्धारित नीतियों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सभी सेविवर्गीय नीतियाँ एक ही पत्रिका में प्रकाशित कर दी जाती हैं तथा बाद में भिन्न–भिन्न

विषयों के लिए पृथक् पैम्फलेट प्रकाशित किये जाते हैं जैसे प्रॉवीडेण्ट फण्ड, सेवा–निवृत्ति योजना, उत्पादन बोनस, लाभ–भागिता, सहकारी समिति तथा स्थायी आदेश सम्बन्धी सूचना।

(8) **सूचना या प्रदर्शन–पट्ट** :इन्हें ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ कर्मचारी इनके सम्पर्क में आते हैं। इनमें पठन–पाठन सामग्री रखी जाती है। वे प्रायः दरवाजों के पास, कॉफी हाउस, जलपान–गृह, आदि में लगाये जाते हैं। खुले स्थान पर ''क्या आपने पढ़ा है?'' या ''एक अपने लिए लीजिए'' शब्द लिखे रहते हैं।

पुस्तिकाओं तथा पैम्फलेटों में विभिन्न प्रकार के खेल एवं सामग्री उपलब्ध होती हैं जिनमें अनेक प्रवृत्तियों, (खाना बनाना, कंशीदाकारी तथा सिलाई की विधि, गृह अर्थशास्त्र, मनोरंजन, शिक्षा सम्बन्धी सूचनाएँ, दुर्घटना से बचाव, मित्रों से कैसे मिलें एवं उन्हें कैसे प्रभावित करें, गृह व्यवस्था, बागवानी, कर प्रणाली, आदि) पर जानकारी सम्मिलित रहती है।

(9) **बुलेटिन बोर्ड** : सामान्यतः बड़े संगठनों में कर्मचारियों के लिए एक बुलेटिन बोर्ड रखा जाता हैं जिसमें विभिन्न आकर्षक रंगों तथा सुन्दर अक्षरों का प्रयोग किया जाता है।

इन बोर्डो पर सामान्य पसन्दगी के समाचार, कार्टून, आवश्यक फोटोग्राफ, वर्तमान तथा भूतकाल में कार्यरत कर्मचारियों के बारे में सूचनाएँ, जन्म, मृत्यु, विवाह तालिका, आदि की सूचना, सुरक्षात्मक, खेल–कूद, आदि सम्बन्धी सूचनाएँ दी जाती है। विशेष बैठकों की सूचना, कलैण्डर (कार्य के दिन एवं अवकाश की सूचनाएँ, विक्रय सम्बन्धी सूचना, कर्मचारी मांग पत्र, जलपान–गृह के तैयार भोज की सूचना तथा अन्य सूचनाएँ) भी सम्मिलित की जाती है।

(10) **दृश्य–श्रव्य उपकरण** : इसके अन्तर्गत अच्छी फिल्मों, चल–चित्रों को दिखाने, टेप द्वारा विविध भाषणों को सुनाने का आयोजन किया जाता है। इस प्रणाली का लाभ यह है कि इससे कर्मचारियों को विभिन्न अधिकारियों के विचार सुनने का अवसर प्राप्त होता है जिससे किसी प्रकार की सम्प्रेषण की त्रुटि नहीं रहती और श्रमिक, भाषण के विचारों को उसी रूप में समझने में समर्थ होता है, जिस रूप में वे कहे गये है। चलचित्रों के माध्यम से यह बताया जाता है कि विभिन्न उत्पादन प्रक्रियाएँ कैसे की जाती है ? विभिन्न कार्य कैसे किये जाते हैं। विभिन्न नियमों का पालन कैसे किया जाता है? प्रत्यक्ष सम्प्रेषण के लिए संयन्त्र के अनुभागों में ''आवश्यक घोषणा'' से भी कार्य लिया जा सकता है।

यह प्रणाली एकतरफा होते हुए भी बड़े व्यवसायों में सम्प्रेषण के अच्छे माध्यम के रूप में कार्य कर सकती है। इस प्रणाली का प्रयोग अनुपस्थिति दर घटाने, थकान कम करने, तोड़–फोड़ एवं कार्य में अपव्यय को कम करने में किया जाता है।

(11) **पोस्टर** : सम्प्रेषण हेतु इस प्रणाली का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा विभिन्न तथ्यों को पोस्टर द्वारा प्रदर्शित किया जाता हैं इस पर कई विशिष्ट वस्तुओं के

चित्र, विभिन्न रेखाचित्र, बिन्दु–चित्र, आदि प्रदर्शित किये जाते हैं। इस प्रणाली में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि ज्यों ही कोई पोस्टर पुराना हो जाय, या फट जाय त्योंही नया पोस्टर लगा दिया जाना चाहिए।

(12) सूचना पट्ट : सामान्यतः सूचना प्रसारण हेतु सूचना पट्ट का प्रयोग किया जाता है। इन पट्टों पर सामान्यतः निम्न सूचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं : (i) विभिन्न नियमों के संक्षिप्त उद्धरण (जैसे कारखाना अधिनियम, मजदूरी भुगतान अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, बॉइलर तथा बिजली अधिनियम) प्रस्तुत किये जाते हैं। (ii) राजकीय सूचनाएँ जैसे कार्य के घण्टे, वेतन भुगतान के दिन, छुट्टियों की सूचना। (iii) स्थायी आदेश। (iv) संगठन में चल रही विभिन्न प्रवृत्तियों सम्बन्धी सूचनाएँ (जैसे सहकारी समिति, खेल–कूद समिति, कला समिति, आदि की क्रियाएँ)। (v) प्रशासकीय दृष्टि से प्रबन्ध द्वारा निर्गमित आदेश एवं परिपत्र।

14.7 संचार की प्रक्रिया

सूचना सम्प्रेषण की प्रक्रिया में प्रथमतः तीन चरण पूरा हो जाने पर चतुर्थ चरण– कार्यवाही (Action) का आरम्भ होता है। ये चरण निम्न प्रकार हैं :

प्रथम – सूचना का सम्प्रेषण
द्वितीय – सूचना को समझना
तृतीय – सूचना को स्वीकार करना
चतुर्थ – सूचना का कार्यवाही हेतु उपयोग

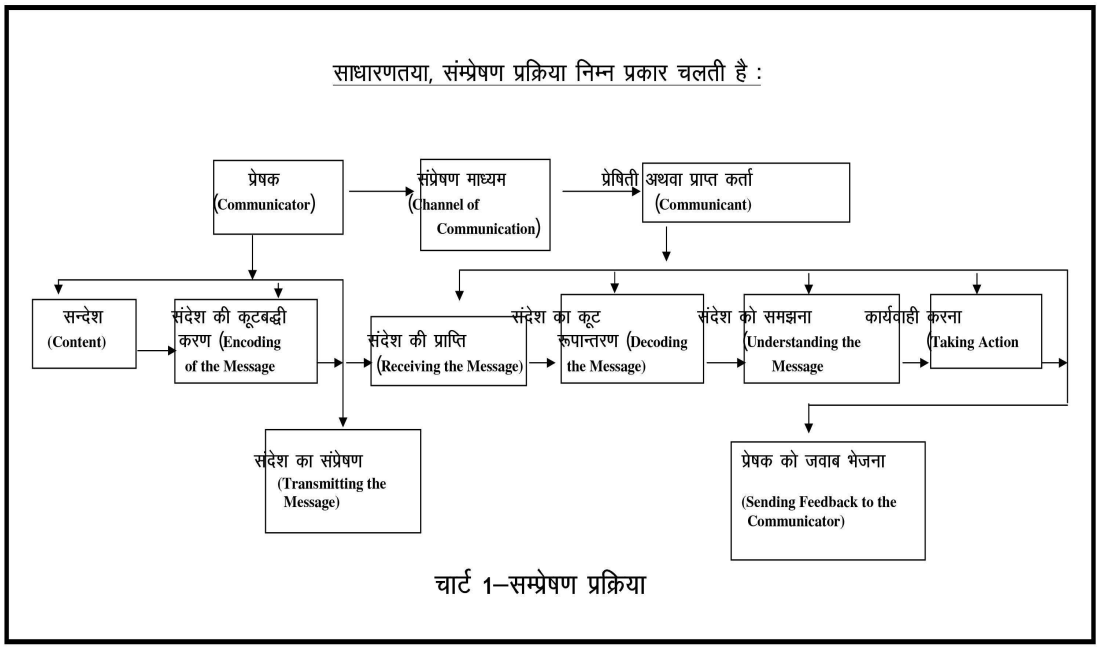

चार्ट 1–सम्प्रेषण प्रक्रिया

14.7.1 सम्प्रेषण प्रक्रिया के तत्व

- **प्रेषक** : संवाद की प्रक्रिया प्रेषक से ही आरम्भ होती है। संवादकर्ता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि : (i) वे क्या भावनाएँ, विचार अथवा सूचनाएँ हैं, जो भेजनी हैं ?, (ii) ये सूचनाएँ किसे भेजनी हैं? (iii) क्या प्रेषिती सूचना प्राप्त करने के लिए तैयार है?; (iv) संदेश के लिए कूट शब्दों का उपयोग करना है या नहीं; यदि हाँ, तो संदेश का कूटबद्धीकरण कैसे करना है ?; (v) संदेश को कैसे प्रभावकारी बनाया जाए?; तथा (vi) सम्प्रेषण का माध्यम क्या हो? इस प्रकार, सारे संवाद, उसकी गुणवत्ता, व प्रभावकारिता प्रेषक की कुशलता पर निर्भर है, क्योंकि वही संचार प्रक्रिया का पहलकर्ता (Initiator) होता है।

- **प्रेषिती** : संवाद प्राप्तकर्ता सम्प्रेषण का दूसरा छोर होता है। वही संदेश सुनता या प्राप्त करता है; वही उसकी कूट भाषा का रूपान्तरण करता है; तथा संदेश को सही अर्थो में समझकर कार्यवाही करता है। इसीलिए, प्रेषिती को मामले की पर्याप्त समझ व ज्ञान होना चाहिए। तभी सम्प्रेषण के उद्देश्यों को हासिल किया जा सकता है। प्रेषिती के समर्पित एवं समझदारीपूर्ण आचरण से ही संप्रेषणप्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सकता है।

- **सन्देश** : वह सूचना, विचार अथवा निर्देश जो प्रेषक द्वारा प्रेषिती को भेजा जाता है, संदेश कहलाता है। सन्देश बहुत ही स्पष्ट, लिपिबद्ध, उद्देश्यपूर्ण, समयानुकूल तथा नियंत्रण एवं कार्यवाही के योग्य होना चाहिए। सन्देश ही सम्प्रेषण प्रक्रिया का प्रमुख तत्व है।

- **संप्रेषण का माध्यम** : संचार चैनेल प्रेषक व प्रेषिती के मध्य सेतु का कार्य करता है। सन्देश एक छोर से दूसरी छोर पर पहुँचाने के लिए प्रत्यक्ष संदेश, पत्र, पत्रिकाएँ, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, सेमीनार, मीटिंग, आदि का इस्तेमाल किया जाता है। इन्हें ही संचार के माध्यम के रूप में जाना जाता है।

- **कार्यवाही** : किसी भी सन्देश को भेजने व प्राप्त करने का अन्तिम उद्देश्य किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति ही होता है। इसलिए सन्देश की सफलता इसी बात में निहित है कि प्रेषिती उसे सही रूप में समझ ले व यथा आवश्यकता आगे की कार्यवाही सुनिश्चित करे। इस प्रकार, इच्छित प्रतिफल की प्राप्ति के लिए संदेश की प्रतिक्रिया स्वरूप कार्यवाही का होना अनिवार्य है।

14.8 प्रभावी संप्रेषण के अवरोधक

प्रभावी संचार व्यवस्था प्रबन्धन की आधारशिला होती है, क्योंकि इसी के माध्यम से प्रबन्धक कर्मचारियों को वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रेरित, निर्देशित व नियंत्रित करते हैं। उपक्रम की नीतियों का निर्वचन, समस्याओं का स्पष्टीकरण व उनका निवारण आदि तभी संभव है जब संप्रेषण प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न न हो और वह प्रभावी ढंग से चलती रहे। लेकिन

संप्रेषण एक जटिल प्रक्रिया है और यह कई तत्वों द्वारा निर्धारित व प्रभावित होती है। इस प्रक्रियामें अनेक रूकावटें भी उत्पन्न हो जाती हैं जो संचार प्रक्रिया को बाधित कर देती है। प्रभावी सम्प्रेषण में आने वाली कुछ प्रमुख बाधाएँ इस प्रकार है :

(i) भाव–अभिव्यक्तिः संदेश में जो भाव प्रकट किए जाते है, प्रायः ऐसा होता है कि कर्मचारी उसे उसी अर्थ में समझ नहीं पाते। एक ही शब्द का विभिन्न लोग अलग–अलग अर्थ निकालते है। क्यों कि लोगों के आचार विचार, पूर्व धारणाएँ, अभिनति, शैक्षणिक व सामाजिक स्तर, आदि उनके बौद्धिक स्तर व व्यवहार को प्रभावित करते हैं। उसी संदेश का कोई क्या अर्थ निकालेगा व उस पर क्या प्रतिक्रिया देगा, यह इन्हीं सब बातों पर निर्भर करता है। अतः औद्योगिक संस्थानों में संप्रेषण के लिए संदेश देते समय प्रबन्धकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि शब्दों का चयन समझबूझ व सावधानी पूर्वक किया जाए। ऐसे शब्दों व वाक्यांशों, जिनके कई भाव निकलते हों, प्रेषक को चाहिए कि वह उनका स्पष्ट निर्वचन भी संदेश के साथ ही कर दे। इससे प्रभावी संचार के मार्ग का एक मुख्य अवरोध दूर होगा।

(ii) अधिक शब्दों का प्रयोग : संदेश का निर्माण करते समय सरल शब्दों का प्रयोग ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि शब्दों का प्रयोग कम से कम व सटीक प्रकार से किया जाना आवश्यक है। यदि कोई वाक्य अनावश्यक रूप से बहुत लम्बा व जटिल रहता है तो श्रमिक वर्ग उसे सही अर्थ में समझ नहीं पाता व ऐसी भाषा संचार में अवरोधक का कार्य करती है। अतः संदेश सरल, स्पष्ट व संक्षिप्त होने चाहिए।

(iii) भौतिक दूरीः प्रभावी सम्प्रेषण में दूरी भी बाधक होती है। अत्यधिक भौतिक दूरी होने पर यह ज्ञात हो पाना कठिन होता है कि प्रेषिती ने संदेश को उसी रूप में ग्रहण किया है अथवा नहीं व उस संदेश का अनुपालन उसी रूप में हुआ है अथवा नहीं। दूरी की अवस्था में टेलीफोन व टेलीकांफ्रेंसिंग, वीडियो कांफ्रेंसिंग, आदि आधुनिक साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। यदि ये सुविधाएँ न हों तो लिखित संप्रेषण व लिखित फीडबैक प्राप्त करने की व्यवस्था होनी चाहिए। इस बात की पुष्टि भी की जानी चाहिए कि सूचना को तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं किया गया है अथवा उसे अनावश्यक रूप से रोका तो नहीं गया है।

(iv) प्रेषक व्यक्तिः संप्रेषण की प्रक्रिया में अनेक लोग लगे होते हैं। कई बार इनमें से कोई व्यक्ति स्वयं अवरोधक बन जाता है। इस प्रकार संचार श्रृंखला पूरी नहीं हो पाती। सूचना के उद्‌गम स्थल पर ही यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो सूचना का अग्रप्रेषण व उसकी समझ गलत हो सकती है। पर्यवेक्षक व कर्मचारियों के विचार व व्यवहार, आपसी विवाद, झगड़े, सुधारात्मक सुझाव व संवादों का समुचित सम्मान न होना, उच्च स्तर की

ओर भेजे जाने वाले संप्रेषण को बाधित करते है। प्रेषक व्यक्ति ऐसी किसी सूचना को ऊपर की ओर जाने में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं, जिससे उनकी कार्यकुशलता का स्तर व अकर्मण्यता उजागर होती हो। जबकि सर्वोच्च प्रबन्धन के लिए ऐसी सूचनाओं का बड़ा महत्व होता है। इस प्रकार की गतिविधियों से समस्याएँ जटिल रूप ले लेती हैं।

(v) रूचि : व्यक्ति अक्सर उस बात को ज्यादा ध्यान से सुनता व पालन करता है जिसमें उसका व्यक्तिगत हित होता है। अन्य सूचनाओं को लोग बहुधा नजरंदाज करते हैं व उसमें उनकी रूचि नहीं होती। फलतः सामाजिक व सार्वजनिक हित के सम्प्रेषण उतने प्रभावी नहीं हो पाते। इसी प्रकार, यदि प्रेषक ने प्रेषिती को जो सम्वाद भेजा है वह उसकी रूचियों के अनुरूप नहीं है, तो वह उतना प्रभावी नहीं रहता।

अध्ययन की दृष्टि से सम्प्रेषण की रूकावटों को निम्न चार भागों में बाँट सकते हैं:

1. व्यक्तिगत असमानताएँ
2. कम्पनी का वातावरण
3. यांत्रिक रूकावटें
4. अन्य रूकावटें

इन चारों प्रकार की बाधाओं को निम्न चार्ट द्वारा और भी विस्तार से समझा जा सकता है।

चार्ट–2 संप्रेषण के अवरोधक

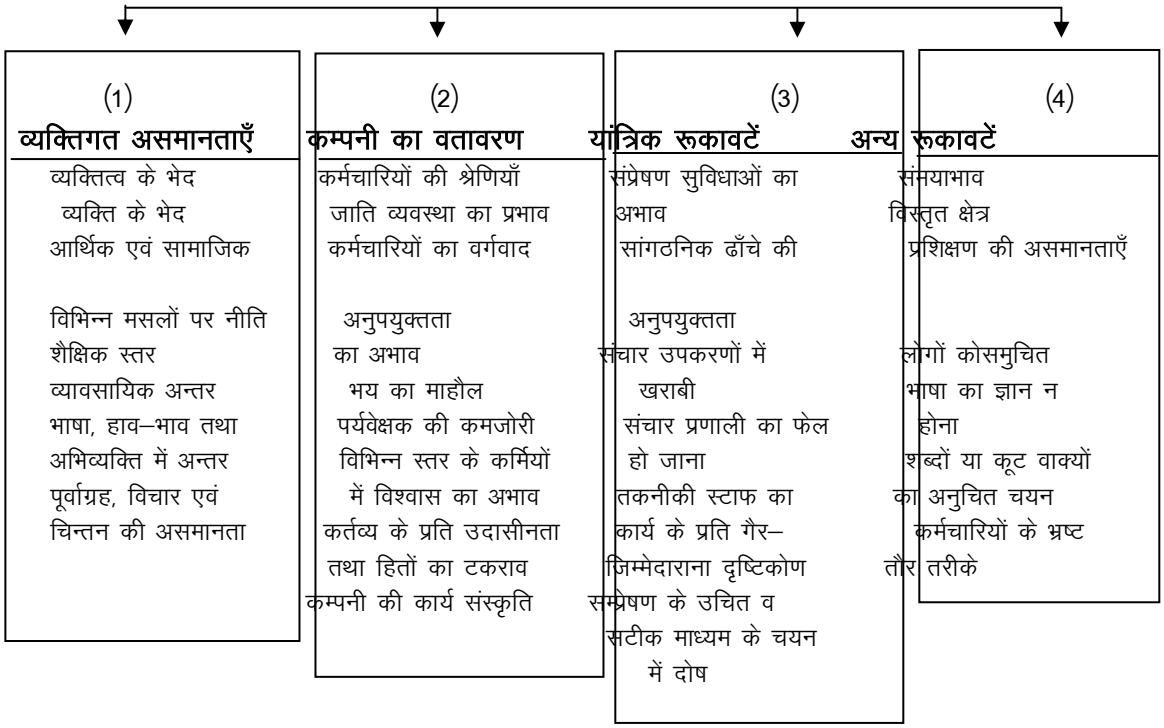

14.9 नेटवर्क विश्लेषण

किसी भी संगठन में संचार का एक ढाँचा खड़ा हो जाता है। जिसमें सम्प्रेषण के सभी चैनल तथा लाइनें एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार संचार नेटवर्क के अन्तर्गत सूचनाएँ क्रमशः एक से दूसरे व्यक्ति को संप्रेषित होती रहती हैं। संचार नेटवर्क में दो प्रकार के चैनलों से सूचनाएँ संवाहित होती हैं – औपचारिक और अनौपचारिक चैनल। नेटवर्क विश्लेषण के द्वारा इन दोनों ही प्रकार के चैनलों से उभरने वाली सूचनाओं का विश्लेषण किया जाता है। हर प्रकार का संचार नेटवर्क सूचनाओं के दो–तरफा निर्द्वन्द प्रवाह को सुनिश्चित करने वाला होना चाहिए। तभी उसे उचित ठहराया जा सकता है। नेटवर्क विश्लेषण के द्वारा सूचना नेटवर्क के उचितपन तथा विश्वसनीयता को जाँचा जाता है। यह अप्रासंगिक सूचनाओं को हटाकर संचार पथ को मजबूती दे सकता है। इसी प्रकार संप्रेषण तकनीकों की प्रासंगिकता व विश्वसनीयता का भी विश्लेषण करके इनका चयन करने अथवा न करने का फैसला लिया जा सकता है। नेटवर्क विश्लेषण के अन्तर्गत सूचना वैयक्तिकरण उपकरणों का उपयोग करते हुए किसी सूचना नेटवर्क की सटीकता को परखा जा सकता है। इससे तथ्यों की सुरक्षा प्रणाली तथा गतिशील तथ्याधार भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

14.10 औद्योगिक संचार प्रणाली

भारतीय उद्योगों में ऊर्ध्वगामी व अधोगामी दोनों प्रकार की संचार प्रणाली कार्य करती है। साथ ही, समान स्तर के अधिकारियों व कर्मचारियों में क्षैतिज संप्रेषण भी होता रहता है। यह सूचना सम्प्रेषण औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार के चैनलों के माध्यम से चलता है। स्वस्थ संचार व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि सारा संप्रेषण द्विमार्गी हो, किन्तु दुर्भाग्यवश, भारतीय उद्योगों में अधोगामी संचार पर अधिक जोर है तथा ऊर्ध्वगामी संचार, अधिकांशतया, समुचित ढंग से सम्पन्न नहीं हो पाता, क्योंकि भारतीय संगठनों, चाहे वे सार्वजनिक प्रतिष्ठान हों या निजी, में बहुधा नीचे के स्तरों से आने वाली सूचनाओं, फीड बैक, तथा आवेदनों को उचित महत्व नहीं दिया जाता। प्रबन्धकों व अधिकारियों द्वारा इस तरह की प्रवृत्ति के चलते ही कर्मचारियों में असंतोष बढ़ता है। इससे अनौपचारिक संचार प्रणाली जैसे अंगूरलता सम्प्रेषण व क्लस्टर नेटवर्कों तथा गपशप को बढ़ावा मिलता है। इसीलिए भारतीय संस्थानों में अक्सर अफवाहों का बाजार गर्म रहता है। सामान्यतया, भारतीय प्रतिष्ठानों में संचार व्यवस्था में निम्नलिखित दिक्कतें पायी जाती हैं :

1. अधिकांश प्रतिष्ठानों में सहभागी निर्णय प्रक्रिया का अभाव पाया जाता है। अधिकांश उद्यमी तथा प्रबन्धक सत्तावादी मानसिकता से ग्रस्त हैं। अतः वे आदेश देने व उनका पालन करवाने पर अधिक ध्यान देते हैं व नीचे से आने वाली सूचनाओं, आवाजों व

फीडबैक को अनसुना करने की प्रवृत्ति रखते हैं। इससे दोतरफा संचार प्रणाली भंग हो जाती है और यह संस्थानों के लिए घातक बन जाती है।

2. निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के उद्यमों में शिखर स्तर पर सारे प्राधिकार संकेन्द्रित कर लेने की प्रवृत्ति पायी जाती है। निजी क्षेत्र में मालिक तथा सार्वजनिक क्षेत्र में संबंधित मंत्री या राजनीतिक नेतृत्व बहुधा अधिकारों के हस्तांतरण में विश्वास नहीं करते व सभी निर्णय स्वयं लेने की प्रवृत्ति रखते हैं। यही प्रकृति बाद में नीचे के प्रबन्धकों, सचिवों, नौकरशाहों व अधिकारियों में भी घर कर जाती है। धीरे–धीरे केन्द्रीयकरण की यह व्यवस्था सर्वमान्य हो जाती है और औपचारिक सूचनातंत्र, वह भी अधोगामी संप्रेषण, का बोलबाला हो जाता है। इससे संस्थान की सूचना प्रणाली पंगु हो जाती है और संप्रेषण की गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ता है।

3. भारतीय संगठनों में अवैयक्तिक व दफ्तरशाही होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ऐसे संगठनों में प्रस्थिति एवं वर्ग की भिन्नताओं पर अधिक जोर रहने से प्रबन्धकों व कर्मचारियों के सम्बन्ध अवैयक्तिक तथा औपचारिक ही रहते हैं। संचार एक अंतरवैयक्तिक प्रक्रिया है। अत्यधिक औपचारिकता के माहौल में सूचनाओं के निर्बाध प्रवाह पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि निकटवर्ती अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों के अभाव में लोग अपने मन की बात कह ही नहीं पाते। ऐसे में सम्प्रेषण प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती है।

4. ऊपर से जो निर्देश नीचे की ओर आते हैं, वे भी अंतिम छोर तक निर्बाध नहीं पहुँच पाते, क्योंकि ऐसे संगठनों में मालिकों की नीतियों का अधिक महत्व होता है। इसमें अधीनस्थ अपने ऊपर के अधिकारियों पर अत्यधिक निर्भर हो जाते हैं। यह निर्भरता उन्हें अपनी बात ऊपर पहुँचाने से रोकती है। इससे ऐसी सूचनाएँ जो अरूचिकर हों, उनका ऊर्ध्व संप्रेषण होने की सम्भावना न्यूनतम हो जाती है।

किन्तु सकारात्मक बात यह है कि नई औद्योगिक नीति व वैश्वीकरण की व्यवस्था आने के बाद भारतीय उद्योग में प्रणालीगत सुधारों का दौर चल पड़ा है व सूचना के आधुनिक तन्त्र का प्रयोग किया जा रहा है, ताकि सूचनाओं का निर्बाध प्रवाह हो सके व संगठन को अधिक उत्पादकता मूलक व स्पर्धी बनाया जा सके।

14.11 सार संक्षेप

सम्प्रेषण विचारों के आदान–प्रदान की मानवीय प्रक्रिया है। औद्योगिक सम्प्रेषण इकाई में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत मानव संसाधनों के मध्य उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर यथा आवश्यक विचारों, सूचनाओं, निर्देशों व आदेशों का आदान–प्रदान होता है। इसका उद्देश्य सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति में किसी मुद्दे पर वांछित समझ उत्पन्न करना है। औद्योगिक संचार प्रक्रिया एक व्यवस्थित प्रणाली के अन्तर्गत चलती है। उचित सम्प्रेषण

प्रणाली के अभाव में प्रतिष्ठान में सम्प्रेषण विलम्बना की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। प्रभावी संचार एकतरफा न होकर दो तरफा होता है। संचार प्रणाली में 'समझना' सबसे महत्वपूर्ण है। प्रेषिती वही अर्थ सूचना या संदेश का लगाए जैसा प्रेषक चाहता है, यह अति आवश्यक है। आधुनिक युग में प्रभावी संचार प्रणाली का होना अति महत्वपूर्ण है। सम्प्रेषण प्रणाली जितनी कारगर होगी, उतना ही नीतियों, नियमों, प्रतिमानों व निर्देशों का पालन कर्मचारियों द्वारा सम्भव हो सकेगा, जिससे प्रतिष्ठान के लक्ष्यों को हासिल करना सम्भव हो सकेगा।

औद्योगिक संप्रेषण का उद्देश्य आदेशों व निर्देशों से सभी अधिकारियों व कर्मचारियों को अवगत कराना तथा उनका अनुपालन सुनिश्चित कराना होता है। इसके अलावा सूचनाओं के स्वतंत्र संप्रेषण के द्वारा कर्मचारी विकास तथा उत्पादकता को बढ़ावा देना भी महत्वपूर्ण उद्देश्य है। सम्प्रेषण मौखिक तथा लिखित दोनों प्रकार का हो सकता है। दोनों के ही अनेक गुण व दोष हैं। किन्तु औद्योगिक परिवेश में लिखित संप्रेषण ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है। हर संस्थान में लम्बवत् तथा क्षैतिज दोनों प्रकार का संचार होता रहता है। लम्बत् संप्रेषण अधोमुखी व ऊर्ध्वमुखी दोनों प्रकार का होता है। यह सभी प्रकार का संप्रेषण एक साथ ही हर प्रतिष्ठान में चलता रहता है। इन सभी प्रकार के संप्रेषण के अनेक माध्यम हैं।

औद्योगिक संचार की प्रक्रिया के चार चरण होते है – सूचना का संप्रेषण, समझना, स्वीकार करना एवं उसे कार्यवाही हेतु उपयोग में लाना। प्रेषक, प्रेषिती, संदेश, माध्यम व कार्यवाही – ये पाँच संप्रेषण प्रक्रिया के मुख्य तत्व हैं।

संप्रेषण के अनेक अवरोधक होते हैं जिनमें व्यक्तिगत असमानताएँ, कम्पनी का वातावरण, यांत्रिक अवरोध तथा अन्य अनेक रूकावटें सम्मिलित हैं।

नेटवर्क विश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के चैनलों पर उभरने वाली सूचनाओं का विश्लेषण करके सूचनाओं के दो–तरफा प्रवाह को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसमें सूचनाओं की प्रासंगिकता तथा उनकी विश्वसनीयता की भी परख की जाती है ताकि संगठन का संचार नेटवर्क मजबूत किया जा सके।

औद्योगिक संचार प्रणाली में ऊर्ध्वगामी, अधोगामी व क्षैतिज तीनों प्रकार का सम्प्रेषण औपचारिक व अनौपचारिक स्तर पर चलता रहता है। लेकिन सार्वजनिक व निजी दोनों प्रकार के प्रतिष्ठानों में कुछ दिक्कतें पायी जाती हैं, जोकि नेतृत्व की मानसिकता तथा सांगठनिक ढाँचे से जुड़ी हुयी होती हैं। बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जो भारतीय औद्योगिक संगठनों में सूचनाओं के निर्बाध प्रवाह को बाधित करती हैं। एक प्रभावी सूचना तंत्र स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि ऐसे अवरोधों को दूर किया जाए।

14.12 अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक संप्रेषण से आप क्या समझते हैं ? औद्योगिक संप्रेषण का महत्व भी समझाइए।
2. औद्योगिक संप्रेषण की कौन सी विधियाँ होती हैं ?
3. सम्प्रेषण कितने प्रकार का होता है? इनके लाभ एवं हानियों का भी वर्णन कीजिए।
4. विभिन्न प्रकार के सम्प्रेषणों के माध्यमों का वर्णन कीजिए।
5. संचार की प्रक्रिया को समझाइए तथा इस प्रक्रिया के अवरोधकों का भी वर्णन कीजिए।
6. नेटवर्क विश्लेषण के लाभ क्या हैं ?
7. भारतीय उद्यमों में सूचना व संचार प्रणाली में क्या कमियाँ हैं ?

14.13 परिभाषिक शब्दावली

अवैयक्तिक व दफ्तरशाही	Impersonal and brureacratic	मौखिक सम्प्रेषण	Oral Communication
द्विमागी	two way	प्रेषक	Sender
अधोगामी संचार	downward communication	सम्प्रेषण विलम्बना	Communication lag
अफवाह	Rumours	ऊर्ध्वगामी	Upward

14.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- चतुर्भुज मामोरिया, सतीश मामोरिया एवं मोहनलाल दशोरा (2007) : ''सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक सम्बन्ध'', आगरा : साहित्य भवन, pp.. 478–98.
- प्रसाद, एल0 एम0 (2008) : ''प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मैनेजमेन्ट'', नई दिल्ली : सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, PP. 765–96.
- न्यूजस्टार्म, जॉन डब्लू एण्ड कीथ डेविस (1997) : ''आर्गनाइजेशनल बिहैवियर : ह्यूमन बिहैवियर ऐट वर्क'', न्यूयार्क : मैकग्राहिल.
- डांस, एफ0ई0एक्स0 (1970) : ''दि कान्सेप्ट ऑफ कम्युनिकेशन'', **जर्नल ऑफ कम्यूनिकेशन**, वा0 20, pp. 201–10.
- बरलो, डेविड के0 (1960) : ''दि प्रॉसेस ऑफ कम्युनिकेशन,'' न्यूयार्कः होल्ट.
- बरनार्ड, चेस्टर आई0 (1956) : ''दि फंक्शन्स ऑफ इक्जीक्यूटिव्स''.
- हुनरयागर एस0जी0 एवं आई0एल0 हेकमन (1972) : ''ह्यूमन रिलेशन्स इन मैनेजमेंट''.।